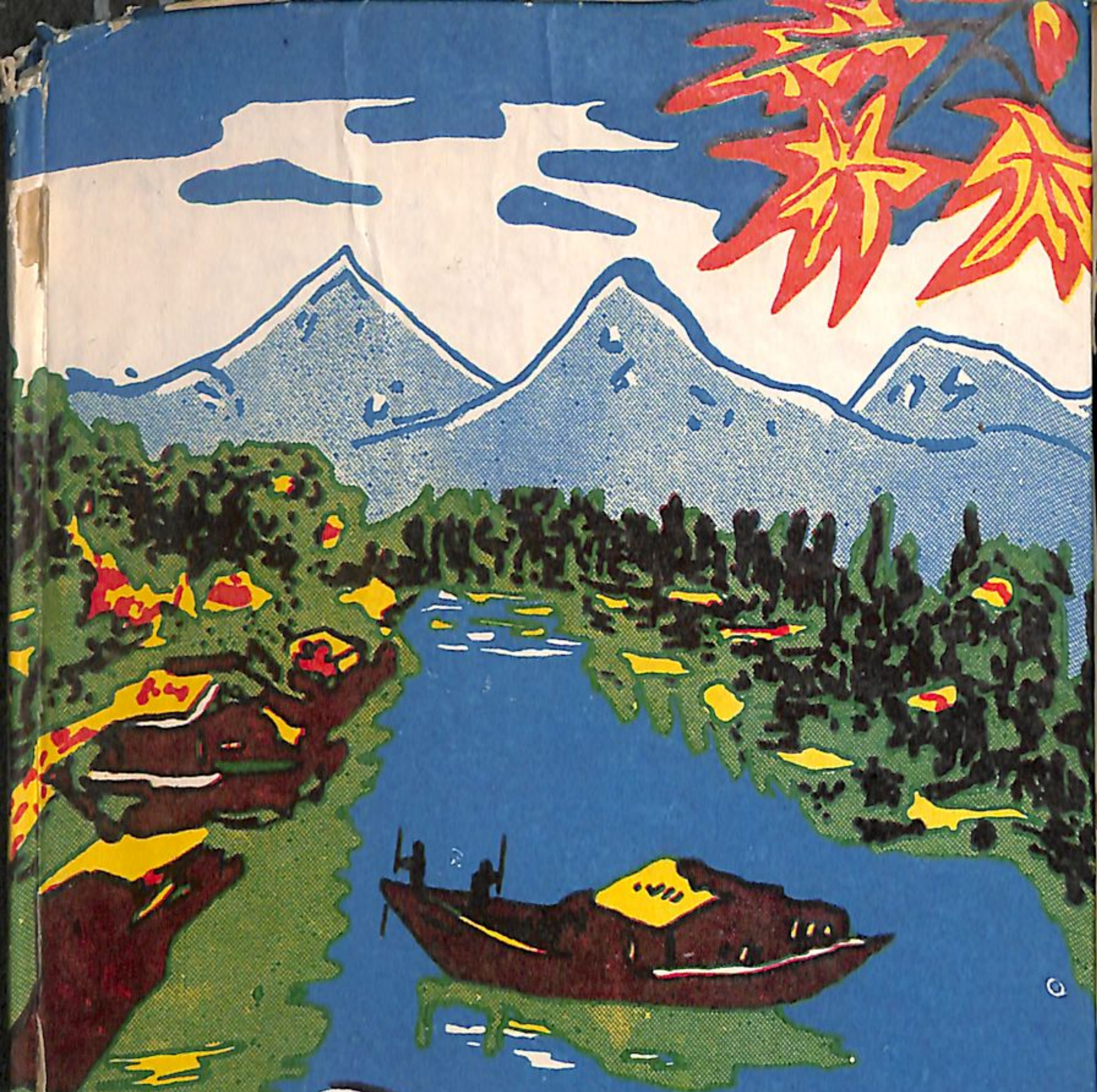


वितस्ता के वातायन

सम्पादक - डा॰ रमेश कुमार शर्मा

KRi-410

वितस्ता के वातायन

सम्पादक
डा० रमेशकुमार शर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग तथा अधिष्ठाता कला संकाय,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, (कश्मीर)

प्रकाशक एवं मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस,
राजामंडी, आगरा-२८२००२

प्रथम संस्करण १९८१

मूल्य : ३०·००

प्रकाशक एवं मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस,
२६/८६ अहीर पाड़ा, राजामंडी,
आगरा—२८२००२

क्रम

दो शब्द

हमारे विभाग से दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'वितस्ता के नये चरण' नामक कविता-संग्रह १९७९ में प्रकाशित हुआ था तथा १९८० में 'वितस्ता के कथाचरण' नामक कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ था। इन दोनों संग्रहों में विभाग के नये-पुराने छात्रों तथा अध्यापकों की कृतियाँ सग्रहीत थीं। हर्ष का विषय है कि इन दोनों संग्रहों का हिन्दी जगत ने अच्छा स्वागत किया है। इसी कड़ी में प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह है। कश्मीर तथा कश्मीरी भाषा सम्बन्धी इन निबन्धों में कश्मीर, गुरेज़ तथा लद्दाख़ की सांस्कृतिक झलक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। कश्मीर तथा लद्दाख़ में हिन्दी के अध्ययन तथा अध्यापन के क्षेत्र में हमारे विभाग की विशेष भूमिका है और उसकी परम्परा को आगे बढ़ाने में प्रस्तुत पुस्तक सहायता करेगी, यह हमारा विश्वास है। ये तीन संग्रह हमारी उपलब्धियों को रेखांकित करते हैं।

इस संग्रह के संकलन तथा उसकी भूमिका लेखन के लिए मैं डॉ० रोशनलाल ऐमा का आभारी हूँ [illegible] मेरे विभाग में प्रवक्ता हैं तथा मेरे छोटे भाइयों के समान हैं। विभाग में सीनियर फैलो डा० विमलाकुमारी मुंशी ने सम्पादन कार्य में मेरी जो सहायता की है, उससे मेरा भार हल्का हुआ है।

अपनी विभागीय पत्रिका 'वितस्ता' के वार्षिक अंकों को इन तीन संग्रहों के रूप में प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए, मैं, कुलपति डा० रईस अहमद के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ।

अन्त में, मैं इस पुस्तक के मुद्रण एवं प्रकाशन के लिए प्रेम प्रिंटिंग प्रेस के स्वामी को धन्यवाद देता हूँ।

२६-१-१९८१

रमेशकुमार शर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, तथा अधिष्ठाता, कला संकाय,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, कश्मीर।

भूमिका

साहित्य में गद्य और गद्य में निबन्ध का स्थान स्वोंच्च माना जाता है। गद्य के अन्तर्गत यद्यपि 'कहानी-उपन्यास' आदि अन्य विधाएँ भी आती हैं, 'लेकिन इन विधाओं का स्वतन्त्र स्वरूप निश्चित हो जाने के कारण, इन्हें मात्र औपचारिकता निभाने के लिए, 'गद्य' कहा जाता है, शुद्ध गद्य निबन्ध-साहित्य ही माना जा सकता है। संसार के प्रायः सभी समृद्ध साहित्यों में इस तथ्य को स्वीकृत किया गया है, तभी तो कहानी-उपन्यास को अब 'कथा-साहित्य' के अन्तर्गत रखकर निबन्ध-साहित्य को 'गद्य-साहित्य' स्वीकारा जाता है।

हिन्दी भाषा, देश की 'राष्ट्रभाषा' का पद ग्रहण कर चुकी है या नहीं, इस विवाद के रहते हुए भी यह तथ्य स्पष्ट है कि हिन्दी देश की सम्पर्क-भाषा है। अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व 'शिष्ट' कहलाने वाले लोगों पर होते हुए भी, हिन्दी देश के करोड़ों 'अशिष्ट' और 'पिछड़े' हुए लोगों की आपसी सम्पर्क भाषा है। यह स्थिति शताब्दियों पूर्व कश्मीर और शेष देश के बीच लागू थी। कश्मीर संस्कृत भाषा और साहित्य का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। संस्कृत के महान साहित्यकारों, इतिहास-कारों, दार्शनिकों और कवियों की जन्मदात्री इस घाटी में, बिल्हण (ग्यारहवीं शती० ई०) के समय तक भी संस्कृत सामान्य बोलचाल की भाषा थी। यहाँ की औरतें तक संस्कृत भाषा का प्रयोग करती थीं, ऐसी मान्यता कुछ विद्वानों की है। हिन्दी प्रदेश के अनेक विद्वान प्राचीन काल से कश्मीर आते-जाते रहे हैं। कश्मीर में अमरनाथ जी की पवित्र-यात्रा पर आने वाले यात्री हिन्दी भाषा को कश्मीर लाते रहे होंगे। मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन ने कश्मीरी धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रभावित किया, तभी तो यहाँ कृष्ण और राम की आकर्षक कथाएँ (कश्मीरी और हिन्दी—दोनों भाषाओं में) काव्यबद्ध होती रही हैं। परमानन्द आदि कश्मीरी कवियों की हिन्दी में रचित भक्ति-कविताएँ इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं।

कश्मीर में पनपी साहित्यिक-दार्शनिक परम्पराएँ कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत में सुरक्षित रहीं थीं। कश्मीरी शारदा लिपि और बाद में फारसी लिपि में तथा संस्कृत, देवनागरी और शारदा लिपि, दोनों में लिखी जाती रही है। मुसलमानों, और बाद में डोगरा राजाओं, के राज्यकाल में, महाराजा रणबीर सिंह के हिन्दी को राज-भाषा घोषित करने के लगभग असफल प्रयास को छोड़कर, फारसी और उर्दू को

लादने के जो निरन्तर प्रयास होते रहे हैं, उन्हें स्वतन्त्रता के बाद बराबर जारी रखा गया है। आज कल स्थिति यह है कि सरकारी स्तर पर प्रयुक्त कश्मीरी भाषा (आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा प्रयुक्त कश्मीरी सहित) अरबी-फारसी के विद्वानों को छोड़कर, सामान्य कश्मीरी जन की समझ के बाहिर की भाषा बनती जा रही है। वास्तव में स्वतन्त्रता के बाद भाषा और प्रान्तीयता के नाम पर जिस कैंसर ने इस देश को दबोचा है, उसका इलाज कदाचित् इस देश को विघटित करके ही राजनीतिज्ञों को मिले। ऐसे विषाक्त वातावरण में 'तथाकथित राष्ट्रभाषा' जब केन्द्र और हिन्दी प्रदेशों में उचित स्थान नहीं पा सकी तो अहिन्दी भाषी प्रदेशों का क्या कहना? देखा जाए तो जम्मू-कश्मीर के वर्तमान मुख्यमन्त्री वास्तव में देश के ऐसे अकेले नेता हैं जो सचमुच में समूचे देश के भविष्य की एकता को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की शक्ति रखते हैं। शेष नेताओं के यहाँ तो इस प्रकार की निस्वार्थ व्यापक बुद्धि का अकाल है। तभी तो कश्मीर भारत का एकमात्र अहिन्दी भाषी प्रदेश है, जिसमें उर्दू राजभाषा होते हुए भी मुस्लिम बहुसंख्यक कश्मीर घाटी में तथा हिन्दू बहुसंख्यक जम्मू के उर्दू स्कूलों में पहली से दसवीं कक्षा तक हिन्दी अनिवार्य कर दी गई है।[1] दोनों जगह क्रमशः उर्दू-हिन्दी भी साथ में पढ़ाई जाएगी। मुख्यमंत्री शेख मोहम्मद अबदुल्लाह का यह कदम, साहस और भविष्य-दृष्टि का प्रमाण है। इस प्रकार कश्मीर में इधर हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति रुचि बढ़ती जा रही है।

सामान्यतः यह देखा गया है कि किसी भी भाषा में प्रारम्भिक साहित्य कविता-कहानी के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। कश्मीर में भी कश्मीरी और हिन्दी-उर्दू, सभी भाषाओं में लगभग यही स्थिति है। कश्मीर में हिन्दी के साहित्यिक प्रयोगों का प्रारम्भ भी कविता से ही होता है। कश्मीर में हिन्दी-गद्य-लेखन की प्रारम्भिक तुतलाहट पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ही मानी जाती है। हाँ, यह अवश्य है कि कश्मीर में 'सरस्वती' 'विशालभारत', आदि जैसी स्तरीय पत्रिकाएँ नहीं थीं। कश्मीर में हिन्दी भाषा-प्रेम व्यक्तिगत अथवा संस्थागत स्तर पर ही उद्भूत हुआ था।

मुसलमान राजा जैन-उलाबुदीन के समय लौटे हुए प्रवासियों, साधु-संन्यासियों, पर्यटकों तथा यात्रियों के माध्यम से एवं भक्ति-आन्दोलन के प्रभाव के फलस्वरूप यहाँ के लोगों को हिन्दी भाषा का जो परिचय हुआ, उसे समय के व्यापक अन्तराल और प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए भी मरने नहीं दिया गया। व्यक्तिगत स्तर पर परमानन्द जैसे कवियों और संस्थागत स्तर पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, श्री अलकेश्वरी ट्रस्ट सभा, सनातन धर्म सभा, आर्य समाज आदि जैसी कई संस्थाओं ने हिन्दी को प्रश्रय देने का प्रयास निरन्तर किया। 'महावीर' तथा 'चन्द्रोदय' कश्मीर की प्रथम हिन्दी पत्रिकाएँ हैं। 'मार्तण्ड' के हिन्दी रविवासरीय विशेषांक श्रीप्रताप कालेज श्रीनगर की पत्रिका 'प्रताप' के हिन्दी खण्ड, 'कष्यप' आदि पत्र-पत्रिकाओं के

---

१. १९८१ से पाकिस्तान के स्कूलों में भी हिन्दी का अध्ययन आरम्भ हो गया है। —सम्पादक

माध्यम से कश्मीर में हिन्दी गद्य-पद्य, दोनों को थोड़ा-बहुत आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इन पत्रिकाओं में प्रायः काव्य और कथासाहित्य को ही स्थान मिला। धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा अन्य विषयों पर निबन्धों का प्रारंभ काफी देर से हुआ। वास्तव में स्वतन्त्रता के बाद सरकारी पत्रिकाओं 'योजना' एवं 'शीराजा' (हिन्दी) पत्रिकाओं के माध्यम से ही कश्मीर में हिन्दी निबन्धों का विकास संभव हो सका।

इस सम्बन्ध में कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग की पत्रिका 'वितस्ता' का उल्लेख करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कश्मीर में हिन्दी के प्रचार प्रसार और स्तरीय साहित्यिक रचनाओं को प्रस्तुत करने में इस पत्रिका का ऐतिहासिक महत्व है। डा० रमेशकुमार शर्मा के संपादकत्व में, इस पत्रिका को, कहानी-कविता आदि के साथ-साथ महत्वपूर्ण साहित्यिक-सांस्कृतिक विषयों पर शोधपूर्ण स्तरीय निबन्धों को प्रकाशित करने का एकमात्र श्रेय है।

इस दिशा में विभाग के छात्रों, शोधार्थियों तथा अध्यापकों ने गत कई वर्षों से अत्यन्त महत्वपूर्ण निबन्धों की रचना की है।

कश्मीर जैसे अहिन्दी भाषी प्रदेश में इस दिशा में किया गया कार्य आगे चलकर ऐतिहासिक सिद्ध होगा। इसी बात को दृष्टि में रखकर, इस वर्ष की 'वितस्ता' को निबन्ध-संग्रह के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित करने का निश्चय किया गया, जिसमें विभाग के वर्तमान तथा भूतपूर्व छात्रों तथा अध्यापकों द्वारा रचित कश्मीरी भाषा, साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी कुछ निबन्ध संग्रहीत किए गए हैं।

आशा है कि 'वितस्ता' का यह प्रयास विद्वज्जनों की दृष्टि में सफल रहेगा।

रोशनलाल ऐमा

टीचर्स हॉस्टल,
कश्मीर विश्वविद्यालय परिसर,
श्रीनगर कश्मीर।
२६-१-१९८१

कश्मीर का भौगोलिक परिचय

डा० रामदयाल कटारा
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, (कश्मीर)।

स्थिति और क्षेत्रफल—यह प्रदेश भारत के ठीक उत्तर में स्थित है। इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग २,२२,२३६ वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या ४६.१६ लाख है (१९७१ की गणनानुसार)। यह राज्य ७३°२६' और ८१°३०' पूर्वी देशान्तर तथा ३२°१७' और २९°५८' उत्तरी अक्षांश के बीच स्थित है। पूर्व से पश्चिम तक यह प्रदेश ८०० किलोमीटर है तथा उत्तर से दक्षिण तक इसकी चौड़ाई ४८० किलोमीटर है। इस प्रदेश के उत्तर में अफ़गानिस्तान, रूस और चीन, पूर्व में तिब्बत, पश्चिम में पाकिस्तान तथा दक्षिण में पंजाब प्रदेश है। इस राज्य में १६ जिले हैं—अनन्तनाग, बड़गाम, बारामूला, डोडा, जम्मू, कठुआ, लद्दाख, कारगिल, श्रीनगर, पूँछ, उधमपुर, राजोरी, मीरपुर, मुजफ्फराबाद, गिलगिट एजेंसी और हुंजा।

सन् १९४७, सन् १९६५ और १९७१ में पाकिस्तानी आक्रमण के पश्चात् सुरक्षा और सैनिक दृष्टि से इस राज्य का महत्त्व अधिक बढ़ गया है।

भौगोलिक स्थिति—कश्मीर प्रदेश भारत में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात है। प्रकृति के कोमल और परुष दोनों ही रूपों ने इस राज्य के सौन्दर्य में एक अद्भुत आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। नदी, झील, उपत्यका और हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ प्रकृति के कोमल सौन्दर्य के समान हैं तो पर्वतों की गहरी खाइयाँ, पिघलते हिमखण्ड, नदियों की वेगवती धारायें तथा रात्रि के अन्धकार में भयानक दृश्य उपस्थित करने वाले नग्न पर्वत प्रकृति से परुष रूप के परिचायक हैं। इस प्रदेश को इसके अप्रतिम सौन्दर्य के कारण ही भारत का स्विट्जरलैंड कहते हैं। भौगोलिक दृष्टि से इस प्रदेश के निम्नलिखित प्राकृतिक भाग किए जा सकते हैं—(१) कर्राकोरम से हिमालय तक फैली हुई झेलम और उसकी सहायक नदियों की घाटियाँ। (२) हिमालय और पीर पंजाल पर्वत श्रेणियों के बीच फैली हुई झेलम किशनगंगा की घाटियाँ तथा (३) दक्षिणी सीमा के निचले भाग।

इन तीनों प्राकृतिक भागों के मध्य हिमालय की अनेक हिमाच्छादित गगन-चुम्बी पर्वत श्रेणियाँ हैं। इनमें प्रमुख हैं—(१) मुस्तांग और कर्राकोरम श्रेणी; (२)

जांस्कर श्रेणी (भीतरी हिमालय) ; (३) पंगी श्रेणी (मध्य हिमालय) और (४) पीर पंजाल श्रेणी (बाहरी हिमालय) हैं। **मुश्तांग और कर्राकोरम** श्रेणी की ऊँचाई ७६२० मीटर है। यह पर्वत श्रेणी कश्मीर और तिब्बत को एक-दूसरे से पृथक करती है। इसकी सबसे ऊँची चोटी का नाम **माउन्ट गोडविन ऑस्टिन** है। इसी के मध्य लेह से तिब्बत तक का मार्ग बना है। सिन्धु नदी इस क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर बहती है। श्याक और गिलगिट नदियाँ क्षेत्र के बर्फीले जल को बहा कर सिंधु नदी में डालती हैं। **जांस्कर श्रेणी** की ऊँचाई ७९२५ मीटर है। यह श्रेणी सिन्धु-घाटी को झेलम घाटी से पृथक करती है। इसी श्रेणी के अन्तर्गत जोजिला नामक दर्रा है जिसमें श्रीनगर—लेह मार्ग बना है। **पीर पंजाल** श्रेणी जम्मू को कश्मीर से पृथक् करती है। इसकी ऊँचाई ३,३०० मीटर के लगभग है।

पंगी श्रेणी और पीर पंजाल—श्रेणियों के मध्य कश्मीर घाटी स्थित है। यह घाटी १४० किलोमीटर लम्बी तथा ४० किलोमीटर चौड़ी है। यह घाटी चारों ओर से पर्वतों से घिरी हुई है। इस क्षेत्र की मिट्टी कछारी होने के कारण बहुत उपजाऊ है। यों तो कश्मीर घाटी में अनेक झीलें हैं, लेकिन इनमें वूलर एवं डल झीलें विशेष प्रसिद्ध हैं। इन झीलों के प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही कश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाता है। कश्मीर की प्रमुख नदियों में रावी, तवी, चिनाव, झेलम और सिन्धु हैं। बर्फीले क्षेत्र से निकलने के कारण ये सभी नदियाँ सदावाहिनी हैं।

जलवायु और वर्षा—इस प्रदेश की अधिकांश पर्वत श्रेणियाँ बर्फ से ढकी रहती हैं। इस कारण इस क्षेत्र में गर्मी कम पड़ती है। अक्टूबर के मध्य से यहाँ का तापमान घटने लगता है तथा अक्टूबर से अप्रैल तक कड़ाके की सर्दी पड़ती है। शीत ऋतु में खूब हिमपात होता है। जनवरी में तापमान—४°C से ८°C के बीच में रहता है तथा ग्रीष्म ऋतु में तापमान ११°C से २६°C के बीच रहता है। इस प्रदेश में ग्रीष्म की अपेक्षा शीत ऋतु में अधिक वर्षा होती है। वर्षा का औसत ३३ सैं० मी० से अधिक नहीं होता। लेकिन लद्दाख़ क्षेत्र इसका अपवाद है। दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवायें हिमालय को पार नहीं कर पातीं इसीलिए इस क्षेत्र में औसत वर्षा ८ सैं० मी० से अधिक नहीं हो पाती।

वनस्पति एवं कृषि—इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति वन हैं जो इस क्षेत्र के ३/५ भाग पर फैले हुए हैं। ये सभी वन इस क्षेत्र के उत्तर में स्थित हैं। अधिक घने वन बारामुला, अनन्तनाग, ऊधमपुर और डोड़ा जिले में पाये जाते हैं। इन वनों में देवदारु, चिनार, चीड़, बतूल, सिंदूर, हनोवर, स्प्रूस, फर और विलों के वृक्ष पाये जाते हैं। पहाड़ों की निचली ढ़ालों पर शहतूत, बादाम और अखरोट के वृक्ष मिलते हैं। झीलों के किनारे विलों के पेड़ मिलते हैं जिससे टोकरियाँ बुनी जाती हैं और क्रिकेट के बल्ले बनते हैं।

सम्पूर्ण प्रदेश की अधिकांश जनसंख्या कृषि, हस्तकला, फलों पर निर्भर है। सबसे बड़ा व्यापार सैलानियों (टूरिस्ट) का है। खेती योग्य भूमि घाटी में ही स्थित

है। प्रदेश के ५० प्रतिशत भाग पर खेती की जाती है जिसमें से ४० प्रतिशत भाग सिंचाई के योग्य है। लगभग ८.७ लाख हेक्टेअर भूमि कृषि योग्य है। फल-फूलों की दृष्टि से कश्मीर की भूमि अत्यधिक सम्पन्न है। यहाँ सूखे मेवों की अधिकता है। इनमें सेव, अंगूर, खूबानी, आड़ू, चैरी, नाशपाती, स्ट्रावैरी, शहतूत, बादाम, अनार, अखरोट आदि की प्रमुखता है। पहाड़ी ढालों को चौरस बनाकर धान, मक्का, पोपी (अफीम) कपास, तम्बाकू, भाँग (चरस), अलसी, चना, गेहूँ, जौ, कोदों आदि की खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ जल में तैरते खेत बनाकर सब्जियाँ उत्पन्न की जाती हैं। कश्मीर के पामपुर[1] क्षेत्र के पठारी भाग में केसर की खेती की जाती है जिसे यहाँ के निवासी काश्मीरजा[2] कहते हैं। शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। लद्दाख़ के पहाड़ी ढ़ालों पर पश्मीना उत्पन्न करने वाली भेड़ें पाली जाती हैं।

खनिज सम्पदा—भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार इस क्षेत्र में सोना, चाँदी, जस्ता, गन्धक, ताँबा, नीलम, पन्ना, लोहा, बैराइट, जिप्सम, चूने का पत्थर, बॉक्साइट और लिगनाइट का पर्याप्त भण्डार है किन्तु यातायात की कठिनाइयों के कारण इसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। केवल खड़िया मिट्टी, कोयला और जिप्सम ही अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। ऊधमपुर और रामवन क्षेत्र इसके लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। इस समय प्रदेश में कुल मिलाकर बाक्साइट १२२ लाख टन, लिग्नाइट ७३ लाख टन, गन्धक २ लाख टन, जिप्सम ३७० लाख टन तथा सीमेंट के ८६० लाख टन भण्डार सुरक्षित हैं।

उद्योग धन्धे—कश्मीर में ऊनी उद्योग विशेष प्रसिद्ध है। कश्मीरी लोग सुन्दर नस्लों की भेड़-बकरियाँ पालते हैं और उनसे शाल-दुशाले, पश्मीना, गलीचे और कालीन बनाते हैं। यहाँ के कालीन विदेशों में अधिक प्रसिद्ध हैं। ऊन की कसीदे की टोपियों की विशेष माँग के कारण यह व्यवसाय अधिक व्यापक हो गया है। श्रीनगर में रेशमी और ऊनी कपड़ों, बारामूला, में दियासलाई, सोपोर में दरवाजे बनाने, रणवीरसिंह पुरा में चमड़ा, कालीन और चीनी के कारखाने स्थित हैं। लकड़ी पर खुदाई का काम यहाँ का प्रमुख उद्योग है। केन्द्र सरकार की ओर से घड़ियाँ और टेलीफोन के उपकरण बनाने के कारखाने भी यहाँ स्थापित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त चाँदी के बर्तन, लकड़ी की वस्तुएँ, कागज की लुगदी, रेशम बुनने, तारपीन, सीमेंट, दियासलाई तथा कंक्रीट बनाने के कारखाने भी यहाँ स्थापित किए गए हैं। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में आने वाले पर्यटकों (टूरिस्ट्स) की आवश्यकताओं की पूर्ति-हेतु भी यहाँ अनेक उद्योग विकसित हुए हैं। इनमें हाऊस बोट, शिकारा, होटल आदि व्यवसायों की प्रमुखता है।'

नगर एवं जातियाँ—भारत की भाँति कश्मीर प्रदेश की जनसंख्या भी गाँव-प्रधान है। कुल जनसंख्या का १० प्रतिशत व्यक्ति नगरों में और ९० प्रतिशत गाँवों

---

१. प्राचीन पद्मपुर।

२. कश्मीर घाटी को यहाँ लोग कामराज, मराज तथा यमराज क्षेत्रों में बाँटते हैं। —सम्पादक

में रहता है । सम्पूर्ण प्रदेश में २ नगर, २७ कस्बे और ८७४० गाँव हैं । श्रीनगर और जम्मू यहाँ के दो प्रसिद्ध नगर हैं इनमें जम्मू मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ का प्रमुख मन्दिर रघुनाथ मन्दिर है जिसमें सभी देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं ।

इस राज्य के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में रहने वाली प्रमुख जातियों में डोगरा, ब्राह्मण, राजपूत, ठाकुर आदि प्रमुख हैं । उत्तरी-पश्चिमी भाग में छिवाली, दरद, कानकून, बधावर, शेख, हाँजी, मीर, पठान, सैयद, मुगल इत्यादि जातियाँ हैं । पहाड़ी क्षेत्रों में आदिवासी भी बसते हैं, जिनमें चौयान, दुम, हुंजी, वन्द, नंगर, वत्तल और गूजर हैं । जम्मू हिन्दु बहुल है, कश्मीर मुस्लिम बहुल है तथा लद्दाख बौद्ध बहुल क्षेत्र है ।

परिवहन एवं यातायात—कश्मीर में यातायात का प्रमुख साधन सड़कें हैं । प्रदेश की सड़कों की कुल लम्बाई १४०७५ किलोमीटर है । इनमें ६३९३ कि० मीटर पक्की और ७६८२ किलोमीटर कच्ची सड़कें हैं । राष्ट्रीय मार्ग की लम्बाई ५४४ किलोमीटर है जो जम्मू से बनिहाल और जवाहर सुरंग के द्वारा श्रीनगर होता हुआ लद्दाख़ तक जाता है । कश्मीर घाटी से शेष भारत का सम्बन्ध जोड़ने के लिए जवाहर सुरंग बनाई गई है । इस सुरंग की लम्बाई २ किलोमीटर तथा चौड़ाई ३ मीटर है । यह सुरंग बनिहाल दर्रे पर बनाई गई है । पठानकोट से लेकर जम्मू तक रेल मार्ग भी है जिसे सन् १९८४ तक बढ़ाकर ऊधमपुर तक पहुँचाने की योजना है । इसके अतिरिक्त दिल्ली से जम्मू और श्रीनगर तथा लेह (लद्दाख़) तक नियमित रूप से वायु-सेवा भी है । इसी क्षेत्र में संसार प्रसिद्ध चुशूल की हवाई पट्टी भी है। कश्मीर घाटी में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए नदियों और झीलों में नौका और शिकारे भी चलाये जाते हैं । पहाड़ों में घूमने को घोड़ों का प्रयोग किया जाता है ।

तीर्थस्थान—कश्मीर घाटी में श्रीअमरनाथ तथा खीर-भवानी प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ हैं । जम्मू क्षेत्र में वैष्णव देवी का प्रसिद्ध तीर्थ है । बौद्धों के लिए लद्दाख़ में स्थित हिमिस गुम्पा पवित्र तीर्थस्थल माना जाता है । मुसलमानों का पवित्र तीर्थ 'हजरतबल' श्रीनगर में है, जिसमें हजरत मुहम्मद का पवित्र बाल रखा है । सिक्खों की 'छठी पादशाही' भी कश्मीर में स्थित है ।

कश्मीर की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

डा० कृष्णा हंडू
प्रवक्ता, एम० जी० एन० शि० प्र० महाविद्यालय,
जालन्धर ।

" 'संस्कृति शब्द का अर्थ' मनुष्य का भीतरी विकास और नैतिक उन्नति है, एक दूसरे के साथ सद्‌व्यवहार है और दूसरे को समझने की शक्ति है ।" स्वर्गीय पंडित नेहरूजी की यह धारणा इस शब्द के सही अर्थ को प्रतिपादित करती है ।

संस्कृति तथा भाषा में अविच्छिन्न तथा अटूट सम्बन्ध रहा है । हाल ही खोजों से यह सिद्ध हुआ है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता अफगानिस्तान से लेकर दिल्ली तक और कश्मीर से लेकर ताप्ती घाटी तक फैली हुई थी । यह सभ्यता अन्य समकालीन सभ्यताओं से अधिक सम्पन्न थी । बौद्धिक संस्कृति की नींव रखने वाले सिन्धु घाटी के लोग ही इस सभ्यता के लोग थे ।[१]

भाषा के क्षेत्र में कश्मीरी भाषा वैदिक संस्कृत की पुत्री होने का गर्व कर सकती है । इसी से स्वतन्त्र अपभ्रंश के रूप में आधुनिक कश्मीरी भाषा विकसित हुई है ।[२] इस तथ्य के आधार पर कश्मीरी भाषा के कई शोधकर्त्ताओं ने सिद्ध किया है कि ग्रियर्सन का भाषाओं के वर्गीकरण का ढंग सर्वथा भौगोलिक था, भाषा वैज्ञानिक नहीं । संस्कृति के प्रतिपादन में भाषा का अद्‌भुत योगदान है । दुर्गम मार्गों एवं कश्मीर में बसी मूल जातियों के विरोध के कारण आर्य संस्कृति कुछ देर से कश्मीर से प्रसारित हुई और तत्कालीन पैशाची भाषा पर अपना गहन प्रभाव डालने लगी । आर्यों की नैसर्गिक सहिष्णुता तथा सद्‌व्यवहार ने यहाँ के मूल वासियों को प्रभावित किया और इस तपोभूमि में संस्कृत भाषा प्रतिष्ठित हुई । संस्कृत काल ५०० ई० तक माना जाता है ।[३] कश्मीर संस्कृत भाषा के अध्ययन का मुख्य केन्द्र था ।[४] यह भाषा, धर्म एवं साहित्य का सशक्त माध्यम बनी, यहाँ तक कि बिल्हण के अनुसार—'स्त्रियाँ भी संस्कृत

---

१. धर्मयुग ३० न० १९८० ।
२. 'वितस्ता' भाषा विशेषांक, १९७५ । सम्पादक : डा० रमेशकुमार शर्मा, प्रकाशक—हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर ।
३. हिन्दी, उद्‌भव, विकास और रूप : डा० हरदेव बाहरी ।
४. हिस्ट्री आफ कश्मीर, बामजयी, पृ० २४१ ।

और प्राकृत का स्वच्छन्द प्रयोग करती रहीं ।[1] यह प्रदेश प्राचीन काल से ही महर्षियों, मुनियों, कवियों एवं आलोचकों का गढ़ रहा है। अष्टाध्यायी के रचयिता पाणिनी का जन्म भी इसी पुण्यभूमि में हुआ माना जाता है ।[2] यहाँ के क्षीरस्वामिन नामक वैयाकरण का 'धातुपाठ' नामक ग्रन्थ व्याकरण की एक लब्ध-प्रतिष्ठित कृति मानी जाती है । उनका कश्मीरी पंडित होना एक महान् गौरव का विषय है ।[3]

सम्राट अशोक के राज्य-काल में कश्मीर में बौद्ध धर्म का आगमन एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है । प्रसिद्ध दार्शनिक इस समय कश्मीर आकर संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन में रम गए । वस्तुतः कश्मीर बौद्ध धर्म का प्रख्यात केन्द्र बन गया और आदि नरेशों द्वारा निर्मित अनेक बौद्ध मठ और विहार ज्ञान प्राप्ति के केन्द्र बन गये । प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन की मातृभूमि कश्मीर ही थी । इस काल में कश्मीरी विद्वानों ने अपनी एक स्वतन्त्र लिपि 'शारदा लिपि' का विकास किया ।[4] कश्मीर में अध्ययन हेतु आए तिब्वती विद्वानों ने इसी 'शारदा' का प्रयोग किया । तात्पर्य यह है कि कश्मीर की संस्कृति के विकास में संस्कृत भाषा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही है और कश्मीर के पुस्तकालय संस्कृत हस्तलिखित प्रतियों से युगों-युगों तक सुशोभित रहे । श्री बुहलर सन् १८७५ में संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में जब कश्मीर पहुँचे तो उन्हें २२ संस्कृत भाषी पंडितों से मिलने का सौभाग्य मिला ।[5] स्पष्ट है कि कश्मीर की संस्कृति को स्थिरता प्रदान करने में संस्कृत का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है ।

कश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रभाव अधिक समय तक न रहा और संस्कृत पुनः प्रशस्त हुई । 'राजतरंगिणी' भी कल्हण ने संस्कृत में लिखी । यद्यपि कश्मीरी लोक भाषा से प्रभावित कुछ शब्दों का प्रयोग इसमें हुआ है । सम्भवतः कश्मीरी भाषा में परिपक्वता के अभाव के कारण शालीन जनमानस संस्कृत भाषा से ही अनुप्राणित रहा ।

ग्यारहवीं शताब्दी में बिल्हण की प्रिय शारदा-भूमि आक्रमणों, राजनीतिक उपद्रवों एवं अव्यवस्था का शिकार हुई । मुसलमानों के आगमन के बाद कश्मीरी भाषा पर फारसी का प्रभाव पड़ा और तत्पश्चात् इसमें हिन्दुस्तानी अँग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द भी समा गए । आजकल कश्मीरी भाषा की, सम्पूर्ण घाटी में, एकरूपता स्थापित हो रही है, केवल 'ग्रामीण' और 'शहरी' कश्मीरी तथा हिन्दू कश्मीरी (बट कॉशुर) एवं मुसलमान कश्मीरी[6] (मुसलमान कॉशुर) में अभी भी अन्तर परिलक्षित होता है ।

१. हिस्ट्री आफ कश्मीर, पृ० २४४ ।
२. कश्मीरी पंडित, आनन्द कौल, पृ० ६६ ।
३. हिस्ट्री आफ कश्मीर, बामजयी, पृ० २४४ ।
४. वही, पृ० २४४ ।
५. वही, पृ० २४६ ।
६. शहरी कश्मीरी तथा मुसलमान कश्मीरी में फारसी-अरबी शब्द-समूह का आधिक्य होता जा रहा है । —सम्पादक

कश्मीर की संस्कृति की दूसरी विशेषता इसकी साहित्यिक परम्परा है। वैदिक काल से ही यहाँ के विद्वान् साहित्य के क्षेत्र को समृद्ध करते रहे हैं। कश्मीर के विद्वान् 'काव्य-शास्त्र' ग्रंथों में पारंगत थे। ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक तथा 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनन्दवर्धन, 'काव्यालंकार-सूत्र' के प्रणेता वामन तथा 'काव्यालंकार-संग्रह' के लेखक उद्भट कश्मीर के ऐसे रत्न हैं जिन पर संस्कृत साहित्य को गर्व है। बिल्हण, कल्हण, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट जैसे प्रसिद्ध कवि साहित्य की ऐसी पृष्ठभूमि बना-कर गए, जिसके कारण अनेक दैवीय, मानवीय प्रकोपों के थपेड़ों में भी यह महान् आर्य जाति अपनी विशिष्टता बनाए रखती रही, जिसका प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। कश्मीरी कवियों ने संस्कृत में ही काव्य रचना की, पर कालान्तर में उनकी भाषा प्राकृत एवं अपभ्रंश से प्रभावित हुई और कवियों ने मातृभाषा में काव्य रचना आरम्भ की। राजानक शितिकंठ का 'महानय प्रकाश' कश्मीरी भाषा की पूँजी है जिसका समय दसवीं शती के आस-पास ठहराया जाता है।[1] ललद्यद का समस्त कश्मीरी काव्य (१२५०) ई०) 'लल वाक्' नाम से प्रसिद्ध है जिसमें सरसता, स्पष्टता एवं सजीवता है। कबीर की भाँति उनका काव्य भी 'मसि कागद' का दास नहीं रहा अपितु गेय रहा। प्रारम्भ में मौखिक परम्परा में रहा और बाद में लिपिबद्ध किया गया। उनके काव्य में धार्मिक व दार्शनिक अभिव्यक्ति मुखर रही। इसी प्रकार नूरुद्दीन ने धर्म का वास्तविक स्वरूप जनता के समक्ष रखा और सदाचार पर बल दिया, एक-एक 'श्रुक' में धर्म-दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत की। इन दोनों के काव्य में शैव दर्शन, तसब्बुफ, सहजोपासना, अध्यात्मिक साधना, पाखण्ड प्रतिरोध तथा आडम्बर त्याग का प्रतिपादन हुआ है।

कश्मीर के विलासप्रिय शासक क्षेमगुप्त के शासन काल में कश्मीरी समाज का नैतिक बल गिरता रहा, राजद्रोह, वेश्यावृत्ति तथा अनाचार ने समाज को खोखला कर दिया। विदेशी आक्रान्ताओं ने सुरम्य घाटी को वीराने में बदल दिया। क्रूर डलच ने मानो वादी को अग्निकुंड में परिवर्तित कर दिया। इसके पश्चात् तिब्बत निवासी रिंचन का कश्मीर पर आधिपत्य हो गया जिसने सन्त बुलबुलशाह के कहने पर इस्लाम धर्म ग्रहण किया; फिर १३३० में कश्मीर स्थायी रूप से मुसलमान शासकों के अधिकार में आ गया। इन दिनों लौकिक तथा इतिवृत्तात्मक काव्यों की बहुलता मिलती है। जैन-उल-आब्दीन, का समय (१४२० ई०) भाषा और साहित्य की दृष्टि से उत्कर्ष का युग माना जाता है। इस काल में कश्मीरी काव्य-कला, नाट्य-कला एवं संगीत कला ने खूब उन्नति की। कश्मीरी भाषा को राजकीय प्रश्रय मिला और संस्कृत व फारसी की अनेक पुस्तकों का अनुवाद हुआ। योधभट्ट ने 'जैन प्रकाश' नामक नाटक भी लिखा।[2] 'बाणासुर वध' (भट्टावतार), 'जैन चरित्र' (सोम पंडित) तथा श्रीयुध भट्ट

---

१. वितस्ता, १९६९। सम्पादक : डा० रमेशकुमार शर्मा, प्रकाशक—हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।
२. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० २३३।

का 'सुख-दुख चरित' प्रसिद्ध हुए। इसके पश्चात् कश्मीरी साहित्य का गीति-काल (१५५०-१७५०) आता है जिसकी प्रवर्त्तक कवयित्री हब्बाखातून है। प्रेमगीतों की इस जननी के गीतों में दर्द है, करुणा है, वेदना है। उस के एक-एक गीत में संयोग व वियोग श्रृंगार की भाववृत्तियों का सुन्दर चित्रण है। रूपाभवानी का समस्त काव्य जहाँ एक ओर ज्ञान और भक्ति की सामंजस्यपूर्ण प्रवृत्तियों पर टिका है, वहाँ प्रेम की पीर से भी आप्लावित है। तत्पश्चात् साहित्य की धारा में सूफी प्रेम काव्य (१७५०-१९००) की तरंगें उठ-उठकर अपने जयघोष से समस्त जाति को अनुप्राणित करती रहीं। ये प्रेम काव्य मुसलमान कवियों ने फारसी मसनवियों से कथानक लेकर कश्मीरी में लिपिबद्ध किए। इस काव्य-धारा के प्रवर्त्तक शाहगफूर माने जाते हैं। इन कवियों ने सूफी सिद्धान्तों को इस्लामी मान्यताओं के आधार पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है।[1]

इसी काल में दूसरे वर्ग में भारतीय काव्य-पद्धति के आधार पर राम-काव्य और कृष्ण-काव्य आता है जिसके रचयिता कश्मीरी पंडित हैं। इनमें मुख्य प्रकाशराम, कृष्ण राजदान, परमानन्द तथा लक्ष्मणजू रैणा थे। इन सभी भक्त कवियों की कविताओं में ज्ञान, भक्ति, कर्म और धर्म की विस्तार से चर्चा मिलती है जिससे सिद्ध होता है कि वे उच्चकोटि के तत्वद्रष्टा थे। इनकी भाषा संस्कृत-निष्ठ है जिसमें कहीं-कहीं फारसी, हिन्दी एवं देहाती कश्मीरी के प्रयोग मिलते हैं। इसके पश्चात् महजूर, मास्टर जिन्दकौल, समदमीर आदि का नाम उल्लेखनीय है जिनके सतत प्रयत्नों से कश्मीरी साहित्य की वाटिका विभिन्न रंग रूप के पत्र-पुष्पों से सुसज्जित होती रही। आधुनिक काल में गद्य ने कश्मीर के साहित्य को और भी आगे बढ़ाया क्योंकि गद्य के माध्यम से लोक-कथाओं का जो प्रचुर भण्डार बिखरा पड़ा था उसके संग्रह एवं सम्पादन की ओर रुचि बढ़ने लगी।[2] सन् १८७९ में ईश्वर कौल ने संस्कृत में कश्मीरी व्याकरण की रचना की। इन वर्षों में धार्मिक पुस्तकें भी गद्य में लिखी गईं। जिनमें 'कुराने पाक' का कश्मीरी अनुवाद प्रसिद्ध है। कश्मीरी साहित्य में नाटक साहित्य का वास्तविक स्वरूप 'सत्य काहवट' (नन्दलाल कौल) में मिलता है यद्यपि लोकनाट्य 'भांडपोथर' का प्रचलन काफी पहले से रहा था। सन् १८७७ के भयंकर दुर्भिक्ष में इस कला के ज्ञाता मृत्यु को प्राप्त हुए और जो बच गए उनकी कला को हेय समझा जाने लगा। कश्मीर के कई नाट्य संस्थान समय-समय पर ग्रामीणों, कृषकों एवं श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालते रहे। आधुनिक काल के उभरते साहित्यकार साहित्य के विभिन्न अंगों के माध्यम से जीवन के विविध व्यापारों, क्रिया-कलापों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों को चित्रित करने में संलग्न हैं।

संस्कृति के तत्त्वों में अगला चरण किसी जाति की धार्मिक एवं दार्शनिक भावना है। यहाँ के आदिवासी नाग, यक्ष और पिशाच भी रहे हैं। 'नागदेवता' इन आदि

---

१. कश्मीरी और हिन्दी सूफी काव्य : डा० जियालाल हण्डू, पृ० ३०६।
२. कश्मीर प्रोवर्ब्स एण्ड रिडिल्स : रेवे० जे० हिन्टन नोल्स, का प्रयत्न।

वासियों के उपास्य थे जिनका संकेत कल्हण ने भी दिया है। परन्तु फिर आर्य-सभ्यता से प्रभावित होकर ये जातियाँ आर्य-सभ्यता में गर्भित हुईं। वैदिक काल में वरुण, सूर्य, इंद्र आदि के अतिरिक्त 'रुद्र' का भी उल्लेख है। ऋग्वेद में शिव को ईश्वर रूप में पहचानने की चेष्टा की गई। अमंगलकारी तत्त्वों के विनाश के बिना मंगल भाव का प्रसार सम्भव नहीं। इसीलिए ऋग्वेद में शिव के रुद्र रूप का अंकन भयंकरता के साथ किया है। 'शम्भु,' 'हर' उसी सत्ता के नाम हैं। कश्मीर में शैव-दर्शन का विकास शिव-सूत्रों से माना जाता है, जिनका ज्ञान वासुगुप्त को 'शंकर पल' के स्पर्श मात्र से होना माना जाता है।[1] उन्हीं सूत्र के स्मरण के बाद इन्होंने 'स्पन्दकारिका' लिखकर इन सूत्रों को अमरत्व प्रदान किया। उनके दो शिष्यों कल्लट और सोमानन्द ने क्रमशः स्पन्द शास्त्र व प्रत्यभिज्ञा शास्त्र का प्रवर्त्तन किया। प्रत्यभिज्ञामत के अनुसार जीवन में 'मैं शिव हूँ' यह प्रत्यभिज्ञान हो जाने पर ही शिव साक्षात्कार की स्थिति आती है।[2] वस्तुतः जीव, जगत् और शिव एक है—अद्वैत है। शिव और जीव की यह अभेदता कर्म और ज्ञान की साधना से प्राप्त होती है और जीव का चरम लक्ष्य शिव में लय होना बताया जाता है। चूंकि संसार की सर्वोपरि उत्पादक शक्ति का प्रतीक 'लिंग' है इसीलिए लोग शिवलिंग की पूजा करते हैं।[3] शिव-पार्वती गृहस्थी जीवन के आदर्शदेव मानकर पूजे जाते हैं। जनमानस पर इस धर्म का प्रभाव इतना तीव्र रहा कि इसको बौद्ध धर्म, वैष्णव धर्म या सूफी धर्म किसी भी रूप में कम न कर सके। कश्मीरी हिन्दू कहीं भी, किसी भी 'कंकर' को 'शंकर' मानकर उसकी श्रद्धा से पूजा करते हैं। पत्र-पुष्प जो भी मिल जाए उपहार हेतु पर्याप्त समझते हैं। प्रत्येक ग्राम और नगर में शिवमन्दिर हैं।

कालान्तर में इस्लाम धर्म की नींव दृढ़ होने के कारण तथा सूफी मत के प्रसार के कारण ज्ञान और भक्ति का रूप उभर आया। सूफी सन्त सैयद हमदानी के साथ उनके लगभग ७०० भक्त आए जो अपनी आध्यात्मिक साधना में लीन होकर यहीं बस गए और आर्य संस्कृति से प्रभावित जनमानस की दृष्टि में 'ऋषि' या 'बाबा' बन गए। इन ऋषियों के प्रतिष्ठान (ज़ियारतें) अब भी कश्मीर में हैं।

भाषा, साहित्य एवं धर्म के साथ-साथ संस्कृति का कला के साथ भी गहरा सम्बन्ध होता है, जिसमें वास्तुकला, स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला एवं संगीतकला सम्मिलित है। कश्मीर की प्राचीनता तथा कलात्मक सौन्दर्य का परिचय 'बूर्जहोम' के भू-खनन से मिलता है। आर्य सभ्यता के प्राप्त अवशेष इसकी समृद्धि को स्पष्ट करते हैं। कश्मीर में स्थापत्यकला के उत्कृष्ट नमूने प्राप्त होते हैं। हारवन उत्खनन के दौरान बौद्धकाल के कई विहारों और मठों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। हारवन टेरा-

---

१. हिस्ट्री आफ कश्मीर, बामज़यी, पृ० २६४।
२. वही, पृ० २६६।
३. वितस्ता, १९६६, पृ० ६। सम्पादक : डा० रमेशकुमार शर्मा (लिंग तथा ब्रह्म शब्द समानार्थक माने जाते हैं। —सम्पादक

कोटा में उच्च वर्ग के लोगों का चित्रण है जिनके रूप-रंग में, मध्य एशिया का साम्य प्रतीत होता है। कश्मीरी मूर्तिकला पर गान्धार तथा गुप्त कला का प्रभाव परिलक्षित होता है परन्तु कश्मीरी मूर्तिकारों की मौलिकता मूर्तियों के 'नैन-नक्श' में प्रतिभासित होती है।

स्थापत्य कला में भी मार्तण्ड तथा अवन्तिपुर के अवशेष इस तथ्य का प्रमाण हैं कि मुस्लिम पूर्व युग में कश्मीर की वास्तु कला चरमोत्कर्ष पर थी। इसके अतिरिक्त चित्रकला भी कश्मीर की प्राचीन कला रही है परन्तु प्रवासी यूरोपीय पारखी इस कला के उत्कृष्ट नमूने अपने साथ ही ले गए। कहा जाता है कि कश्मीरी लोगों में चित्रकला के प्रति यथेष्ट मोह रहा है। माघ मास के शुक्ल पक्ष की गौरी तृतीया प्रसिद्ध है। इस दिन परिवार का पुरोहित गहरे रंगों से बनाई गई देवी-देवताओं की चित्रावली परिवार के लड़के-लड़कियों को भेंट-स्वरूप देता है। आज भी यही प्रथा प्रचलित है। इसी प्रकार आषाढ़ मास की सप्तमी को प्रत्येक हिन्दू घर भित्ति-चित्र बनाते हैं, जो आजकल भी प्रचलित हैं, मुख्य रूप से स्त्रियाँ इस कला में निपुण हैं।[१] नृत्य तथा संगीत कला में भी कश्मीर की परम्परा उज्ज्वल रही है। हारवन में प्राप्त कुछ टेराकोटा के अवशेष (पटियाँ) नर्तकी तथा ढोलक पर थाप देते हुए संगीतकार को चित्रित करते हैं। राजतरंगिणि में भी कई स्थानों पर नृत्य, नाटक तथा संगीत कला का उल्लेख मिलता है। उद्भट, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त द्वारा रचित नृत्य कला से सम्बन्धित पुस्तकें इसका प्रमाण हैं। शिव के 'ताण्डव' का वर्णन राजनक रत्नाकर का माना जाता है।[२] नृत्य तथा संगीत कला का संचारण निर्बाध रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता रहा, परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का इतिहास तो गृह-युद्धों, अनाचार, दमनचक्र तथा प्राकृतिक प्रकोपों के कारण इतना धुँधला हो गया कि संस्कृति के ये उज्ज्वलतम तत्व लुप्त हो गए। शाहजहाँ के काल में भावभट्ट संगीत राय द्वारा रचित 'संगीत अनूप अंकुश' तथा राजा राम कौल द्वारा रचित फारसी भाषा में 'राग-माला' इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि संगीत की लहरियाँ तब भी व्याप्त थीं। यह ग्रन्थ आजकल श्री रणबीर संस्कृत शोध संस्थान, जम्मू में सुरक्षित हैं।[३] नाटकों में भी रामकृष्ण सूरी द्वारा रचित नाटक 'प्रभावती प्रद्युमन्न' इसी पुस्तकालय में सुरक्षित है, जो भगवान् कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न एवं वज्रना की पुत्री प्रभावती की प्रेम कथा एवं उनके विवाह के कथानक से सम्बन्धित है।[४]

मध्य काल की कोमल कलाओं में विभिन्न हस्तकलाओं का गौरव बढ़ा। जिसमें काष्ठ-कला, ताम्र-कला तथा 'पेपरमैशी' जैन-उल-आबदीन के शासन काल में अधिक

---

१. हिस्ट्री आफ कश्मीर : बामजयी, पृ० २८५।
२. वही, पृ० २७९।
३. डेली ट्रिब्यून, जुलाई, २९, १९७९।
४. वही।

राज्याश्रय प्राप्त करने के कारण निखर उठीं। कश्मीरी कढ़ाई का उत्कृष्ट नमूना 'शाल' का विकास अधिकतर मुगलकाल में हुआ, यद्यपि इसका प्रारम्भ पूर्व-हिन्दूकाल में हुआ था। आज भी ये घरेलू दस्तकारियाँ कश्मीरी कारीगरों की आर्थिक व्यवस्था का सम्बल हैं।

अध्यात्म भावना तो कश्मीर की संस्कृति के कण-कण में व्याप्त रही है। 'शिवरात्रि', 'नवरेह' '(नव वर्ष के प्रथम दिवस का शुभ पर्व)' 'रामनवमी' बैसाखी,' 'श्रावण पूर्णमासी' आदि हिन्दुओं के मुख्य पर्व तथा मुसलमानों के 'ईद,' 'मुहर्रम', 'रमजान व्रत', 'सन्तों एवं सूफियों की स्मृति से सम्बन्धित 'उर्स' वादी में भावात्मक एकता का सिंहनाद सा करते प्रतीत होते हैं।[1]

आधुनिक कश्मीर की संस्कृति जो युगों से नाग, पिशाच, वैदिक, ब्राह्मण, बौद्ध, सूफी संस्कृतियों का संगम स्थली रही है, अब पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो रही है। राजनीतिक, औद्योगिक, शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों में इसका प्रभाव स्पष्ट है।

यह भारत की प्राचीन संस्कृति ही है जिसने धर्म के क्षेत्र में इस सुरम्य घाटी को सह-अस्तित्व का वरदान दिया है। हिन्दुओं और मुसलमानों के एक ही जगह स्थित धार्मिक एवं पवित्र आलय उन्हें एक दूसरे के समीप लाते हैं और उनमें सन्तों, सूफियों, देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न करते हैं। 'कार', 'खान', 'शाह', 'पंडित' 'भट्ट', 'धर' (डार) आदि हिन्दू मुसलमानों के समान 'सरनेम्स' भी उनके एक होने का ज्वलन्त प्रमाण देते हैं।

---

१. सिक्खों की 'छठी पादशाही' भी श्रीनगर में है। —सम्पादक

कश्मीर का भारतीय संस्कृति में स्थान

डा० विमलाकुमारी मुंशी
सीनियर फैलो, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति के कुछ ऐसे प्रतीक और चिह्न हैं जो कि अति प्राचीन काल से आज तक चले आ रहे हैं। मछली के मत्स्यावतार की ही बात नहीं कर रही हूँ, जनजीवन और ललित कलाओं में भी मछली का 'मोटिफ' कलात्मक आकार के विभिन्न आयामों में आज तक पाया जाता है। कमल का महत्व इससे भी अधिक है। ब्रह्मा तक लक्ष्मी के साथ ही उसका संसर्ग नहीं है अपितु अनेकानेक गाथाओं, अनुष्ठानों तथा कलात्मक रूपों में वह हमारी संस्कृति में अनुस्यूत है। भोज पत्र (भूर्ज्व) पर प्राचीन ग्रन्थ लिखे जाते थे, और देवदारु पवित्र लकड़ी है। दोनों कश्मीर में पाये जाते हैं। हिम यद्यपि पहाड़ों पर है और वह भी केवल हिमालय-श्रेणी पर, फिर भी हिम का हमारी संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है और वह कैलास, गंगोत्री तथा भगवान शिव के हिम-कुन्देन्दु-कर्पूर गौर रूप में प्रतिदिन स्मरण की जाती है। इसी प्रकार हिम, कमल तथा मछली का आधार 'जल' भी एक विशेष स्थान हमारी संस्कृति में रखता है। स्वयं भगवान विष्णु सागर में निवास करते हैं क्योंकि वह उनकी ससुराल (लक्ष्मी सागर-पुत्री है) हैं; वैसे शिव भी (पार्वती के पिता) हिमालय के घर में ही रहते, और ब्रह्मा तो स्वयं अपने श्वसुर हैं। नाग (मनुष्य तथा सर्प दोनों रूपों में) हमारी संस्कृति तथा इतिहास में एक विशेष स्थान रखते हैं, यह सर्वविदित है। सोमलता का वैदिक महत्व भी स्पष्ट ही है। इन सबके बाद मैं पूजादि में केसर तथा कस्तूरी के महत्व की याद दिलाती हूँ। कश्मीर ही भारत का वह एकमात्र प्रदेश है जहाँ उपर्युक्त सारी वस्तुएँ पाई जातीं हैं और वहाँ के जीवन का अभिन्न, आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंग है।

केसर तो केवल कश्मीर में ही पाई जाती है, यद्यपि अन्य स्थानों पर उसे उगाने के आज प्रयत्न किए जा रहे हैं। नाग-जाति का आदिम-स्थान कश्मीर है। तक्षक यहाँ का निवासी था, यहाँ तक्षक तीर्थ भी है। नाग, जल में रहते माने जाते हैं। हमारे यहाँ नाग शब्द का एक अर्थ जल-स्रोत या धारा है। आज जो शोध-कार्य

चल रहा है, उससे संकेत मिलते हैं कि सोम या तो भाँग[1] का एक रूप था (सोम तथा भाँग की विशेषताएँ समान हैं) या कोई मशरूम (कठफूला) था। ये दोनों बहुत ही बड़ी मात्रा में कश्मीर में पाये जाते हैं।

मनु महाराज की नौका हिमालय में जहाँ टिकी थी वह 'मनोरवसर्पण' भी कश्मीर में ही है, यद्यपि वह और शारदातीर्थ आज पाकिस्तान के आक्रमण एवं प्रभाव के कारण शेष कश्मीर से अलग-थलग हो गए हैं।

मैं यह कहने का प्रयत्न कर रही हूँ कि कश्मीर ही आर्यों का मूल उद्गम-स्थान है। सिन्धु घाटी सभ्यता को विदेशी विद्वान आर्येतर बताते हैं और यह मानते हैं कि आर्य पश्चिम से पूर्व की ओर आये थे और उन्होंने सिन्धु-घाटी सभ्यता को नष्ट किया था। सिन्धु घाटी सभ्यता का समय वे १५०० ई० पू० से पीछे नहीं ले जाना चाहते क्योंकि, सिन्धु-घाटी सभ्यता को आर्य सभ्यता मान लेने पर या उसे १५०० ई० पू० से पहले की मान लेने पर भाषा-वैज्ञानिक भूगोल के आधार पर यह मानना होगा कि आर्यों की यात्रा पूर्व से पश्चिम को हुई थी; यही मान्यता भारतीय विद्यापीठ के ग्रन्थ 'द वैदिक एज' में स्थापित की गई है। सिन्धु नदी में प्रति ५०० वर्ष भयंकर जल-प्लावन आता रहा है उसी से यह सभ्यता प्रति ५०० वर्ष नष्ट होती रही है। इसका काल १५०० ई०पू० है यह मान्यता भी उचित नहीं है। ६०० ई०पू० बुद्धकाल है, फिर उसके पूर्व लगभग ८०० वर्षों में महाभारतकाल तथा रामायणकाल दोनों कैसे ठूँसे जा सकते हैं,[2] यही नहीं वैदिक भाषा का संस्कृत बनना और पाली के बुद्ध-कालीन परिपक्व रूप में भ्रष्ट होना भी इतने छोटे से काल में सम्भव नहीं है। जो अन्तिम तर्क मैं उपस्थित कर रही हूँ वह यह है कि विदेशी (विशेषकर मार्क्सवादी) विद्वानों के प्रयत्नों के बावजूद आज यह सिद्ध हो गया है कि सिन्धु-घाटी सभ्यता वैदिक सभ्यता थी। डा० राव ने सिन्धु-घाटी की मुहरों (मुद्राओं) की भाषा की पहेली को हल करके यह सिद्ध कर दिया है कि वे वैदिक संस्कृति की हैं तथा सिन्धु-घाटी सभ्यता के अवशेष हजारों मीलों तक पूर्व दिशा में पाये जाते हैं। 'मखनासन' शिव का रूप उन मुहरों पर अंकित है यह भी उन्होंने सिद्ध कर दिया है। अतएव अब निर्भ्रान्त रूप से यह सिद्ध हो गया है कि आर्य, पूर्व से पश्चिम में फैले थे, यही कारण है कि वेदों में कहीं भी यह संकेत नहीं है कि आर्य कहीं बाहर से आये थे। ई०पू० चार हजार वर्ष के काल में यहूदी लोग 'ओर' नगर से पश्चिम की दिशा में गये थे और इजराइल में बसे थे, यह स्मृति उनकी परम्परा में आज भी चली आ रही है। प्राचीन काल में कण्ठस्थ गाथाएँ इस प्रकार की स्मृतियों को जीवित रखती थी। अग्नि-पूजक फारसी ही वैदिक

१. भाँग ही ऐसा मादक पेय है जो पीसा जाता है, दूध में, मट्ठे में, गरम या ठण्डा पिया जा सकता है और स्थायी हानि नहीं करता।

२. १९-२-८१ के हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित समाचार के अनुसार चेचर (बिहार) में रामायण-काल का बाण-फल मिला है जिसे वैज्ञानिकों ने १५०० से १८०० ई०पू० का माना है। उससे पूर्व की सिन्धु-घाटी सभ्यता कम से कम २००० से ३००० ई०पू० की होनी ही चाहिए।

आर्यों के एक अंश नहीं थे अपितु हो सकता है कि आगे के शोध यह सिद्ध कर दें कि यहूदी भी पूर्व से पश्चिम (और आगे) यात्रा करने वाले आर्यों का ही अंश थे, और फिर वे आगे यूरोपादि में फैल गए।

वेदों में स्पष्ट संकेत है कि आर्य गौर वर्ण के, लम्बे, ऊँची नाक वाले, कपिंजल केश तथा प्रायः नीली आँखों वाले थे। अच्छे पुरोहित की खोज के लिए ये ही संकेत वेदों में है। कश्मीर, पंजाब, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, (पाकिस्तान के पठान-क्षेत्र सहित) तथा आज के ईरान में ही आर्यरक्त के उपर्युक्त मुखमुद्रा के लोग पाये जाते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि आर्य-रक्त के लगभग ८० प्रतिशत लोग आज इस्लाम धर्म का अनुसरण कर रहे हैं। कश्मीर तथा पंजाब से चलकर आर्य-रक्त के लोग भारत में फैले और उसे आर्यावर्त्त बनाया। आज आर्य धर्म का पालन करने वाले भारतवासियों में बहुत ही क्षीण संख्या में आर्य-रक्त के लोग पाये जाते हैं। परशुराम तथा अगस्त्य ने पश्चिमी समुद्र-तट से होकर तथा विन्धाचल के पार जाकर, धुर-दक्षिण में आर्य, संस्कृति फैलायी। यद्यपि बात विचित्र लगेगी लोगों को, परन्तु मैं संकेत करना चाहती हूँ कि शिव आर्य देवता है (गौर हैं) तथा आगे चलकर आर्य संस्कृति के पोशक राम और कृष्ण (श्यामवर्ण) अनार्य रक्त के हैं। मैं यह कहना चाहती हूँ कि आर्य-अनार्य का झगड़ा व्यर्थ है। हिन्दुओं में आर्य-रक्त के लोग दो-तीन प्रतिशत ही होंगे तथा आर्य-रक्त के अस्सी प्रतिशत से अधिक लोग आज इस्लाम के अनुयायी हैं। ईरान के पहलवी राजा अपने को 'आर्य-मेहर' इसी कारण कहते थे।

इससे सिद्ध होता है कि आर्यों का उद्गम-स्थान कश्मीर ही है। कम से कम मनु से आरम्भ होने वाली हमारी वर्त्तमान सभ्यता तथा संस्कृति कश्मीर से (मनोरवसर्पण के कारण) ही आरम्भ होती है। भूर्जहोम (बुर्जाहोम, श्रीनगर) में जो खुदाई दो वर्ष पूर्व हुई है उससे भी यही सिद्ध होता है।

कश्मीरी भाषा भी इसी दिशा में संकेत करती है। भारत में अन्य कोई आधुनिक आर्य-भाषा नहीं है जो वैदिक संस्कृत की अपभ्रंश हो।[1] कश्मीरी भाषा दरद गोत्र की नहीं है यह आज सिद्ध हो चुका है। उसका व्याकरण ही वैदिक संस्कृत का नहीं है अपितु उसमें आज भी (सामान्य बोलचाल में) अनेक ऐसे शब्द पाये जाते हैं जो वैदिक संस्कृत के हैं और जो आगे चलकर संस्कृत में भी लुप्त हो गये थे। अत्यधिक शीत के कारण उच्चारण में परिवर्तन हो जाने के कारण ही हमें कश्मीरी भाषा विचित्र-सी लगती है। कश्मीर में इस्लाम के आगमन के बाद कश्मीरी भाषा में अरबी-फारसी के शब्द भी आ गए।[2] इस्लाम-पूर्व की कश्मीरी को देखने से मेरा मन्तव्य स्पष्ट हो जायगा। एक उदाहरण देती हूँ जो कि हमारे हिन्दी विभाग में प्रसिद्ध है। आधुनिक 'घड़ी' कश्मीरी में गंर हो जाती है। 'घ' का 'ग' हो जाता है क्योंकि महाप्राण 'घ'

---

१. देखिए वितस्ता (कश्मीरी भाषा विशेषांक)—सम्पादक : डा० रमेशकुमार शर्मा, प्रकाशक—हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।
२. वही।

ध्वनि कश्मीरी में नहीं है। अन्त की मात्रा लुप्त हो जाती है और ड़ तथा ढ़ र में परिवर्तित हो जाते हैं इसलिए हो गया गर। संस्कृत में ड़ तथा ढ़ नहीं हैं, और कश्मीरी में भी नहीं हैं, उनको कश्मीरी भाषा-भाषी या तो ड तथा ढ कहेगा या र में बदल देगा। यह भी एक प्रमाण कश्मीरी के संस्कृत-गोत्रजा होने का है।[1]

यहाँ मैं 'कश्मीर' शब्द की व्यत्पति के विषय में कुछ कहना चाहती हूँ, जिसका सम्बन्ध कश्मीर घाटी की भौगोलिक स्थिति से है। अति प्राचीन काल में कश्मीर की आज की ३० मील चौड़ी तथा ८० मील लम्बी घाटी एक प्याले के समान थी और जल से भरी थी, चारों ओर पर्वतों से बन्द। कालान्तर में बारामूला की ओर से (खादनयार के पास) जल निकल गया और सरोवर (जिसे सती-सर कहते थे) का जल-स्तर उतर गया और घाटी में लोग रहने लगे। इससे पूर्व भरी झील के ऊँचे किनारों (जिन्हें आज भी 'करेवा' कहते हैं) पर लोग रहते थे।[2] भूकम्प की हलचल के कारण (कश्मीर संसार की भूकम्प-पट्टी पर है और भूकम्प से ही यह प्रदेश बना है) यह जल बह निकला था या मनुष्य-प्रयत्न से खादनयार (जिसका अर्थ है जहाँ खोदा गया हो) से बह निकला था, कहा नहीं जा सकता। कथा यह है कि भगवती ने शारिका रूप धारण करके जल के राक्षस (जलोद्भव) का वध किया था और कश्यप ऋषि की भूमि कश्मीर को रहने योग्य बनाया था। देवी ने जिन पहाड़ियों पर अपने शारिका-रूप के पंजे रखे थे वे (शंकराचार्य पहाड़ी तथा हारी पर्वत) आज भी श्रीनगर में हैं। कश्मीरी में 'श' का 'ह' हो जाता है, हारी पर्वत शारिका पर्वत है। ऐतिहासिक साक्ष्य यह है कि जल में डूबी पृथ्वी को विष्णु भगवान् ने वाराह रूप में उबारा था, वह 'मूल-वाराह' का स्थान ही वाराह-मूल (बारामूला) क्षेत्र है, जिसके पास खादनयार है। रहे सहे जल को मानव-प्रयत्न से खादनयार के पास खोदकर पहाड़ों से निकाला गया था। आरम्भ के वाराह अवतार तथा मत्स्यावतार (मनोरवसर्पण) का सम्बन्ध कश्मीर से ही है। कश्मीर हमारी संस्कृति का आदि प्रदेश है। 'कश्मीर' शब्द की व्युत्पति कश्यप-मीर से नहीं है अपितु क+अश्म+ईर है, अर्थात् क (जल) को अश्म (पत्थरों) से निकालने (ईर) से जो क्षेत्र निवास योग्य बना वह कश्मीर है।[3] ये ही प्रमाण नीलमत पुराणादि प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। कश्मीरी भाषा का कौशुर 'कश्मीर' का ही बिगड़ा रूप है। भ्रान्तिवश कुछ लोग कश्मीर को काश्मीर लिखते हैं जोकि अशुद्ध है।

कश्मीर का सम्बन्ध राम-काल में भी भारत से था इसके प्रमाण कश्मीर की उन प्राचीन परम्पराओं में पाये जाते हैं जिनके अनुसार राम सीता की खोज में कश्मीर तक आये थे।[4] हमारे प्राचीन ग्रन्थों में कश्मीर तथा यहाँ के नरेशों के अनेक सन्दर्भ

---

१. देखिए :—वितस्ता (कश्मीरी भाषा विशेषांक)।

२. श्रीनगर हवाई अड्डा ऐसे ही एक 'करेवे' पर आज स्थित है।

३. देखिए :—वितस्ता (कश्मीरी भाषा विशेषांक) सम्पादक : डा० रमेशकुमार शर्मा, प्रकाशक हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

४. वही।

पाये जाते हैं। महाभारत के युद्ध के सम्बन्ध में कश्मीर-नरेश का जिक्र आता है, यद्यपि यह माना जाता है कि कश्मीर-नरेश की सहानुभूति कौरवों के साथ थी। श्रीकृष्ण ने कश्मीर के एक नरेश की सहायता की थी, फिर बाद को उनकी गर्भवती विधवा को उसका राज्य दिया था, इसके सन्दर्भ सब विद्वानों को विदित हैं। कृष्ण की द्वारका के उजड़ जाने के बाद उनके साथ ब्रज से आये हुए अहीर-यादव तितर-बितर हो गये। गुर्जर प्रदेश (गुजरात) से भागे हुए कुछ लोग ब्रज को लौटे और गूजर कहलाये। शेष गाय-बकरी चराते हुए भटकने लगे। पंजाब, अफगानिस्तान और कश्मीर की घाटियों में आज भी वे गूजर खानावदोश घूमते हैं। इस क्षेत्र के गूजर आज मुसलमान हैं, परन्तु उनके संस्कार गीतों तथा अन्य परम्पराओं में आज भी कृष्ण की स्तुतियाँ एवं लीलाएं सम्मिलित हैं।

महाभारत काल के बाद बौद्ध काल आता है। कश्मीर में बुद्धमत गौतम बुद्ध के ५० वर्ष बाद ही आ गया था। बुद्धमत की चौथी सभा कश्मीर में ही हुई थी। कनिष्क के समय में विशेष रूप से, कश्मीर बौद्धमत का केन्द्र था। कश्मीर से ही लद्दाख, तिब्बत तथा (खोतान होते हुए) चीन, रूस, मंगोलिया और जापान को बुद्धमत गया था।[1] कश्मीर में लगभग ८०० वर्षों तक बौद्धमत का प्रभाव रहा, यद्यपि प्राचीन वैदिक-धर्म साथ-साथ संघर्षरत रहते हुए अपना अस्तित्व बनाए था। यहाँ ध्यान देने की बात है कि आज भी कश्मीरी पण्डितों के संस्कारों का रूप ठेठ वैदिक है। यह सही है कि कश्मीरी पण्डितों का संस्कृत का उच्चारण आज भयावह स्थिति तक दूषित हो गया है परन्तु परम्पराएँ अति प्राचीन एवं वैदिक कालीन ही हैं। आज इन वैदिक रीति-रिवाजों और संस्कारों की परम्परा या तो कश्मीरी पण्डितों में पाई जाती है या केरल-कर्नाटक के ब्राह्मणों में।

शंकराचार्य ने जब हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान किया और अस्वाभाविक, अप्राकृतिक तथा अवैदिक बौद्ध-धर्म का मूलोच्छेद भारत से किया, तब वे कश्मीर तक आये थे। उनकी स्मृति में प्राचीन रुद्राद्रि नाम की पहाड़ी आज शंकराचार्य पहाड़ी के नाम से जानी जाती है, जिस पर भव्य शिव मन्दिर स्थित हैं।

एक समय था जब तक्षशिला तथा नालन्दा के प्राचीन विश्वविद्यालय भारत में अध्ययन अध्यापन के केन्द्र थे। उत्तर-पश्चिमी भारत संस्कृत अध्ययन का केन्द्र अति प्राचीन काल से रहा है। पाणिनि (आज के अफगानिस्तान के) शालातुर के निवासी थे। दशरथ की पत्नी कैकय प्रदेश की थीं जो अफगानिस्तान वाले प्रदेश में था। इससे पूर्व शुक्राचार्य यहीं रहते थे, जिनकी पुत्री से यदुवंश आरम्भ होता है। और पीछे जाइए तो सारस्वत प्रदेश (पंजाब आदि) में ही वेद लिखे गए थे और इसी कारण कश्मीर-पंजाब अफगानिस्तान के सारे ब्राह्मण सारस्वत ब्राह्मण हैं।

आगे चलकर कश्मीर संस्कृत के अध्ययन का केन्द्र बना। आज अनन्तनाग के पास बिजबिहारा एक गाँव है, जहाँ (ब्रजविहार अर्थात् विहार योग्य हरी भरी भूमि)

---

१. देखिए :—बौद्धमत के २५०० वर्ष, प्रकाशक सूचना विभाग, भारत सरकार।

संस्कृत विश्वविद्यालय था, जिसमें एक लाख के लगभग पाण्डुलिपियाँ थीं और जिसे नृशंस राजा सिकन्दर बुतशिकन ने भस्म कर दिया, जब वह हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना रहा था। कश्मीर की भाषा-संस्कृति के केवल वे ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं जो कश्मीर के बाहर चले गए थे।

यह तथ्य दर्शनीय है कि संस्कृत के महाकवि तथा नाटककार कालिदास ही कश्मीरी नहीं थे अपितु अन्य अनेक कवि तथा काव्यशास्त्री भी कश्मीर के हैं। क्षीर स्वामिन, कल्हण, बिल्हण, मम्मट, आनन्दवर्धन, वामन, क्षेमेन्द्र, अभिनवगुप्त, राजानक शितिकण्ठ आदि बड़े-बड़े उद्भट संस्कृत-विद्वान कश्मीर ने भारत को दिए हैं। आज साहित्य-क्षेत्र में जो रस-सिद्धान्त सर्वमान्य है, वह तथा अन्य तीन काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्त कश्मीर में ही जन्मे और यहीं से शेष भारत को मिले थे। कश्मीरी शैव-मत भी एक विशिष्ट देन है, जो कश्मीर ने भारत को प्रदान की है। वास्तव में शैव-सम्प्रदाय कश्मीर की ही उपज है और यहीं से दक्षिण की ओर यह गया है।

सिकन्दर बुतशिकन के पुत्र, उदारमना बड़शाह ज़ैनुलाबिदीन ने कश्मीरी पंडितों को फिर से कश्मीर लौटने का अवकाश दिया और कुछ परिवार लौट भी आये, परन्तु औरंगजेब के काल में फिर से कश्मीर के हिन्दुओं पर अत्याचार हुए और उनसे घबड़ाकर मार्तण्ड के पं० मुकुन्दराम, गुरु तेगबहादुर की सेवा में गए और उनसे रक्षा की प्रार्थना की। यह इतिहास-विदित तथ्य है कि गुरु तेगबहादुर ने कश्मीरी पंडितों के अनुरोध तथा बालक गोविन्दसिंह के कहने पर हिन्दुओं की धर्म-रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया था। यह घटना न हुई होती तो गुरु गोविन्दसिंह का दशमेश रूप वह न होता जो आगे चलकर उभरा और उसके अभाव में उत्तर-पश्चिम भारत से हिन्दुओं का मूलोच्छेद हो गया होता, क्योंकि तब न बन्दा बहादुर होते और न हरिसिंह नलवा होते और 'पंज पियारों' की परम्परा के यौद्धा-धर्मी सिख भी न होते।

कश्मीर में हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, सिख, डोगरा तथा अंग्रेज शासक रहे हैं। चीन, तिब्बत, रूस, अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान आदि के राजनैतिक व्यापारिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों से कश्मीर प्रभावित रहा है, परन्तु सर्वदा एवं सर्वथा भारत का अभिन्न, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अंग रहा है; आज है, और भविष्य में भी रहेगा। उपर्युक्त सभी धर्मों के समावेश से आज की कश्मीरी संस्कृति प्रभावित है। सिकन्दर बुतशिकन के समय में कश्मीर से भागे अनेक कश्मीरी पण्डित देश के विभिन्न भागों में फैल गये थे, और आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावशाली भूमिका निभा रहे हैं। इससे पूर्व स्वतन्त्रता संग्राम में भी कश्मीरियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। स्वतन्त्र भारत में तीन वर्षों को छोड़कर प्रधानमन्त्री कश्मीरी ही रहे हैं, उनका भारत के इतिहास में कैसा और क्या महत्त्व है, यह विवाद का विषय हो सकता है, परन्तु राज्य उन्होंने किया है इसे नकारा नहीं जा सकता।

हिन्दू-धर्म, बौद्ध-मत, शैवमत, शक्ति-पूजा (कुल का अर्थ शक्ति है तथा शक्ति के उपासक 'कौल' कहलाते हैं) विभिन्न वामाचार, इस्लाम, सूफी मत (कश्मीरी सूफी

मत अपने में विशिष्ट है और भारत में सर्वप्रथम सूफी मत का प्रभाव कश्मीर में ही आया था। कश्मीर का सूफी मत शेष भारत के सूफी मत से किंचित भिन्न है), आर्य समाज (महाराजा रणवीरसिंह तथा महाराजा हरीसिंह ने इसके लिए विशेष कार्य किया था। महाराजा हरिसिंह आर्य समाज को करोड़ों रुपयों की धन राशि दे गए थे), ईसाई धर्म, जैन मत (इसके अनुयाइयों की संख्या यहाँ बहुत कम है) आदि सभी धर्मों के लोग आज कश्मीर में रहते हैं।

कश्मीर का मामला एक ऐसी समस्या है जिसके कारण भारत तथा पाकिस्तान में तीन बार युद्ध हो चुका है। कश्मीर भारत की राजनीति को आज विशेष रूप से प्रभावित कर रहा है और लगता यह है कि आगे भी करता रहेगा। देश का शीर्षस्थ यह प्रदेश महत्त्व की दृष्टि से भारत के इतिहास में शीर्षस्थ ही रहा है और आज भी है।

कश्मीर में बौद्धमत

डा० रोशनलाल ऐमा
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

'नीलमत पुराण' में कहा गया है कि कश्मीर की सुरम्य घाटी में वैशाख पूर्णिमा को तथागत के जन्म, बोधि और महापरिनिर्वाण के दिन, बौद्ध चैत्यों-स्तूपों को सुन्दर-तम फूलों, कलाकृतियों आदि से सुसज्जित किया जाता था। भगवान बुद्ध की मूर्तियों का अवशधियों'[1] और 'रत्नों' से शृंगार किया जाता था। यह परम्परा ११वीं शताब्दी ई० तक निरन्तर बनी रही। क्षेमेन्द्र (१०वीं-११वीं शती० ई०) ने 'अवदान कल्पलता' का शुभारंभ इसी दिन किया था। सोमदेव (१०२७ ई०) ने इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा है—

संवत्सरे सप्तविंशे वैशाखस्य सितोदये।
कृतेयं कल्पलतिका जिनजन्मोत्सवे॥

कश्मीर में बौद्धमत का इतिहास देश के अन्य भागों से अधिक भिन्न नहीं रहा है। कश्मीर की प्राचीनतम जातियों में नाग, पिशाच तथा यक्ष आदि जातियों का उल्लेख होता है जो आर्यों से पूर्व इस पर्वतीय प्रदेश में रहते थे। इनमें से नागों का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि कहा जाता है कि सांख्य-दर्शन के प्रणेता कपिल नाग थे तथा परमार्थासार' के रचियता पतंजलि भी नाग ही थे। इसी तरह बौद्धमत के प्रसिद्ध विचारक तथा दार्शनिक नागार्जुन तथा नागबोधि भी नाग थे। लगता है कि आर्यों के आगमन के पश्चात् कश्मीर की इन आदिम जातियों ने वैदिक-धर्म को स्वीकार किया और बाद में बौद्धमत को स्वीकार कर वैदिक-धर्म के बाहरी रूप के विरुद्ध विद्रोह किया। भारतीय जनजीवन में 'बौद्धधर्म' आज स्पष्ट रूप से चाहे दिखायी न देता हो परन्तु भारतीय जनमानस, संस्कृति, धर्म, सभ्यता आदि के निर्माण में 'बौद्धधर्म' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कश्मीर में बौद्धमत का प्रचार कब से हुआ इस सम्बन्ध में इतिहासकारों का मत एक नहीं है। 'राजतरंगिणी' में कल्हण का कथन है कि महाराज अशोक (ई०पू० तीसरी शती) के पूर्व कश्मीर में अनेक बौद्ध विहार थे। चीनी विद्वानों के मतानुसार कश्मीर में बौद्धमत का प्रचार तथागत के महापरिनिर्वाण के ५० वर्ष बाद हो गया था।

अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि महाराज अशोक के बौद्धमन्त्री मोगाली पुत्र तिस्सा ने वाराणसी के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान मझंटिक को कश्मीर और गांधार में

---

१. औषधियों।

बौद्धमत के प्रचार के लिए भेजा था। गांधार देश में, शायद उस समय कश्मीर भी सम्मिलित था ऐसा, कुछ ग्रीक इतिहासकारों और बौद्ध जातकों में उल्लेख मिलता है। किन्तु अशोक के प्रसिद्ध शिलालेखों में से एक भी आज तक कश्मीर में नहीं मिला है। चीनी विद्वान मानते हैं कि आनन्द के शिष्य मध्यंटिक (मझंटिक) नामक बौद्ध-विद्वान ने कश्मीर में सबसे पहले बौद्धमत का प्रचार किया। इन्होंने ही कश्मीर में कृषि का विकास किया और संसार प्रसिद्ध कश्मीरी केसर की खेती का परिवर्धन करने वाले व्यक्ति भी यही बुद्धमत प्रचारक थे।

तथागत के महापरिनिर्वाण के बाद बौद्धमत अनेक मतों-वादों में विभाजित हो गया। ये सभी वाद बुद्ध के उपदेश पर ही आधारित थे और सभी मोक्ष को जीवन की चरम स्थिति मानते थे। इन के विभाजन का आधार 'विनय' और 'अभिधर्म' की विभिन्न परिभाषाएँ थीं। बौद्धदर्शन के इन विभिन्न वादों में सर्वप्राचीन और सर्व-सम्मानित वाद 'सर्वस्तिवाद' माना जाता है। तिब्बती विद्वान, राहुलभद्र को इस वाद का जन्मदाता मानते हैं। लेकिन सामान्यतः इस वाद के संस्थापक मथुरा के उपगुप्त माने जाते हैं। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि इस वाद का मूलस्थान कश्मीर था और प्रचारक मझंटिक थे। जो भी हो सर्वस्तिवाद उत्तरी भारत का सर्वसम्मानित बौद्ध-दर्शन था और कश्मीर से इसका गहरा सम्बन्ध था भले ही इसका जन्मस्थान मथुरा रहा हो। कहा जाता है कि प्रसिद्ध बौद्ध विचारक, सर्वस्तिवाद की मौलिक विचारधारा को बनाए रखने के लिए कश्मीर आए और यहीं पर इस वाद का शुद्धतम स्वरूप निश्चित हुआ। कश्मीर में इस वाद की व्यापक एवं विस्तृत टीका लिखी गई जिसे 'वैभाषिका' कहते हैं। सर्वस्तिवादी 'अभिधर्म' के मूल ग्रन्थ जिसे 'ज्ञानप्रस्थान' कहा जाता था, छः ग्रन्थों में बाँटा गया। इस कार्य को कात्यायनी पुत्र वसुबन्ध ने कश्मीर में किया। कहा जाता है कि इस ग्रन्थ को ३८३ ई० में चीनी भाषा में अनूदित किया गया। कात्यायनी पुत्र वसुबन्ध की जीवनी में परमार्थ कहते हैं कि वसुबन्धु ने सर्व-स्तिवाद के इन अभिधर्म ग्रन्थों की 'विभाषा' लिखवाने के लिए साकेत के कवि अश्व-घोष को कश्मीर बुलवाया। अश्वघोष ने कश्मीर में बारह वर्ष रह कर दसलाख छन्दों में विभाषा का साहित्यिक रूप प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ का नाम 'अभिधर्म महा-विभाषाशास्त्र' बतलाया जाता है।

चीनी यात्री युवान-च्वांग (सातवीं शती ई०) का कहना है कि कनिष्क के समय में कश्मीर में वसुमित्र सहित पाँच सौ बौद्ध विचारकों ने पिटकों पर व्यापक विचार-विनिमय किया जिसके फलस्वरूप 'सूत्र पिटक', 'विनय पिटक' तथा 'अभिधर्म पिटक' लिखे गए, जिन्हें 'उपदेश शास्त्र', 'विनय विभाषाशास्त्र' तथा 'अभिधर्मविभाषाशास्त्र' नामों से जाना जाता है।

मौर्य वंश के बाद के कश्मीरी बौद्धमत का इतिहास अधिक स्पष्ट नहीं है। लेकिन लगता है कि बौद्धमत का विकास निरन्तर होता रहा। 'मिलिन्दपान्ह' नामक प्रसिद्ध प्रश्नोत्तरी के प्रधान पात्र मेंननदर का उल्लेख यहाँ करना आवश्यक हो जाता

है। ग्रीक मेंननदर (मिनाण्डर) गांधार के राजा थे और उनकी राजधानी स्यालकोट थी। कहा जाता है कि कश्मीर से बारह योजन की दूरी पर मिलिन्द अथवा मेंननदर और नागसेन के बीच बौद्धमत के ऊपर परिचर्चा हुई, जिसके फलस्वरूप मिलिन्द ने बौद्धमत को स्वीकार किया और वह अर्हत बन गया। मिलिन्द का समय दूसरी शती ई० पू० माना जाता है।

कश्मीर में बौद्धमत को व्यापक और विस्तृत आधार देने वाले राजा कनिष्क थे। इससे पूर्व कश्मीरी राजा 'सिन्हा' अथवा सुदर्शन का नाम आता है। कहा जाता है कि इन्हीं के सम्पर्क में आकर महाराज कनिष्क ने बौद्धमत को स्वीकार किया था। कनिष्क, बोद्धधर्म के इतिहास में महाराज अशोक की ही भाँति स्मरणीय हैं। बौद्धमत की चौथी और अन्तिम सभा इन्हीं की प्रेरणा से 'कुंडलवनविहार' में हुई थी। यद्यपि कुछ विद्वान इस सभा का स्थान जालन्धर मानते हैं, परन्तु अधिकांश विद्वान 'कुंडलवनविहार' को कश्मीर में हारवन नामक स्थान को मानते हैं। इस सभा का प्रधान कार्य बौद्धधर्म की प्रमुख मान्यताओं को संकलित-व्यवस्थित करके, उन पर सर्वस्तिवादी बौद्धसंप्रदाय के मतानुसार भाष्य लिखना था। सर्वस्तिवाद के प्रधान केन्द्र कश्मीर को छोड़ कर कौनसा अन्य स्थान इस सभा के लिए उपर्युक्त हो सकता था। इस सभा की अध्यक्षता वसुमित्र ने की और उपाध्यक्ष संस्कृत के प्रसिद्ध कवि अश्वघोष थे। सर्वस्तिवाद के तीन प्रमुख ग्रंथ यहीं रचे गए थे। इनमें से महाविभाषाशास्त्र आज भी चीनी भाषा में सुरक्षित है। सभा के अन्त में महाराज कनिष्क ने 'संघ' को पूरा कश्मीर दान के रूप में प्रदान किया। कनिष्क ने यहाँ अनेक विहार और स्तूप बनाए। 'कनिष्कपुर' नामक शहर बसाया। जिसे हम आज 'कानिसपोर' नामक गाँव से जानते हैं, जो कश्मीर के बारामूला जिले में आता है।

तुरुष्क राजा कनिष्क से पूर्व कश्मीर में हुष्क और जुष्क नामक दो बौद्ध राजाओं का भी नाम आता है। इन्होंने क्रमशः हुष्कपुर' और 'जुष्कपुर' दो शहरों को बसाया। 'हुष्कपुर' बारामूला जिले में आज का 'उष्कर' और 'जुष्कपुर' श्रीनगर से थोड़ी दूर पर आज 'जोकुर' है।

कुशान राजाओं के बाद कश्मीर में, कल्हण के अनुसार अभिमन्यु ने राज किया। कहा जाता है कि नागार्जुन के प्रयत्न-प्रचार से कश्मीर में परम्परागत नागों के धार्मिक 'कृत्य-अनुष्ठान' एक तरह से समाप्त ही हो गए थे। फलस्वरूप नागों ने बौद्धों और बौद्ध धार्मिक स्थानों को नष्ट करने का एक भारी प्रयास किया। नाग सम्प्रदाय को, इस समय पुनर्स्थापित करने का प्रयास एक प्रसिद्ध ब्राह्मण चन्द्रदेव ने किया।

कश्मीर में बौद्धमत को उखाड़ फेंकने का प्रथम प्रयास नर नामक राजा ने किया। कहा जाता है कि इन्होंने बौद्धों को इतना सताया कि प्रसिद्ध बौद्धाचार्य नागार्जुन कश्मीर से भागकर दक्षिण भारत चले गये। छटी शती ईस्वी में मिहिरकुल (या मिहिरगुल) नामक नृशंस एवं आततायी राजा ने कश्मीर में बौद्धों को भयंकर रूप से

उत्पीड़ित किया। उसने बौद्ध विहारों, चैत्यों और मठों को नष्ट-भ्रष्ट किया, लेकिन इस आतंक के वातावरण में भी बौद्धमत कश्मीर में पलता रहा। तभी तो प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यून-साँग (युवान-च्वांग) ईस्वी सन् ६३१ से ६३३ तक, दो वर्ष राजा दुर्लभवर्धन के अतिथि बने रहे। यहाँ रहकर उन्होंने सूत्र, शास्त्र तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। राजा दुर्लभवर्धन ने उन्हें बीस लिपिक प्रदान किए जिन्होंने उनके लिए धार्मिक ग्रंथों को लिपिबद्ध किया। उस समय के प्रधान बौद्ध आचार्य ने ह्यून-साँग को एक उच्च कोटि का विद्वान घोषित करते हुए कहा कि "ह्यून-साँग महान आचार्य वसुबन्धु की परम्परा के प्रबुद्ध बौद्ध आचार्य थे।"

जगत्गुरु शंकराचार्य के प्रभाव से सम्पूर्ण भारत में बौद्धमत का मूलोच्छेद हो गया परन्तु सातवीं आठवीं शती में कश्मीर के प्रसिद्ध राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ के समय भी बौद्धमत को राजाश्रय प्राप्त हुआ। ललितादित्य ने हिन्दू धर्म के साथ-साथ बौद्धमत की भी सेवा की। कहा जाता है कि इस समय तक आते-आते कश्मीरी बौद्ध मत में तांत्रिक क्रियाओं का सम्मिश्रण होना प्रारम्भ हो गया था। इसके बाद धीरे-धीरे बौद्धमत अपनी भीतरी कमजोरियों के कारण कश्मीर में अवसान की ओर बढ़ने लगा। कल्हण ने लिखा है कि राजा शंकरवर्मन की पत्नी रानी सुगन्धा को 'निष्पालक विहार' में कत्ल कर दिया गया। अब विहारों में उच्च बौद्ध परम्पराओं का पालन नहीं होता था। महाराज क्षेमगुप्त (९५०-५८ ई० सन्) जो एक प्रसिद्ध शैव थे, ने 'जयेन्द्र विहार' को तुड़वाकर इसके पत्थरों से भगवान शिव का एक विशाल मन्दिर बनवाया। कश्मीरी शैवमत और भारतीय काव्यशास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य अभिनव-गुप्त इसी राजा के समय के एक महत्त्वपूर्ण शैव विद्वान् थे। रानी दिद्दा और उसके बाद के राजाओं ने भी कश्मीर में बौद्धमत को अधिक पलने नहीं दिया। वैसे भी बौद्ध विहारों में वातावरण दूषित हो चुका था। बौद्ध श्रमणियाँ अब कुट्टनियों का काम करने लगीं थीं। लोहार वंश के राज में यद्यपि कश्मीर में बौद्धमत में पुनः नवजीवन फूँकने का प्रयास हुआ, लेकिन महाराज हर्षवर्धन के समय तक आते-आते कश्मीर में बौद्धमत का सूर्य लगभग डूब चुका था। हर्षवर्धन को कल्हण ने म्लेछ नाम से पुकारा है। कल्हण के इतिहास में बौद्धमत के प्रति काफी सम्मान प्रदर्शित किया गया है। लेकिन कश्मीर में मुसलमानों के आने से पूर्व बौद्धमत पर कश्मीरी शाक्तमत का प्रभाव गहरा होता जा रहा था और धीरे-धीरे उसका दम ही घुट गया। क्षेमन्द्र और सोमदेव की रच-नाओं से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

कश्मीर में बौद्धमत के विकास और ह्रास के इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कश्मीर, बौद्धधर्म के प्रधान केन्द्रों में से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कश्मीर से ही लद्दाख और तिब्बत में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ, पंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया है। तिब्बत के राजा श्येन-शुंग के पुत्र ज्ञानप्रभ जो बौद्ध थे, तिब्बत में तांत्रिक बौद्धमत के विरुद्ध थे। उन्होंने इक्कीस बुद्धिमान नवयुवकों को चुनकर दस वर्षों तक बौद्धधर्म की शिक्षा दी। इसके

पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए उन्हें कश्मीर भेजा। कश्मीर की भयंकर सर्दी के मौसम में ये लोग टिक न पाए तथा रत्नभद्र और सुप्रज्ञ को छोड़कर शेष सभी मर गए। रत्नभद्र, तिब्बती बौद्धधर्म में अन्यन्त प्रसिद्ध अनुवादक एवं आचार्य के रूप में अमर हैं। 'अभिधर्मकोष' के प्रणेता, द्वितीय बुद्ध नाम से प्रसिद्ध, आचार्य वसुबन्धु कश्मीर में आकर ही प्रसिद्धि की चरमसीमा पर पहुँचे। कहा जाता है कि वे कश्मीर में बौद्धधर्म के प्रमुख दर्शन सर्वस्तिवाद के अध्ययन के लिए ही आए थे। वे पेशावर के रहने वाले थे और उनके अभिधर्म-कोष को चीनी भाषा में साठ भागों में सुरक्षित रखा गया है। इसी भाँति एक और प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य का भी उल्लेख किया गया है, जिनका नाम वसुभद्र था। कहा जाता है कि उन्होंने कश्मीर में पागल के छद्म रूप में प्रवेश करके सर्वस्तिवाद पर आधारित विभाषाशास्त्रों को रटा और बाद में अयोध्या में जाकर, इस ज्ञान का परिचय देश के अन्य विद्वानों को कराया।

स्पष्ट है कि कश्मीर में अनेक बौद्ध आचार्यों का जन्म हुआ। प्रसिद्ध बौद्ध विहार विक्रमशिला के आठ प्रमुख विद्वानों में से एक स्मृत्याकार-सिद्ध कश्मीरी थे। चीन में माध्यमिक, सत्यसिद्धि एवं निर्वाण, बौद्धमत की शाखाओं का प्रचार करने वाले पहले पण्डित कुमारविजय कश्मीरी थे और प्रसिद्ध बौद्धाचार्य बन्धुदत्त के शिष्य थे। इनके अतिरिक्त बौद्धमत से सम्बन्धित अथवा प्रभावित अनेक प्रसिद्ध कश्मीरी विद्वानों का नाम आता है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—जयन्त भट्ट, वामन भट्ट, दामोदरगुप्त, क्षीरस्वामिन, भट्ट उदभट्ट, वसुगुप्त, भट्ट कलट्ट, कय्यट, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, मम्मट, कल्हण, योगराज, बिल्हण, सोमदेव, रुय्यक आदि-आदि।

बौद्धमत का यह प्रभाव कश्मीरी जनजीवन पर काफी गहरा रहा है। बौद्धमत ने भारत में जन्म लेकर भी भारतीय जीवन से हिन्दू धर्म को उखाड़ा नहीं, अपितु स्वयं हिन्दू-धर्म-दर्शन में घुल मिलकर उसे एक नई दिशा दी। वास्तव में जैसा कि डा० राधाकृष्णन का कथन है तथागत का जन्म, लालन पालन और मृत्यु एक हिन्दू के रूप में ही हुई। तथागत भारतीय एवं आर्य संस्कृतियों के प्राचीन उच्चादर्शों की ही पुनर्स्थापना कर रहे थे। बुद्ध विनाश के लिए नहीं अपितु पोषण के लिए जन्मे थे। कहा जा सकता है कि एक तरह से बुद्ध आधुनिक (नवीन) हिन्दू धर्म, के प्रणेता थे और इसी कारण हिन्दुओं ने उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में सम्मिलित किया है।

कश्मीरी परिप्रेक्ष्य में बौद्धमत के प्रभाव में यहाँ का शैव दर्शन भी आता है। कहा जाता है कि कनिष्क ने जब कश्मीर संघ को दान कर दिया तो यहाँ के ब्राह्मणों ने इसका घोर विरोध किया। कल्हण का कथन है कि इसी समय नागार्जुन ने अपनी विद्वता और विशिष्ट राजकीय शक्ति के प्रयोग से बुद्धमत का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने नीलमत पुराण के विशिष्ट धार्मिक कर्म-कृत्यों का विरोध किया तथा शैव ब्राह्मणों को वाद-विवाद में हरा दिया। फलस्वरूप दोनों के बीच घोर संघर्ष चलता रहा और मौखिक रूप से चली आ रही स्थानीय शैव परम्पराओं को पहली बार संकलित किया गया। कहा जाता है कि कश्मीरी शैवमत का प्रथम लिखित स्वरूप उस समय

के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण योगी चन्द्रदेव (पहली शती ई०) ने प्रस्तुत किया। (श्री के० सी० पांडेय ने अपनी पुस्तक 'अभिनवगुप्त' में कहा है कि कल्हण का एकमात्र ऐतिहासिक तथ्य यही है) इस तथ्य की पुष्टि 'शिवसूत्र' के रचियता वसुगुप्त के वार्तिककार वरद-राज ने भी की है। कश्मीरी त्रिक दर्शन के तीनों अंगों—आगम शास्त्र, स्पन्द शास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञा शास्त्र, पर कश्मीरी बौद्धदर्शन का प्रभाव अत्यधिक गहरा है।

इस सम्बन्ध में शंकराचार्य (आठवीं शती ई०) का उल्लेख करना भी उचित होगा। वे कश्मीर भी आए थे और यहाँ के शैव एवं बौद्ध दर्शनों, बौद्धों की धार्मिक शक्ति, संघ, उच्चादर्श मठीय-व्यवस्था आदि से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। शंकर का मायावाद, तथा सत्य की भिन्न अवस्थाओं का प्रस्तुतीकरण, बौद्धों से प्रभावित समझा जाता है। कुछ विद्वान कहते हैं कि कश्मीरी मूलतः माँसाहारी हैं और बौद्धमत के प्रभाव के कारण ही आज कश्मीरी हिन्दुओं और मुसलमानों के कुछ दिन, पर्व अथवा मेले ऐसे हैं जब शुद्ध शाकाहारी भोजन ही किया जाता है। जैसे हिन्दुओं के अष्टमी, अमावस्या और एकादशी के व्रत एवं खीरभवानी का मेला आदि तथा मुसलमानों के अनन्तनाग में 'ऋषिमोल' साहब तथा श्रीनगर में 'बोटमोल' साहब के मेले। लेकिन इस सम्बन्ध में तथ्य यह है कि यह वैष्णवमत का प्रभाव है क्योंकि आज संसार भर के सभी बौद्ध माँसाहारी हैं। स्वयं बुद्ध की मृत्यु शूकर का माँस खाने से हुई थी। बुद्ध ने हनन करना वर्जित किया था, हनन देखना वर्जित किया था, मांस का भक्षण नहीं।

कश्मीरी हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों में बौद्धमत का प्रवेश भी हुआ। आज भी यज्ञों तथा पूजा आदि में बौद्ध त्रिरत्नों का स्तवन होता है। कश्मीरी स्तोत्रोस्तवनों में बौद्ध देवियों जैसे 'प्रज्ञापारमिता', 'तारा', 'बुद्धमाता', 'जिनेश्वरी', 'जिनमाता', 'वज्रहस्ता', 'लोचना' आदि के नाम लिए जाते हैं। गौरी तृतीया और कश्मीरी नववर्ष 'नवरेह' के अवसरों पर पुरोहितों द्वारा अपने 'जिजमानों' को दिए जाने वाले चित्रित पत्रों (स्क्रोल्स) की परम्परा जो आज भी जारी है, बौद्ध प्रभाव माना जाता है।

कश्मीर में बौद्धमत का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यहाँ के मुसलमानों पर पड़ा। बौद्धों ने चैत्यों और स्तूपों की जो परम्परा छोड़ी थी, वह उन चैत्यों और स्तूपों के नष्ट-भ्रष्ट होने के पश्चात् भी आज कश्मीरी मुसलमानों में सुरक्षित है। यद्यपि इस्लाम के अनुसार इस प्रकार के कृत्य वर्जित हैं तथापि कश्मीर में हजरत मोहम्मत साहब का एक पवित्र बाल हजरतबल नामक तीर्थस्थान में सुरक्षित है।

साहित्यिक और दार्शनिक दृष्टि से बौद्धमत का प्रभाव कश्मीरी सूफी और संत कवियों पर समान रूप से देखा जा सकता है। डा० एच० सी० राय का कथन है कि सूफीमत में माला-जाप, 'फना' सिद्धान्त (अर्थात् निर्वाण) और "विभिन्न स्थितियाँ" अर्थात् 'मक़ामात' आदि अनेक तत्त्व बौद्धमत व अन्य भारतीय धार्मिक मतों के प्रभाव से आए हैं। कश्मीरी लोक-साहित्य तथा काव्य में बौद्धों का प्रभाव देखा जा सकता है।

इतना ही नहीं कश्मीरी स्थापत्य-कला पर भी बौद्धमत का प्रभाव देखा जा सकता है। कश्मीर की बौद्ध स्थापत्य कला को तीन स्पष्ट भागों में विभाजित किया

जा सकता है। प्रथम हारवन-श्रीनगर की स्थापत्य कला है, जो ई० पू० तीसरी शती की है। यह भारतीय-पार्थियन शैली की है। इसके बाद पहली शती ईस्वी में कुशाण राजा हुष्क द्वारा बसाई गई नगरी हुष्कपुर की स्थापत्यकला है। इसमें गांधार शैली का अनुसरण किया गया है। सातवीं शती ईस्वी में श्रीनगर के पास पांद्रेठन नामक स्थान पर प्राप्त स्थापत्य एवं मूर्तिकला के अवशेष गुप्त शैली के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ पर प्राप्त बुद्ध जन्म से पूर्व की अपनी बहनों के साथ महामाया की मूर्ति, अपने-आप में एक महत्वपूर्ण खोज है। इसमें महामाया को विवाहित कश्मीरी हिन्दू नारियों द्वारा पहने जाने वाले विशिष्ट कर्णाभूषण, (डेजेहरू) पहिने दिखाया गया है। इस कर्णाभूषण का प्रयोग कश्मीरी हिन्दू नारियाँ आज भी करती हैं और इसे नाग-परम्परा के अन्तर्गत स्वीकारा जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर में बौद्धमत स्थानीय प्रभावों को भी ग्रहण करता रहा था।

लगभग एक हज़ार वर्षों तक कश्मीर में बौद्धमत का प्रभाव रहा। अत: इस धर्म से सम्बन्धित अनेक अवशेष कश्मीर में आज भी हमें उपलब्ध होते हैं। कल्हण ने जिन बौद्ध विहारों आदि का वर्णन किया है, उन सब के स्थान आज तक निश्चित नहीं हो पाए हैं। एक बात स्पष्ट है कि ये अवशेष कश्मीर में चारों ओर फैले हुए हैं। कुछ ऐसे विहार हैं जिन को कश्मीर के विभिन्न स्थानों से जोड़ा गया है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं। जलोर विहार, आज के 'ज़ोलुर'-जैनगीर (सोपोर) बारामुला जिले में था। वितस्तत्र आज का अनन्तनाग जिले का 'व्यथवोतुर' है। महाराज अशोक (मौर्य वंश के अशोक से भिन्न) ने आज के बड़गाम में एक स्तूप बनवाया था। रानी शुकदेवी ने आज के श्रीनगर में नदवन नामक विहार बनवाना था। विहार तो नहीं रहा, पर नदवन शब्द 'नरवोरा' में परिवर्तित होकर एक मोहल्ले का नाम बन गया। ह्यून-सांग ने अपने यात्रा विवरण में श्रीनगर के निकट एक जयेन्द्र विहार का उल्लेख किया है जिसमें बुद्ध की एक विशालकाय मूर्ति स्थापित की गई थी। ह्यून-सांग स्वयं इस विहार में रहे थे, पर इसका स्थान आज तक निश्चित नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त परिहासपुर; अन्दरकूट, अहन-सुंबल; खन्दभवन-श्रीनगर; रत्नीपोरा; हारवन; रायथन आदि अनेक अन्य स्थान हैं जो बौद्धकालीन कश्मीर की याद दिखाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. राजतरंगिणी। २. नीलमत पुराण।

3. Hinduism and Buddhism—Sir Charles Eliot.
4. Buddhist Studies—B. C. Lawo.
5. Hinayana and Mahayana—Dr. N. Datt.
6. The Age of Imperial Unity—D. C. Sircar.
7. On Yuan-Chwang Travels in India—Thomas Walters.
8. Abhinavgupta—K. C. Pandey.
9. 2500 Years of Buddism (Govt. of India, Information Dept.).

कश्मीर में हिन्दी

डा० रमेशकुमार शर्मा

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग तथा अधिष्टाता कला संकाय,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

कश्मीर एक अहिन्दी क्षेत्र है, तथापि यहाँ स्पष्ट रूप से और सुबोध रूप से हिन्दी बोलने वालों की संख्या पर्याप्त है। घाटी की शिक्षित जनसंख्या का, शिष्ट और अर्ध-शिष्ट एक बड़ा अंश इस भाषा के साहित्यिक रूप से भली-भाँति परिचित है। यद्यपि हिन्दी भाषी कश्मीरियों की वास्तविक संख्या उपलब्ध नहीं, परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनकी संख्या सहस्रों तक है। यह संख्या १९८१ की जनगणना की रपट के अनुसार इस प्रकार है[1]—जिन्होंने हिन्दी को अपनी मातृ-भाषा बताया—४५०१; जिन्होंने हिन्दी को अपनी सहायक भाषा कहा—३३०८ वैसे लगभग सभी लोग टूटी-फूटी हिन्दी समझते बोलते हैं।

यह बात इस तथ्य के लिए ध्यान में लाई जाती है कि शताब्दियों से (भौगोलिक सीमाओं की बाधा के होते हुए भी) हिन्दी क्षेत्र और कश्मीर-घाटी के मध्य सामाजिक-सांस्कृतिक सम्पर्क रहा है। प्राचीन काल से ही कश्मीर अपने पर्यटन महत्व के अतिरिक्त एक विश्व-प्रसिद्ध, संस्कृत-शिक्षा-केन्द्र रहा है।[2] न केवल इसके प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए बल्कि इससे सांस्कृतिक और बौद्धिक आदान-प्रदान के लिए भी लोगों का प्रवाह यहाँ लगातार आता रहता है। इस्लाम धर्म के आगमन से पूर्व बोली जाने वाली कश्मीरी में केवल संस्कृत और मूल वैदिक संस्कृत के ही शब्द थे।

अमरनाथ की पवित्र गुफा (कई अन्य तीर्थ-स्थानों सहित) भारत के प्रत्येक कोने से तीर्थ-यात्रियों[3] को, शताब्दियों से, आकर्षित करती रही है, स्वाभाविक है कि हिन्दी-क्षेत्रों के यात्री भी आते रहे हैं। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया में साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक प्रभाव भी जड़ पकड़ चुके हैं। भारत से वैष्णव-भक्ति कश्मीर में (१३२०-७० ई० तक) बड़शाह जैन-उल-आबदीन के समय में आई।

---

१. कश्मीर विश्वविद्यालय में एम० ए० में हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या सर्वाधिक है।

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डा० बी० गौरोला, पृ० संख्या ८५५ प्रकाशक—चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी (१९६०)।

३. (अ) श्री अमरेश्वर दर्शनम् : प्रो० गुर्टू और पण्डित यक्ष द्वारा सम्पादित, प्रकाशक—द फाइन आर्ट प्रेस, श्रीनगर, कश्मीर (१९५६)।

(ब) द वेली आफ कश्मीर : डब्ल्यू० आर० लारेंस आई० सी० एस०, पृ० २६५-६, प्रकाशक—हेनरी फार्वर्ड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, लंदन (१८६५)।

सिकन्दर[1] (बुतशिकन) के शासन काल में जो बहुत से कश्मीरी पंडित कश्मीर छोड़ कर पंजाब और उत्तर प्रदेश[2] के भागों में बस गये थे, बड़शाह के समय में श्रीभट्ट के प्रयत्नों से पुनः कश्मीर लौट आये। ३०-३२ वर्षों के हिन्दी प्रदेशों में निवास से वे ब्रजभाषा और हिन्दी की अन्य बोलियों एवं पंजाबी से बहुत प्रभावित हुए। जब वे कश्मीर पुनः लौटे तो हिन्दी-क्षेत्र के एक सन्त रामानन्दजी[3] भी उनके साथ आये और उन्होंने कश्मीरी हिन्दुओं के साहित्य और धर्म की पुनर्स्थापना का प्रयत्न किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्थानीय जन समुदाय राज्य के बाहर के लोगों के साथ शताब्दियों तक संस्कृत, और बाद में हिन्दी में संपर्क स्थापित करता रहा है।[4] यह कोई बड़ी बात नहीं है कि एक साधु जो तमिलनाडु या आसाम का हो, (या उसकी मातृभाषा मलयालम हो या गुजराती) वह एक कश्मीरी के साथ हिन्दी में बात करेगा, और केवल हिन्दी में ही। यह आवश्यक नहीं कि उसके द्वारा प्रयुक्त हिन्दी व्याकरणिक नियमों में उचित रूप से आबद्ध हो।

केवल हिन्दी भाषा को कश्मीर में परिचित कराने का ही श्रेय इन साधुओं को नहीं जाता, अपितु, सूरदास, तुलसीदास और मीराबाई के धार्मिक हिन्दी गीतों को प्रसिद्ध करने का श्रेय भी इनको ही है। कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने इस विषय में शोध-कार्य किया है और इस सर्वेक्षण का परिणाम कुछ वर्षों के भीतर प्रकट हो जायेगा।

न केवल पर्यटकों और साधुओं ने बल्कि व्यावसायिक महत्वों और व्यापारिक रुचि ने पंजाब के मैदानों से सैकड़ों लोगों को कश्मीर में बसने के लिए भेजा। इसी प्रकार 'बानिहाल कार्ट रोड' के खुलने से हजारों कश्मीरी मजदूर शीत के महीनों में नीचे मैदानों में काम की खोज में जाने लगे थे। इन लोगों की अन्य लोगों के साथ बातचीत की भाषा आज भी हिन्दी होती है; बोलचाल की हिन्दी (चाहे हिन्दुस्तानी कहिए)। इस प्रकार, शताब्दियों पूर्व से ही कश्मीरियों ने हिन्दी की स्वाभाविक सम्भावनाओं को, शेष भारत से सम्पर्क की भाषा के रूप में, समझा और पहचाना है।

भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी कश्मीर के लोगों के लिए भिन्न स्वभाव की

---

१. राजतरंगिणी-जोनराज, पृ० १५७ ; श्लोक ११३७ से ११३९ विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूशन, होशियारपुर द्वारा प्रकाशित (२०२४ विक्रमी सं०)।

२. 'कश्मीरी पंडित', आनंद पंडित, पृ० ४६ ; थैकर स्पिक एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता (१९२४)।

३. 'राजतरंगिणी-जोनराज, पृ० १५१ ; श्लोक ८२८ ; विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूशन होशियारपुर द्वारा प्रकाशित (२०२४ वि०)।

४. (अ) ए ग्रीफ नोटिस आन द लैंग्वेज आफ कश्मीर—जोहन क्रिस्टोफ, पृ० १९५ ; प्रकाशन—बर्लिन (१८०६)।

(ब) टूर इन सर्च आफ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स ब्यूलर, पृ० ८३ ; प्रकाशक—सोसाइटी लाइब्रेरी आफ बाम्बे, बम्बई (१८७७)।

(ज) ग्रामर एण्ड वकैबलरी आफ द कश्मीरी लैंग्वेज—ऐजवर्थ, पृ० १०३९ ; जर्नल आफ ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बेंगाल, १० (१८४१)।

भाषा नहीं है। उसका कश्मीरी भाषा से शब्द-सम्बन्धी सादृश्य है। दोनों भारतीय-आर्य-समुदाय की भाषायें हैं और दोनों ने शब्दकोष के लिए संस्कृत के स्रोत[1] को ही अपनाया है।[2] कश्मीरी भाषा के प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थ—'महानय प्रकाश[3] 'वाणासुर कथा[4] और 'सुखदुख चरित',[5] बिना सन्देह यह तथ्य सिद्ध करते हैं कि हिन्दी की भाँति कश्मीरी भी संस्कृत, उससे भी अधिक, वैदिक संस्कृत से निकली है।[6] प्रो० श्रीकण्ठ तोषखानी[7] ने अपने लेख "कश्मीरी भाषा के कुछ आवश्यक संदर्भों" में वैदिक के वे शब्द इंगित किये हैं जो अभी भी कश्मीरी में प्रचलित हैं। उनका कथन है कि कश्मीरी के शब्दकोष और व्याकरण पर एक बार दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है। ग्रियर्सन भी स्वीकार करते हैं कि कश्मीरी का शब्दकोष बहुत अधिक संस्कृत-युक्त है, क्रियायें आश्चर्यजनक रूप से संस्कृत-युक्त हैं।

यहाँ, हमें कश्मीरी उच्चारण में होने वाले परिवर्तनों को देखना है जो कठोर शीत के कारण हुए हैं और जो युगों से विकसित होते आये हैं। रिचर्ड टेम्पल के कश्मीरी भाषा-सम्बन्धी विचार बड़े ही बेढंगे और गलत हैं, विशेषकर उस स्वाभाविक कश्मीरी भाषा के विषय में, जो सामान्य रूप से कश्मीर में (विशेषकर गाँवों में) हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा बोली जाती है। फारसी और अरबी भाषाओं का कश्मीरी पर प्रभाव इस्लाम के आगमन के पश्चात् ही पड़ा है और अभी भी वह केवल सरकारी क्षेत्र की और नव साहित्यिक कृत्रिम कश्मीरी तक ही सीमित है।

सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने अपने पत्र "कश्मीरी की प्राचीनताएँ—एक मूल्यांकन" में उन कश्मीरी शब्दों की ओर संकेत किया है जो अपने आदिकालिक वैदिक रूप में अभी भी हैं। उन्होंने कहा है, कि कश्मीरी-भाषा कई भाषा-

---

१. (अ) देखिए, विक्रमांक देव चरित्र, बिल्हण; अध्याय १८ ; प्रकाशन—चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी (१९६२)।
   (ब) दूर इन सर्वे आफ संस्कृत एम० एस० एस० ; दूसरा अध्याय : "आन कश्मीरी लैंग्वेज" ब्हूलर (पृ० ८३ और आगे), प्रकाशक–सोसाइटी लाइब्रेरी आफ बाम्बे, बम्बई (१८७७)।

२. कश्मीर विश्वविद्यालय में हो रहे नवीनतम शोध ने निस्सन्देह यह प्रमाणित कर दिया है कि कश्मीरी वैदिक संस्कृत का अपभ्रंश है और इसमें ८० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। देखिए—"वितस्ता" (३ से ८), कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की पत्रिका, प्रकाशक—हिन्दी परिषद्, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

३. देखिए, लैंग्वेज आफ 'महानय प्रकाश'—नित्यानंद शास्त्री और सर जी० ग्रियर्सन भाग ११, संख्या २, प्रकाशक—ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल (१९१८)।

४. देखिए, 'वाणासुर कथा'—भट्टावतार ; पाण्डुलिपि सुरक्षित : लाइब्रेरी आफ भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।

५. 'सुखदुख चरित्त'—प्रशस्त गणक : लाइब्रेरी आफ भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में पाण्डुलिपि सुरक्षित है।

६. दूर इन रिसर्च आफ संस्कृत एम० एस० एस० ; (दूसरा अध्याय) ब्हूलर, प्रकाशक—सोसाइटी लाइब्रेरी आफ बाम्बे, बम्बई (१८७७)।

७. श्री तोषखानी, कश्मीर सरकार की अकादमी द्वारा प्रस्तुत कश्मीरी कोश के प्रधान सम्पादक हैं।

वैज्ञानिक युगों को प्रकाशित करती है जैसे—वैदिक, बौद्धकालीन, संस्कृत, पाली और खरोष्ठी-प्राकृत। "आधुनिक भारतीय-आर्य-भाषाओं के तुलनात्मक शब्दकोष" में टर्नर कश्मीरी का उद्‌गम वैदिक होने में जो भी सन्देश रह जाता है उसका निवारण करते हैं। यह पुस्तक हजारों कश्मीरी-शब्दों की व्युत्पत्ति देती है और अन्य भारतीय-आर्य-भाषाओं के विषय में भी यह बताती है कि संस्कृत से पैतृक रूप में पाया गया क्या-क्या उन सभी भाषाओं में समान है।

रिचर्ड टेम्पल का मत है कि कश्मीरी में ४० प्रतिशत फारसी, ५० प्रतिशत अरबी और १० प्रतिशत दूसरी भाषाओं के शब्द हैं। यह कथन न केवल मूर्खतापूर्ण ढंग से गलत है—अपितु आधुनिक विद्वानों से उसे गम्भीरता से लिया ही नहीं है और इसीलिए टेम्पल का कश्मीरी-भाषा पर कोई अधिकार नहीं समझा जाता है।

ध्यान देने योग्य बात है कि कश्मीरी भाषा में चौंका देने वाली संख्या उन शब्दों की है जो हिन्दी की कुछ बोलियों जैसे ब्रज[1], राजस्थानी[2] और अवधी[3] में प्रचलित हैं। इससे स्पष्ट है कि एक कश्मीरी के लिए हिन्दी समझना क्यों कठिन नहीं है। दोनों का संस्कृत पर पैतृक अधिकार है यही नहीं इन दोनों भाषाओं में और भी कुछ तत्व ऐसे हैं जो दोनों को समीप लाते हैं। यहाँ हम उच्चारण और शब्दों के आकार सम्बन्धी भेदों को अस्वीकार नहीं करते हैं। इन भेदों के कारण एक कश्मीरी द्वारा उच्चारित हिन्दी ऐसी लगती है जैसे एक भारतीय द्वारा बोली जाने वाली अंग्रेजी जिसमें अपनी बहुत सी विशिष्टताएँ और विचित्रताएँ हों। निस्सन्देह एक कश्मीरी के लिए हिन्दी की कुछ ध्वनियों का उच्चारण करना और उसके व्याकरण के रूपों को ग्रहण करना कठिन सा होता है। महाप्राण हिन्दी व्यंजनों को कश्मीरी प्रायः अल्पप्राण उच्चारित करते (और लिखते भी) हैं।[4] जैसे 'ध' के लिए 'द' तथा 'भ' के लिए 'ब'। हिन्दी बोलते समय अधिकाँश कश्मीरी[5] प्रायः कश्मीरी व्याकरण को प्रयुक्त करते हैं। इसका कारण यह है कि वे सोचते कश्मीरी में हैं और फिर शब्दशः इसका अनुवाद कर लेते हैं। कुछ प्रयोग तो, जो कश्मीरी-हिन्दी के हैं, वास्तव में बहुत ही मनोरंजक हैं। पंजाब से भौगलिक समीपता के परिणामस्वरूप कश्मीरी हिन्दी बोलते हुए बहुत से पंजाबी और उर्दू भावों और शब्दों को प्रयुक्त करते हैं। फिर भी शिक्षित कश्मीरियों[6] का एक ऐसा लोक-समूह भी है जो साहित्यिक हिन्दी का उसी सरलता और खुले रूप

---

१. उदाहरणतः कश्मीरी शब्द :—लूचं, गहंव, मुलर, जुव इत्यादि।
२. उदाहरणतः कश्मीरी शब्द : रून, चौथाई, दोह इत्यादि।
३. उदाहरणतः कश्मीरी शब्द :—निवि, कार ('नये' के लिए), जटं, छिर इत्यादि।
४. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया खण्ड ८, भा० २, सर जी० ग्रियर्सन, पृ० २४२; प्रकाशक—गवर्नमैंट प्रिंटिंग प्रेस, कलकत्ता (१९१६)।
५. इनमें लगभग सभी कश्मीरी पण्डित हैं।
६. पीछे देखिए :—भारत से कश्मीर में वैष्णव-भक्ति का आगमन।

से (तथा नियमपूर्वक) प्रयोग करता है जैसे हिन्दी-भाषी क्षेत्र का व्यक्ति करता है; हिन्दी ही उनके बौद्धिक व्यवसाय की भाषा कही जा सकती है ।[1]

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि हिन्दी कश्मीर में कब से प्रचलित हुई, लेकिन यह निश्चित है कि यह पिछली कई शताब्दियों से यहाँ है। महान् "भक्ति" आन्दोलन जिसने मध्यकाल में पूरे भारत को प्रभावित किया उसका प्रभाव कश्मीर पर भी पड़ा[2]; जिससे भक्ति-विषयक ज्ञान को विकास मिला। इस धार्मिक विश्वास के प्रेरणास्वरूप कई कश्मीरी कवियों ने भी भक्तिपूर्ण कवितायें हिन्दी और अपनी मातृभाषा में भी रचीं। इस बात का पर्याप्त प्रमाण मिलता है कि ऐसे प्रयत्न १७वीं १८वीं शताब्दी से बहुत पूर्व आरम्भ हो गये थे। रूपभवानी के कथनों में बहुत सी हिन्दी कवितायें बिखरी हुई मिलती हैं, वे १७वीं शताब्दी (१६२५-१७१९ ई०) की महत्वपूर्ण रहस्यवादी कश्मीरी कवियित्री थीं।[3] उन्होंने सन्त कवियित्री लल्लेश्वरी की भाँति कवितायें रचीं। जिस काल में वे रची गई हैं उस काल को ध्यान में रखते हुए उनकी हिन्दी कविताओं की व्याकरणिक शुद्धता आश्चर्यजनक है। इस प्रकार उनका एक महान् ऐतिहासिक महत्व है।

परमानन्द[4] एक अन्य "भक्त" कवि थे (१७९१-१८७९ ई०) जिन्होंने राधा-कृष्ण के अमर प्रेम का गान किया है (राधा-स्वयंवर; सुदामा चरित; शिवलग्न इत्यादि रचनाओं में)। उनकी महान कृति "राधा-स्वयंवर" में कई स्थानों पर हिन्दी में भी उनके गीत फूट पड़े हैं। इस कवि द्वारा प्रयुक्त हिन्दी में ब्रज, खड़ी बोली, पंजाबी और कश्मीरी का विचित्र मिश्रण है जिसे वे 'भाखा' कहते हैं। उनकी "भाखा" में रचित कुछ कविताओं पर हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूरदास का स्पष्ट प्रभाव है। यद्यपि परमानन्द की हिन्दी कवितायें वह उच्चता स्पर्श नहीं कर सकीं हैं जो उनकी कश्मीरी कविताओं ने प्राप्त की है फिर भी साहित्यिक जिज्ञासा के लिए वे बहुत महत्वपूर्ण हैं।

परमानन्द के शिष्य नागाम के लक्ष्मण जू "बुलबुल"[5] (१८५९-१९४६ ई०) ने भी कुछ कवितायें हिन्दी में लिखीं (उनकी एक अन्य कृति है 'नल दमन') उनके कुछ भक्ति

---

१. इसके अतिरिक्त, कश्मीरी भाषा-भाषी लोग द्वित्तों का तथा मिश्रित वर्णों का उच्चारण नहीं कर सकते हैं। ड़ को ड, ढ़ को ढ कहते हैं। अन्तिम दीर्घ मात्रा को लुप्त कर देते हैं। 'ओ' को अ, आरम्भ के 'उ' को 'व' कहते हैं। कश्मीरी की अपनी कुछ विशेष ध्वनियाँ भी हैं, जिनका प्रयोग भारतीय आर्य-भाषाओं में बहुधा नहीं होता है।

२. कश्मीर के 'शुप-वातल' (सूप बेचने वाले) एक विचित्र प्रकार की हिन्दी मिश्रित कश्मीरी का प्रयोग करते हैं।

३. 'रूपभवानी रहस्योपदेश' सम्पादक : डा० रमेशकुमार शर्मा प्रकाशक—अलख साहिबा ट्रस्ट, श्रीनगर, कश्मीर।

४. (अ) परमानन्द सूक्ति-सार भाग १, पृष्ठ ८२, ११२, १२३, १२५, १४५, १५२ ; मास्टर जिन्द कौल द्वारा सम्पादित, दुर्गा प्रेस, श्रीनगर, कश्मीर द्वारा प्रकाशित (१९४१)।
(ब) 'ज्ञान प्रकाश' (परमानन्द के सम्पूर्ण ग्रन्थ), पंडित निरंजननाथ रैना द्वारा सम्पादित, मरकेन्टाइल प्रेस, श्रीनगर (कश्मीर) द्वारा प्रकाशित।

५. लक्ष्मण जू "बुलबुल" की कृतियाँ :—(अ) नलदमयन्ती, (ब) सामनामा, गुलाम नबी खयाल द्वारा सम्पादित, कल्चरल एकेडमी आफ जम्मू और कश्मीर सरकार द्वारा प्रकाशित (१९६५)।

परक गीत हिन्दी और कश्मीरी के एक विचित्र मिश्रण में रचे गये हैं। इसी प्रकार "लीला सम्प्रदाय" के कश्मीरी काव्य के महान् कवि, श्रीकृष्णजू राज़दान[1] ने दो भाषाओं युक्त रचनाएँ कीं, जिनकी लय "गीत गोविन्द" के कवि जयदेश का स्मरण कराती है।

एक अन्य कवि, १९वीं शताब्दी के लालजी जाडू[2], हिन्दी से परिपूर्ण महाकाव्य लिखा है। यह पर्याप्त साहित्यिक योग्यता का काव्य है और यह मध्यकालीन हिन्दी-काव्य के प्रसिद्ध छन्दों में रचा गया है, जैसे, दोहा, चौपाई और सोरठा। मानजू अतार के 'कृष्णावतार में हिन्दी शब्दों को (जहाँ पूर्ण पद्य है) बारम्बार प्रयुक्त किया गया है।[3]

वर्तमान शताब्दी के तीसरे या चौथे दशक तक मध्यकाल की भक्तिपूर्ण कविताओं का यह अबाध प्रवाह चलता रहा है। परमानन्द, "बुलबुल" और श्रीकृष्ण राज़दान (१८५०-१९२५ ई०), ठाकुर जू मानवटी,[4] हलधर जू ककरू[5] और पंडित नीलकण्ठ शर्मा (जो अपनी 'कश्मीरी रामायण' के लिए प्रसिद्ध हैं) ने कश्मीरी कविताओं के साथ बहुत सी हिन्दी कवितायें भी रचीं जो भक्ति, धर्म और नीति की भावनाओं से युक्त थीं। यह केवल संयोग की बात ही नहीं है कि वे कभी-कभी हिन्दी में लिखने लगते थे; वे किसी आर्थिक लाभ या पद के प्रलोभनवश हिन्दी में नहीं लिखते थे अपितु उन्होंने हिन्दी को पूरे भारत के लिए उपयोगी माना और उसमें लिखा। तुलसीदास, सूरदास, कबीर और मीरा जैसे हिन्दी के भक्त-कवियों की कविताओं का कश्मीरी कवि पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि लीला सम्प्रदाय के कश्मीरी कवि के लिए भक्ति और हिन्दी लगभग पर्याय ही हो गये। वह पद्य की कुछ पंक्तियाँ उस भाषाओं में अवश्य लिखना चाहता था जिसमें सूरदास ने "सूरसागर" और तुलसी ने "रामचरितमानस" लिखा; जिससे वह भक्त कवि के रूप में अपना सिक्का जमा सके।

१९४१ में स्वर्गीय पंडित जिन्दा कौल "मास्टर जी" (जो एक प्रसिद्ध कश्मीरी रहस्यवादी सन्त और मानवीय भावनाओं का अध्ययन करने वाले कवि थे) ने "पत्र-पुष्प" नामक पुस्तक में पाँच हिन्दी कवितायें लिखीं और मुद्रित कराईं। ये कवितायें मानव-मूल्यों और मानव की महानता तथा उसकी नीति में गहन और स्थिर विश्वास को अभिव्यक्त करती हैं। भक्तिपरक काव्य के इन कवियों ने कश्मीरी के साथ-साथ

---

१. 'ए पोयम इन द कश्मीरी लैंग्वेज'—कृष्ण राजदान; सर जी० ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित; ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित (१९१३)।
(श्री कष्ण जू राजदान की कृति "शिवलग्न" का प्रकाशन ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा हुआ है।)

२. रिसर्च लाइब्रेरी; जम्मू और कश्मीर सरकार, श्रीनगर, कश्मीर में पाण्डुलिपि सुरक्षित है। रचना काल १८८७ ई० के लगभग।

३. मानजू अतार का 'कृष्णावतार' (१९२४ ई०) रिसर्च लाइब्रेरी, जम्मू और कश्मीर सरकार, श्रीनगर, कश्मीर में उपलब्ध है। प्रथम १० पृष्ठ खो गये हैं अतः प्रकाशक का नाम देना असम्भव है।

४. ठाकुर जू मानवटी का अमृत सागर, शारिका लीला संग्रह में संकलित, चक्रेश्वरी मण्डली, श्रीनगर, कश्मीर द्वारा प्रकाशित।

५. कश्मीर में हिन्दी—पी० एन० राजदान (१९७०)।

हिन्दी में केवल कौतूहल के लिए ही अपने को अभिव्यक्त नहीं किया अपितु उनका हिन्दी को अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में चुनना स्पष्टतः एक गुणग्राही और समझदार पाठक समुदाय की उपस्थिति को सूचित करता है।

कश्मीर में हिन्दी को सरकारी संरक्षण डोगरा शासक महाराजा रणवीरसिंह जी[1] के शासन-काल में मिला, जिन्होंने हिन्दी को एक सरकारी भाषा के रूप में (देवनागरी लिपि में) मान्यता प्रदान की। महाराजा रणवीरसिंह जी ने ही "रणवीर समाचार" नामक पाक्षिक हिन्दी-समाचार-पत्र और विज्ञापन-पत्र निकालने का श्रेय प्राप्त किया परन्तु उनके उत्तराधिकारी महाराजा प्रतापसिंह ने उर्दू को सरकारी भाषा और फारसी भाषा को न्यायालय की भाषा बना दिया। फिर भी हिन्दी, राज्य के शिक्षण केन्द्रों के पाठ्य-क्रम की सूची में एक विषय के रूप में स्वीकार की जाती रही। स्वाभाविक है कि हिन्दी ने कश्मीर में अपनी गहरी जड़ें जमानी आरम्भ कर दीं।

दो वर्ष पूर्व शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह ने जम्मू-कश्मीर प्रदेश के स्कूलों में हिन्दी शिक्षण अनिवार्य कर दिया है। जम्मू-कश्मीर एकमात्र अहिन्दी भाषी प्रदेश है जहाँ हिन्दी का अनिवार्य शिक्षण किया जाता है, जब कि यहाँ की राजभाषा उर्दू है।

(महाराजा हरीसिंह के समय में, तत्कालीन शिक्षा निर्देशक श्री के. जी. सैय्यदन ने सरल उर्दू को राज्य में (फारसी और देवनागरी लिपि में) शिक्षा के सरकारी माध्यम के रूप में घोषित किया। इससे भी हिन्दी को कश्मीर में फैलने की प्रेरणा मिली थी।)

वास्तव में कुछ स्वतन्त्र संगठनों ने कश्मीर में हिन्दी के प्रचार और प्रसिद्धि के लिए बहुत मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण काम किया है। स्वतन्त्रता से पूर्व आर्यसमाज, श्री राम-शिव-त्रिक आश्रम, ईश्वर-शैव-त्रिक आश्रम, श्री अलकेश्वरी सभा ट्रस्ट, सनातन धर्म सभा, समाज सुधार सभा, महावीर दल, हिंन्दी परिषद्, हिन्दी संस्कृत साहित्य मंडल और हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसे अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक संगठनों ने हिन्दी की उन्नति के लिए बहुत कुछ किया। इन संगठनों ने अन्य कार्यों के अतिरिक्त छात्रों को हिन्दी की परीक्षाओं के लिए तैय्यार कराया, कितने ही हिन्दी-माध्यम के शिक्षण केन्द्र खोले और हिन्दी भाषा की कई पत्रिकायें आदि प्रकाशित कीं। साप्ताहिक **"महावीर"** और **"चन्द्रोदय"** (जो कश्मीर में हिन्दी की प्रथम पत्रिकायें थीं) ने कश्मीर में हिन्दी के प्रचार के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने हिन्दी के लेखकों (दुर्गा प्रसाद काचरू, वीर विश्वेश्वर, जानकीनाथ कौल 'कमल' इत्यादि) की आत्माभिव्यक्ति के लिए सुविधायें प्रदान कीं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी इन स्वतन्त्र संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। डी० ए० वी० हाई स्कूलों की देन भी ध्यानाकर्षक है। अब केवल हिन्दी के

---

१. (अ) १९ वीं शती में महाराजा रणवीरसिंहजी ने 'संगीत-सागर' का संकलन कराया था। इसमें राग-रागिनियों के उदाहरण रूप में सूर, मीरा आदि हिन्दी कवियों के भजन संकलित हैं। इसकी पाण्डुलिपि रिसर्च लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

(ब) महाराजा रणवीरसिंहजी ने ही 'रणवीर-ज्योतिष-निबन्ध' का आकलन भी कराया था। सम्पूर्ण भारत से ज्योतिषियों को आमंत्रित करके, ब्रज मिश्रित हिन्दी गद्य में, यह पुस्तक रची गई थी।

प्रचार के स्थान पर इसके साहित्य (और साहित्यिक कार्यों) के प्रोत्साहन पर जोर डाला जा रहा है, कश्मीर हिन्दी प्रचारिणी सभा, कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की हिन्दी परिषद, कश्मीर हिन्दी संस्थान और कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस विषय में विशेष रूप से नामोल्लेखन के अधिकारी हैं, कश्मीर के हिन्दी लेखकों की साहित्यिक प्रगति के लिए कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने उन्हें जो प्रेरणा दी उसके लिए इन लेखकों की एक पूरी पीढ़ी उसकी आभारी है। सम्मेलन की मासिक साहित्यिक पत्रिका "कश्यप" ने भी कश्मीर के युवा हिन्दी-लेखकों के साहित्यिक चातुर्य को प्रकाश में लाकर एक बहुत महान् कार्य किया था। 'कश्यप' के साथ-साथ राज्य की एक अन्य महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका, कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग द्वारा प्रकाशित 'वितस्ता' है। "कश्यप" का प्रकाशन तो अब बन्द हो गया। "वितस्ता" अपने कार्य में संलग्न है। 'वितस्ता' के वार्षिक अंकों ने कश्मीर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में विशेष योग दिया है। इसके दो अंक पुस्तकाकर प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें कविताएँ तथा कहानियाँ संग्रहीत हैं।

१९५० के पश्चात् कश्मीर में हिन्दी लेखकों का एक युवा समुदाय दृष्टिगोचर हुआ जिसने हिन्दी को अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इन लेखकों में हरिकृष्ण कौल, (कहानी) मोती लाल क्यमू, (नाटक) शशिशेखर तोषखानी, (कविता) मोहनलाल "निराश", (कविता) डा० अयूब प्रेमी, (कविता) शामा सेठी, (कविता) हैं। ये सब आधुनिक चेतनता से सम्पन्न हैं और अपनी समकालीन मानवीय स्थितियों को अपने लेखन में मुहावरे के रूप में प्रकाशित करते हैं। हिन्दी संसार ने "कश्मीर हिन्दी संस्थान" द्वारा प्रकाशित आधुनिक कश्मीरी कवियों की हिन्दी कविताओं के संकलन (एक अपरिचित आकाश) का बहुत प्रसन्नता से स्वागत किया था। कश्मीर के आधुनिक हिन्दी लेखकों ने न केवल काव्य के क्षेत्र में प्रभाव जमाया है बल्कि नाटक और कहानियों के क्षेत्र में भी वे आगे हैं।

जो कश्मीर के कई शिक्षण केन्द्रों में हिन्दी पढ़ रहे हैं उन छात्रों की संख्या क्रमशः बढ़ रही है और उनकी संख्या अन्य आधुनिक भाषाओं के पढ़ने वालों से बहुत अधिक है। कश्मीर विश्वविद्यालय में १०० से अधिक छात्र प्रत्येक वर्ष स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्ययन करने के लिए प्रवेश लेते हैं। इस विश्वविद्यालय में बाईस लोगों को पीएच० डी० की डिग्री से विभूषित किया गया है और कई अन्य, कई विषयों पर शोध-कार्य कर रहे हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कश्मीर विश्वविद्यालय में **प्रथम लद्दाखी छात्र ने हिन्दी में एम० ए० की डिग्री १९६८ में प्राप्त की थी।**[1] कश्मीर में हिन्दी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। हम बहुधा रेडियो कश्मीर से सुनते हैं कि हजारों मुसलमानों ने स्वतन्त्र संगठनों के अन्तर्गत हिन्दी की प्रारम्भिक परीक्षाओं में भाग लेना आरम्भ कर दिया है।

---

१. श्री दुर्जेय छेवांग, हिन्दी में एम० ए० करने के बाद अब सोपुर कालिज में हिन्दी का अध्यापन कर रहे हैं, तथा लद्दाखी लोक-साहित्य पर शोध-कार्य कर रहे हैं।

कश्मीर का संस्कृत-साहित्य को योगदान

डा० भूषणकुमार डेम्बी
एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी तथा प्राचीन भारतीय-इतिहास-संस्कृति पुरातत्व)
रीडर, संस्कृत; मध्य एशिया अनुसन्धान केन्द्र, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर ।

कश्मीर ने संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास में जो योगदान किया है वह निश्चय ही महत्वपूर्ण है । यह प्रदेश प्राचीन काल से ही संस्कृत-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का प्रधान केन्द्र रहा है और यहाँ दूर-दूर से संस्कृत प्रेमी विद्यो-पार्जन के लिए आते रहे हैं । परन्तु खेद का विषय है कि, यहाँ विभिन्न युगों में जिस विशाल साहित्य की रचना की गई उसका अधिकांश अव नष्ट हो चुका है और कुछ भाग अभी भी पाण्डुलिपि अवस्था में हो है । इस संक्षिप्त से लेख में कश्मीर में विभिन्न विषयों पर लिखे गए सभी संस्कृत ग्रन्थों का परिचय देना सम्भव नहीं होगा । अत: संस्कृत की कुछ प्रमुख विधाओं के विकास में कश्मीर का जो योगदान रहा है, उसी का हमविवेचन करेंगे ! चूंकि यह योगदान काव्य-शास्त्र तथा ऐतिहासिक-काव्य के क्षेत्रों में अधिक महत्वपूर्ण है, अतः हम पहिले इन्हीं की चर्चा करेंगे !

काव्य-शास्त्र—कश्मीर के संस्कृतज्ञ केवल मौलिक काव्य-रचना करने में ही सिद्धहस्त नहीं थे अपितु काव्य-मूल्यांकन की उनकी प्रतिभा भी विलक्षण थी । भारतीय काव्य-शास्त्र के प्रायः सभी सम्प्रदायों, अलंकार, रीति, रस तथा ध्वनि का प्रणयन एवं विकास कश्मीर में ही हुआ । कश्मीर के काव्य-मर्मज्ञों ने ही भरत मुनि के रस-सम्बन्धी प्रख्यात सूत्र की विभिन्न दृष्टियों से व्याख्या की । कश्मीर के काव्य-शास्त्रकारों में समय की दृष्टि से सर्वप्रथम प्रसिद्ध काव्य-आलोचक **भामह** थे । वे राकिल गोमिन के पुत्र थे और उनका समय सातवीं तथा आठवीं शताब्दी के मध्य वताया जाता है ।

भामह की सुप्रसिद्ध रचना काव्यालंकार है इसमें ६ परिच्छेद तथा ४०० श्लोक हैं । इस ग्रन्थ में काव्य-सम्वन्धी जिन विषयों पर चर्चा की गई है वे इस प्रकार हैं— काव्य का उद्देश्य, परिभाषा एवं वर्गीकरण, वैदर्भी तथा गौड़ी रीति शैलियाँ, काव्य दोष, काव्य गुण, अलंकार, व्याकरण सम्बन्धी दोष । भामह के अनुसार काव्य का उद्देश्य कवि का यशोपार्जन तथा पाठक का मनोरंजन है । वे काव्य में अलंकारों का होना अनिवार्य मानते हैं । उनकी राय में काव्य-कृति चाहे उत्कृष्ट क्यों न हो, अलंकारों के विना आक-र्षक नहीं बन सकती । ठीक वैसे ही जैसे किसी वनिता (स्त्री) का मुख सुन्दर होने पर भी बिना आभूषणों के शोभा नहीं देता (न कान्तमपि निभूर्षं विभाति वनिता मुखम्) । काव्य की परिभाषा देते हुए भामह लिखते हैं "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों मिलकर काव्य की सर्जना करते हैं । स्पष्ट है कि इस परिभाषा में काव्य के अन्तरंग तत्व अथवा आत्मा का वहिष्कार है । काव्य का वर्गीकरण भामह इस प्रकार करते हैं—सर्गबन्ध महाकाव्य, अभिनेयार्थ (नाटक आदि) आख्यायिका (ऐतिहासिक

आख्यान) कथा तथा अनिबद्ध काव्य (मुक्तक काव्य)। भामह काव्य में रीति अथवा लेखन शैली के महत्व को स्वीकार नहीं करते। वे अलंकारों को काव्य का अनिवार्य तत्व मानकर उन पर ही विशेष बल देते हैं।

भामह के अनन्तर दूसरे विख्यात कश्मीरी काव्य-समीक्षक उद्भट हैं। कल्हण के अनुसार वे राजा जयापीड़ (७७९-८१३ ई०) के सभा पण्डित थे। उद्भट का प्राख्यात ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार संग्रह' है इसमें ६ वर्ग अथवा अध्याय हैं। उद्भट के ग्रन्थ की जो पाण्डुलिपि इस समय उपलब्ध है, उसमें केवल अलंकारों का ही विवरण है। काव्य के दूसरे आवश्यक तत्वों के सम्बन्ध में लेखक की निजी धारणा क्या थी, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। उद्भट के अलंकारों का वर्गीकरण तथा उनकी परिभाषा भामह जैसी ही है, किन्तु उनकी मौलिकता विभिन्न अलंकारों के विभेदीकरण पर आधारित है। जहाँ भामह एक ही प्रकार की अतिशयोक्ति का उल्लेख करते हैं, वहाँ उद्भट ने इसी अलंकार के चार भेद गिनाए हैं। भामह के अनुप्रास के दो भेदों के स्थान पर उद्भट ने अनुप्रास के चार भेद बताए हैं। उद्भट की रस सम्बन्धी धारणा भी भामह से अधिक प्रौढ़ है और उन्होंने रस के दो महत्वपूर्ण अंग भाव और अनुभाव का भी उल्लेख किया है। अलंकार सिद्धान्त के जो बीज भामह ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में बोये थे वे उद्भट की रचना में एक बृहदाकार वृक्ष के रूप में विकसित हुए। यही कारण है कि चक्रवर्ती आलोचक भामह की अपेक्षा उद्भट के सिद्धान्तों को ही अधिक मान्यता देते हैं। उद्भट ने भामह की रचना पर भामह-विवरण नाम की टीका भी लिखी है जो अब प्राप्य नहीं।

वामन—जयापीड़ की ही सभा के एक और महान पण्डित वामन थे जिन्होंने 'काव्यालङ्कार-सूत्रवृत्ति' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में काव्य-शास्त्र सम्बन्धी सूत्र तथा उन पर वामन द्वारा स्वयं लिखी गई 'कवि-प्रिया' नामक टीका है। 'काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति' पाँच अधिकरणों में विभाजित है और प्रत्येक अधिकरण में कई अध्याय हैं। अधिकरणों के शीर्षक इस प्रकार हैं—शरीर, दोष-दर्शन, गुण-विवेचन, आलङ्कारिक तथा प्रायोगिक।

अपने पूर्ववर्ती आलोचकों की तरह वामन भी शब्द और अर्थ को काव्य-शरीर के अभिन्न अंग मानते हैं और काव्य की आत्मा के विषय में उनकी अपनी निजी धारणा है। उनके मत में रीति ही काव्य की आत्मा है—'रीतिरात्मा काव्यस्य।' इस प्रकार वामन भारतीय काव्यशास्त्र के रीति-सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। वामन के मत में रीति का अर्थ विशिष्ट अर्थात् गुण सम्पन्न पद रचना है—'विशिष्टा पद-रचना रीति।' रीति के तीन भेद हैं—गौड़ी, वैदर्भी और पाञ्चाली'। स्पष्ट है कि रीतिभेदों के यह नामकरण विशिष्ट क्षेत्र में विकसित विशिष्ट रीति के आधार पर किये गए हैं। रीति का गुणों के साथ निकटम सम्बन्ध है। वामन के अनुसार वैदर्भी में सभी दस गुण हैं जबकि गौड़ी में केवल ओज और कान्ति और पाञ्चाली में माधुर्य और सौकुमार्य हैं। चूंकि रीति काव्य की आत्मा है अतः वामन के मतानुसार गुण भी काव्य के अनिवार्य

तत्व हैं। वामन अलङ्कार को काव्य का प्रसाधन-मात्र मानते हैं, काव्य का अनिवार्य तत्व नहीं। रस को वामन कान्ति नामक गुण के एक अङ्ग के रूप में स्वीकार करते हैं।

रुद्रट—वामन के अनन्तर दूसरे समीक्षक रुद्रट हैं जिनका स्थितिकाल निश्चित नहीं है। राजशेखर और वल्लभदेव ने उनकी रचना से उद्धरण दिए हैं अतः रुद्रट का रचनाकाल इन दोनों से पूर्व अर्थात् नवीं शताब्दी के अन्त से पूर्व रहा होगा। प्रसिद्ध आलोचक आनन्दवर्धन रुद्रट की कृति से परिचित नहीं दीखते अतः रुद्रट का रचना काल नवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

रुद्रट की प्रसिद्ध रचना 'काव्यालङ्कार' है इसमें अलङ्कार शास्त्र के समस्त सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक समीक्षा की गई है। रुद्रट अलंकार-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं और अलंकार को काव्य का अनिवार्य अंग मानते हैं। वे रस की स्थिति को स्वीकार करते हैं पर इसे काव्य का अनिवार्य अंग नहीं मानते। रीति को भी वे काव्य का आवश्यक तत्व नहीं समझते। उन्होंने पाञ्चाली, लाटी, गौड़ी तथा वैदर्भी इन चार प्रकार की रीतियों की चर्चा की है।

आनन्दवर्धन—भारतीय काव्य-शास्त्र के एक और सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय, के प्रवर्तक आनन्दवर्धनाचार्य हैं। इनका आविर्भाव कल्हण के अनुसार उत्पलनरेश अवन्ति वर्मा (८५५-८८३ ई०) के शासनकाल में हुआ। इनका 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रन्थ मौलिकता तथा विद्वता की दृष्टि से अतीव उत्कृष्ट रचना है। ध्वन्यालोक दो भागों में विभाजित है—प्रथम भाग में मूल पाठ अर्थात् कारिकाएँ तथा द्वितीय में इन कारिकाओं की उदाहरण सहित व्याख्या अर्थात् वृत्ति है। प्रसिद्ध आलोचक अभिनवगुप्त और मम्मट आनन्दवर्धन को वृत्ति के रचयिता नहीं मानते जबकि कतिपय आधुनिक विद्वान दोनों कारिकाओं और वृत्ति को आनन्दवर्धन द्वारा रचित ही मानते हैं। प्रायः विद्वान कारिकाओं के रचयिता को ध्वनिकार नाम से अभिहित करते हैं।

ध्वनिकार के मतानुसार ध्वनि ही काव्य का आत्मा है—'ध्वनिरात्मा काव्यस्य'। ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके एक अलौकिक प्रतिभाजन्य अर्थ को प्रकाशित करते हैं उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।" ध्वनिकार ने अभिधा तथा लक्षणा से इतर एक और शब्द-शक्ति व्यंजना की उद्भावना की है जो ध्वनि की वाहक है। ध्वनि के आधार पर ही 'ध्वन्यालोक' में काव्य को तीन भागों में विभाजित किया गया है, ध्वनिकाव्य, गुणीभूत-व्यंग्य काव्य तथा चित्रकाव्य। 'ध्वन्यालोक' में रस की सत्ता मानी गई है पर ध्वनि से पृथक रूप में नहीं। दस गुणों में ध्वनिकार केवल तीन गुणों, माधुर्य, ओज और प्रसाद को ही स्वीकार करते हैं। वे अलंकारों के महत्व को स्वीकार करते हैं पर इनकी पृथक सत्ता उन्हें स्वीकार्य नहीं। अलंकार को वे इसके पोषक तत्व के रूप में ही स्वीकार करते हैं

अभिनवगुप्त—ध्वन्यालोक की सर्वोत्कृष्ट एवं प्रसिद्ध टीका 'काव्या लोचन' है जो प्रायः केवल 'लोचन' नाम से विख्यात है। इसके रचयिता कश्मीर के प्रसिद्ध

दार्शनिक, लेखक तथा समीक्षक आचार्य अभिनवगुप्त हैं। अपनी रचनाओं में कतिपय स्थलों पर दी गई तिथियों के आधार पर उनका रचनाकाल दशम शताब्दी के अन्तिम पाद तथा ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम पाद के भीतर निर्धारित किया जा सकता है।

ध्वन्यालोक की कीर्ति तथा लोकप्रियता का मुख्य कारण उसकी अभिनवगुप्त द्वारा रचित पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या ही है। अभिनवगुप्त की काव्यशास्त्र को प्रधान देन उनकी रस-सिद्धान्त की वैज्ञानिक व्याख्या है। उनके मतानुसार पाठक या दर्शक में विभिन्न प्रकार के भाव वासना रूप में पहिले से ही विद्यमान रहते हैं। काव्य केवल उन वासनाओं को जागृत कर देता है। अव्यक्त रूप में स्थित वासनाओं की काव्य के प्रदर्शन से अभिव्यक्ति हो जाती है। अभिनवगुप्त का रस सम्बन्धी सिद्धान्त 'अभिव्यक्तिवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। रस-सूत्र की व्याख्याओं में अभिनवगुप्त की ही व्याख्या समीचीन मानी गयी है और उन्हीं की रस परिपाटी को अन्य आचार्यों ने मान्यता दी है।

कुन्तक—वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक भी सम्भवतः कश्मीरी थे। इन का आविर्भाव दसवीं शताब्दी के मध्य तथा ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच माना जाता है। कुन्तक का प्रधान ग्रन्थ 'वक्रोक्ति जीवित' है जिसका सम्पूर्ण अंश अभी उपलब्ध नहीं हुआ है। कुन्तक वक्रोक्ति को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। वक्रोक्ति की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत करके कुन्तक ने उसे काव्य के आधारभूत एवं सर्वग्राही तत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया। कुन्तक के मतानुसार वैदग्ध्यपूर्ण शैली द्वारा उक्ति ही वक्रोक्ति है। वक्रोक्ति के वैचित्र्य या वक्रत्व के लिए कुन्तक ने सहृदय के मनः प्रसादन करने की क्षमता को अनिवार्य माना है। काव्य के अन्य तत्वों रस, अलंकार, रीति, ध्वनि आदि को उन्होंने वक्रोक्ति के अन्तर्भूत ही माना है।

क्षेमेन्द्र—ग्यारहवीं शताब्दी के बहुशास्त्रज्ञ एवं प्रख्यात लेखक क्षेमेन्द्र ने भी काव्यशास्त्र सम्बन्धी कतिपय ग्रन्थों की रचना की है जिन में "औचित्य विचार चर्चा" एवं "कवि कण्ठाभरण" उल्लेखनीय हैं। 'औचित्य विचार चर्चा' में लेखक औचित्य को काव्य का जीवितभूत अर्थात् आत्मा मानते हुए उसकी सर्वाङ्गीण व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। क्षेमेन्द्र के मतानुसार औचित्य रहित गुण या अलंकार का काव्य में कोई महत्व नहीं। इस ग्रन्थ में लेखक ने अनेक कवियों के उद्धरण दिए हैं जिससे इसका महत्व और भी बढ़ गया है।

"कवि कण्ठाभरण" में क्षेमेन्द्र ने कवि की अपेक्षित अर्हताओं पर प्रकाश डाला है। उनके मत में एक सफल कवि के लिए विभिन्न कलाओं ताथ शास्त्रों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। उसे व्याकरण, न्याय, काव्य-शास्त्र, काम-शास्त्र ज्योतिष आदि शास्त्रों में पारंगत होना चाहिए। लेखक ने इसी रचना में काव्य गुण-चमत्कार की भी व्याख्या की है और उसे काव्य-रचना का अनिवार्य तत्व माना है।

कश्मीर के परवर्ती काव्यशास्त्र के आचार्यों में "व्यक्ति विवेक" के रचयिता महिमभट्ट, "काव्य प्रकाश" के प्रणेता आचार्य मम्मट और 'अलंकार सर्वस्व" के कर्त्ता राजानक रुय्यक प्रमुख हैं। "अलङ्कार सर्वस्व" में अलकारों की विशद एवं विस्तृत

व्याख्या की गई है जबकि "काव्य प्रकाश" में काव्य-शास्त्र सम्बन्धी सभी विषयों, काव्य का उद्देश्य, परिभाषा एव वर्गीकरण, शब्द शक्ति, ध्वनि, रस, गुणीभूत व्यंग्य, चित्र-काव्य, दोष, गुण, अलंकार आदि का विस्तृत विवरण दिया है। 'काव्य-प्रकाश' एक प्रकार से काव्य-शास्त्र की पाठ्यपुस्तक (Text book) ही है और इसी रूप में यह आजकल अधिक लोकप्रिय है।

ऐतिहासिक काव्य

कश्मीर की संस्कृत काव्य-रचनाओं में ऐतिहासिक काव्यों का विशिष्ट स्थान है। इस प्रकार की रचनाएं केवल कश्मीरी कवियों द्वारा ही लिखी गई हैं और इनके ही आधार पर भारतीय विद्वानों ने पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लगाए गए इस आरोप का खण्डन किया है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास लेखन की प्रतिभा नहीं थी।

कश्मीर में इतिहास लेखन की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही थी। इस बात का प्रमाण हमें कल्हण की "राजतरङ्गिणी" में उपलब्ध होता है जिसमें कई प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों, अभिलेखों तथा क्षेमेन्द्र, पद्ममिहिर, छविल्लाकर आदि इतिहासकारों का उल्लेख किया गया है। खेद का विषय है कि इनमें से एक की भी रचना अब उपलब्ध नहीं। इस समय प्राप्य इतिहास विषयक पहली गम्भीरतर रचना बिल्हण कृत "विक्रमाङ्क देव चरित" है।

बिल्हण—श्रीनगर के पूर्व में स्थित खोनमुह ग्राम में पैदा हुए। अपने काव्य में इन्होंने इस ग्राम की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सम्भवतः वे कश्मीर नरेश कलश के राज्यकाल में ही अपना घरबार छोड़कर इधर-उधर घूमते फिरे। उन्होंने मथुरा, कन्नौज, प्रयाग और काशी की यात्रा की और कुछ समय के लिए डाहल के राजा कर्ण के दरबार में और कदाचिद अणहिलवाड़ के चालुक्य कर्णदेव त्रैलोक्यमल (१०६४-९४ ई०) की सभा में भी रहे। तदनन्तर कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६-११२७ ई०) ने उन्हें विद्यापति की उपाधि से विभूषित किया और अपने दरबार में उचित स्थान प्रदान किया। अपने आश्रयदाता के सम्मान में ही उन्होंने "विक्रमाङ्क देवचरित" की रचना की। बिल्हण ने अपने वंश के विषय में पूरी जानकारी दी है, उनके पिता ज्येष्ठ कलश तथा माता नागदेवी थीं। उनके दो भाई इष्टराम और आनन्द थे जो दोनों संस्कृत के विद्वान और कवि थे।

"विक्रमाङ्क देव चरित" ऐतिहासिक विषय पर लिखा गया अठारह सर्गों का एक महाकाव्य है। इसमें कल्याण नरेश विक्रमादित्य त्रिभुवनमल के जीवन का काव्यात्मक ढंग से वर्णन किया गया है। यद्यपि बिल्हण ने अपने काव्य के लिए एक ऐतिहासिक विषय चुन लिया है पर आधुनिक अर्थ में उनका काव्य इतिहास न होकर एक महाकाव्य ही है जिसमें इतिहासेतर अनेक विषयों की चर्चा है। काव्य में वास्तविक चरित्र-चित्रण का अभाव है, केवल महाकाव्य का प्रतिबिम्ब ही है। इसमें नीरस और दीर्घ वर्णनों की भरमार है जो संस्कृत महाकाव्य के ह्रास युग के महाकाव्यों की एक

विशेषता हैं। कहीं-कहीं उत्कृष्ट काव्य के भी दर्शन होते हैं। चतुर्थ सर्ग में आह्लमल्ल की मृत्यु का चित्रण परम उत्कृष्ट है। अपने पैत्रिक स्थान खोनमुख (खोनमुष-खोन-मुह) का वर्णन भी सजीव तथा सुन्दर है।

ब्रूमस्तस्य प्रथमवसतेरद्भुतानां कथानां
किं श्रीकण्ठश्वशुरशिखरि क्रोडकी (? ली) लाललाम्नः।
एको भागः प्रकृतिसुभगं कुंकुमं यस्य सूते
द्राक्षामन्यः सरससरयू पुण्ड्रकच्छेद पाण्डूम् ॥

"अद्भुत कथाओं के प्रथम निवास स्थान और शिव के श्वशुर हिमालय पर्वत की गोद के लीलामय भूषण उस (खोनमुह) के विषय में हम क्या कहें, जिसके एक भाग में स्वाभाविक सुन्दरता से युक्त कुंकुम पैदा होता है और दूसरे भाग में सरयू के किनारों पर उगने वाले सरस पौंडों के टुकड़े के समान पाण्डुवर्ण के अंगूर उत्पन्न होते हैं।"

कल्हण—प्रख्यात ऐतिहासिक काव्य "राजतरङ्गिणी" के रचयिता कल्हण प्राचीन भारत के प्रथम इतिहास लेखक हैं। उनमें आधुनिक इतिहासकारों की सभी अर्हताएं विद्यमान थीं। उन्होंने न केवल पूर्ववर्ती ऐतिहासिक ग्रन्थों का ही अध्ययन किया था अपितु विभिन्न प्रकार के ऐसे अभिलेखों का जिनमें देव मन्दिरों, स्मारकों तथा प्रासादों के निर्माण के लेख उत्कीर्ण किए गए थे, ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण भूमिदान, राजप्रशस्तियों, और साहित्यिक ग्रन्थों के हस्तलेखों का जिनमें राजाओं, के नामों का और दिनांकों का प्रायः अंकन होता है, का भी निरीक्षण किया था। उन्होंने विभिन्न युगों के सिक्कों का अध्ययन तथा इमारतों का निरीक्षण भी किया था और सम्पूर्ण घाटी का पर्यटन करके कश्मीर के भूगोल की पर्याप्त जानकारी प्राप्त की थी। सारांश यह कि ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना के लिए आज जिन उद्गमों या स्रोतों का उपयोग किया जाता है, उन सभी का कल्हण ने भी यथेष्ट उपयोग किया था। साथ ही एक सफल इतिहास-लेखक के महान आदर्श को उन्होंने सदा अपने सम्मुख रखा है, "वही उदार चित्त कवि प्रशंसा के योग्य होता है जिसका लेख एक न्यायाधीश के दण्डादेश के समान भूत्काल के उल्लेख में राग और द्वेष से अपने को पृथक रखता है।" इतना होने पर भी कल्हण एक वैज्ञानिक अनुसंधानकर्त्ता होने का कोई दावा नहीं करते हैं। नवीं शताब्दी के मध्य में उत्पल राजवंश के प्रारम्भ तक उनके सामने कोई प्रामाणिक एवं विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री नहीं थी। जो सामग्री उपलब्ध थी उसको उन्होंने बिना सत्यासत्य परीक्षण के अपने काव्य में स्थान दिया। यही कारण है उनकी रचना के आरम्भिक भाग में ऐतिहासिक दृष्टि से कई न्यूनताएं रह गई हैं। साथ ही लगता है कल्हण की दृष्टि घाटी की सीमाओं के भीतर ही अधिक रमी रही। वाह्य संसार की घटनाओं की उन्हें पूरी जानकारी नहीं थी। भारत के प्राचीन इतिहास का ज्ञान भी उनका अधूरा था। यही कारण है कि उनका कुषाणों तथा हूणों का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से उचित स्तर का बन नहीं पड़ा है। ऐतिहासिक कालक्रम के विषय में कहा

जा सकता है कि यह कल्हण की अपनी कल्पना नहीं थी पर "उन्होंने उसे जैसे का तैसा ले लिया और उसकी स्पष्ट असम्भाव्यताओं और लम्बे राज्य-काल की हास्यास्पदताओं पर कभी ध्यान नहीं दिया, यद्यपि अपने समसामयिक अनुभव के आधार पर वे उनके असंभाव्य रूप को समझ सकते थे।"

कल्हण की तटस्थता निश्चय ही प्रशंसनीय है। उन्होंने अपने देशवासियों के दुर्गुणों को छिपाया नहीं है। अपितु उनकी कड़ी भर्त्सना की है। कश्मीर के अनुशासनहीन डरपोक सैनिकों की उन्होंने कड़ी निन्दा की है। अपने देशवासियों के सम्बन्ध में उनकी यह समीक्षा कि "वे सुन्दर, मिथ्याभाषी और चञ्चलचित्त हैं," आज आम चर्चा का विषय बन गई है। उन्होंने स्पष्टवादिता के साथ अधिकारी वर्ग की लोलुपता, धनापहरण, अत्याचार, उत्पीड़न तथा अन्यायपूर्ण कार्यों का भण्डा-फोड़ किया है। पुरोहित वर्ग को भी उन्होंने नहीं छोड़ा है। स्वयं ब्राह्मण होने पर भी उनकी व्यावहारिक अज्ञानता की ओर संकेत किया है तथा अपनी बुद्धि के बाहर के मामलों में हस्तक्षेप करने की उद्दण्डता की खिल्ली उड़ायी है।

कल्हण चम्पक के सुपुत्र थे जो राजा हर्ष (१०८९-११०१ ई०) के शासनकाल में द्वारपति के ऊँचे पद पर आसीन थे। सुस्सल के निधन पर जब जयसिंह ने कश्मीर के शासन की बागडोर संभाली तो कल्हण उनके सभापति बन गए और उन्हीं के शासन-काल में (११४९-११५० ई०) में अपनी अमूल्य कृति "राजतरङ्गिणी" की रचना की।

"राजतरङ्गिणी" आठ तरङ्गों पर आधारित एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें कश्मीर के राजाओं का महाभारत से लेकर ११४९ ई० में शासन कर रहे जयसिंह तक के राज्य का वर्णन है। उपयुक्त सामग्री के अभाव में आरम्भ के तीन तरङ्गों में राजाओं का वर्णन शुद्ध रूप में ऐतिहासिक नहीं बन पड़ा है परन्तु चौथी तरङ्ग से लेकर (जब कर्कोट वंशीय राजाओं का वर्णन आरम्भ होता है) कल्हण के अपने समय तक का वृतान्त बहुत सीमा तक ऐतिहासिक है। आठवीं तरंग अत्यधिक विस्तृत है क्योंकि इसमें कवि ने अपनी स्वयं देखी घटनाओं का अतीव सूक्ष्म, विस्तारपूर्वक, सजीव तथा यथार्थ वर्णन किया है।

कल्हण कवि-कर्म में पूर्णतः कुशल थे। उनके वर्णन विविधता से भरे हैं और अतीव मार्मिक एवं रोचक हैं। सम्वादों तथा व्यवस्थित उक्तियों के प्रयोग से काव्य में नाटकीयता का भी समावेश ही गया है।

उनकी कुछ उक्तियां निस्संदेह बड़ी मार्मिक हैं—

यों यं जनापकरणाय सृजत्युपायं
तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाशः।
धूमं प्रसौति नयनान्धकारं यमग्निर्—
भूत्वाम्बुदः स शमयेद् सलिलैस्तमेव॥

"जो जिस उपाय को दूसरे के अपकार के लिए बनाता है उसका अवश्य ही

उसी से विनाश हो जाता है। अग्नि आँखों को अन्धा करने वाले जिस धूम को उत्पन्न करती है, वही मेघ बनकर जलों से उस अग्नि को शांत कर देता है।"

इस प्रकार "राजतरङ्गिणी" अपने ढंग की विलक्षण रचना है और अब तक प्राप्त कोई भी एतद् विषयक रचना इसकी समानता नहीं कर सकी है।

परवर्ती ऐतिहासिक काव्य

कल्हण द्वारा दिए गए इतिवृत्त को आगे बढ़ाने का जिन कश्मीरी ऐतिहासिक काव्य-लेखकों ने प्रयास किया उनमें जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट और शुक प्रमुख हैं। जोनराज ने "द्वितीय राजतरङ्गिणी" की रचना की। उनकी योजना थी कि वे कल्हण द्वारा छोड़े गए सूत्र को अपने आश्रयदाता जैनुल-आबिदीन (१४२७-१४७७ ई०) के शासन काल तक लाएं पर १४५९ ई० में अकस्मात मृत्यु के कारण वे ऐसा नहीं कर पाए और उनका ग्रन्थ अधूरा रह गया, परन्तु उनके शिष्य श्रीवर ने अपने गुरु के अधूरे कार्य को पूरा ही नहीं किया अपितु अपने ग्रन्थ "जैनराजतरङ्गिणी" में १४५९ से लेकर १४८६ तक के काल का इतिहास भी लिखा।

प्राज्यभट्ट और उनके शिष्य शुक ने "राजावलिपताका" में अकबर द्वारा कश्मीर को अपने राज्य में सम्मिलित किए जाने के कुछ वर्ष बाद तक के इतिहास का वर्णन किया है। इन सभी लेखकों में कल्हण जैसी मौलिकता तथा विशिष्टता का अभाव है। वे निर्लज्जता से कल्हण का अनुकरण करते हैं और यद्यपि उन्होंने एक सुदीर्घ काल का वर्णन किया है तो भी उनका सम्पूर्ण कार्य "राजतरङ्गिणी" के आधे से अधिक नहीं है। वे घटनाओं का आवश्यकता से अधिक बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हैं और उनका भौगोलिक ज्ञान भी कल्हण की अपेक्षा कम यथार्थ है।

जैसा कि प्रायः देखा जाता है कल्हण की महान कृति के अनन्तर उनके पूर्ववर्ती एतद्विषयक ग्रन्थ विस्मृति के गर्त में गिर कर रह गए। यही कारण है कि उनकी पूर्ववर्ती कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक रचनाएँ अब उपलब्ध नहीं होतीं। इनमें जल्हण कृत "सोमपाल विलास" उल्लेखनीय है। इस कृति में लेखक ने राजपुरी (आधुनिक राजौरी) के राजा संग्रामपाल के सुपुत्र सोमपाल के शासन का विवरण दिया है। सोमपाल जल्हण के आश्रयदाता थे और कश्मीर नरेश सुस्सल से युद्ध में पराजित हो गए थे। "श्री कण्ठ चरित" के रचयिता ने जल्हण का राजपुरी के मन्त्री के रूप में और अलंकार की सभा के एक सभासद के रूप में वर्णन किया है। "सार समुच्चय" के कर्त्ता रत्नाकर के कथनानुसार स्वयं कल्हण ने एक और ऐतिहासिक काव्य "जैसिंहाम्युदय" की रचना की थी जो अब प्राप्य नहीं।

एक और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य "पृथ्वीराज विजय" की एक हस्तलिखित प्रति मिली है जो खंडित तथा भ्रष्ट है। इनमें देहली और अजमेर के चाहमान (चौहान) राजा पृथ्वीराज की विजयों का वर्णन है। ग्रन्थकार का नाम अज्ञात है। सम्भवतः वह कश्मीर निवासी ही था। इस काव्य की रचना बिल्हण की कृति के अनुकरण पर की गई

है और उपर्युक्त जोनराज ने इस पर टीका लिखी है। कश्मीरी आलोचक जयरथ (१२०० ई०) ने भी अपनी "अलङ्कारविमर्शिनी" में इसका उल्लेख किया है।

महाकाव्य

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कश्मीर के अनेक प्राचीन कवियों की कृतियाँ अब नष्ट हो चुकी हैं। इस समय जिन कवियों के नाम तथा कृतियाँ सुरक्षित हैं उनमें से कोई भी छठी शताब्दी के पूर्व का नहीं है। कल्हण के अनुसार छठी शताब्दी में कश्मीर में मातृगुप्त नाम के राजा राज्य करते थे जो राजा होने के साथ-साथ एक श्रेष्ठ कवि भी थे। वे प्रवरसेन द्वितीय (५८० ई०) तथा उज्जयिनी के विक्रमादित्य हर्ष (छटी शताब्दी) के समकालीन थे। उनकी कोई भी कृति अब उपलब्ध नहीं। क्षेमेन्द्र ने अपनी "औचित्य विचार चर्चा" में और वल्लभदेव ने अपनी 'सुभाषितावली' में उनकी लुप्त काव्य रचना से कुछ उद्धरण दिए हैं। कई विद्वानों का विचार है कि मातृगुप्त महाकवि कालिदास का ही दूसरा नाम है, परन्तु यह अभी विवादास्पद है।

'राजतरङ्गिणी' में ही एक और कवि भर्तृमेण्ठ का उल्लेख है जिनके बारे में लिखा गया है कि उनकी कृति "हयग्रीव वध" से तत्कालीन राजा मातृगुप्त इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने कवि को एकसोने की थाली इसलिए पुरस्कार के रूप में दी कि ग्रन्थ को वेष्टन में बाँधते समय यह थाली नीचे रखी जाए ताकि इसका रस नष्ट न हो जाय। 'हयग्रीव वध' अब उपलब्ध नहीं। परन्तु उसके कुछ श्लोक क्षेमेन्द्र के "सुवृत्त-तिलक" मम्मट के "काव्य प्रकाश", भोजराज के "सरस्वती कण्ठाभरण", राजशेखर की "काव्य मीमांसा", वल्लभदेव की "सुभाषितावली" तथा हेमचन्द्र की "अलङ्कार चूडामणि" में पाये जाते हैं। मंख भर्तृमेण्ठ को सुबन्धु, भारवि और बाण के समकक्ष रखते हैं। राजशेखर ने उन्हें वाल्मीकि का अवतार माना है। पद्मगुप्त परिमल ने अपने "नवसाहसांक चरित" में भर्तृमेण्ठ की भूयसी प्रशंसा की है। इन उल्लेखों से अनुमान लगाया जा सकता है कि भर्तृमेण्ठ कितनी अलौकिक प्रतिभा के कवि थे। कुछ विद्वान जिनमें ट्रायर प्रमुख हैं, 'हयग्रीव वध को नाटक मानते हैं, परन्तु उल्लिखित अधिकांश ग्रन्थों में महाकाव्य के रूप में ही इस का उल्लेख किया गया है। अतः 'हयग्रीव वध' को एक महाकाव्य मानना ही समीचीन होगा।

कार्कोट शासन काल के कवियों में कल्हण ने दामोदर गुप्त, मनोरथ, शंखदत्त, चटक, और सन्धिमत का उल्लेख किया है जिन्होंने राजा जयापीड के दरबार में यश प्राप्त किया। इनमें से दामोदर गुप्त की रचना "कुट्टनी मत" को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ नष्ट हो चुकी हैं। मनोरथ की रचना के कुछ पद "सुभाषितावली" में सुरक्षित हैं। दामोदर की रचना "कुट्टनीमत" की चर्चा आगे की जाएगी। कार्कोट नरेश अजितापीड़ के शासनकाल में एक और कवि शंकुक का आविर्भाव हुआ जिन्होंने 'भुवनाभ्युदय' नाम के काव्य की रचना की। सिंहासन के प्रत्याशी मम्म और उत्पलक का आपसी कलह ही इस महाकाव्य का विषय है। यह रचना भी अब उपलब्ध नहीं। पर इस के अंश वल्लभदेव की "सुभाषितावली" में सुरक्षित हैं। कार्कोट वंश के कुछ

राजा भी कवि-कर्म में सिद्धहस्त थे । राजा मुक्तापीड़ तथा जयापीड़ की काव्य रचनाओं के कुछ अंश 'सुभाषितावली' में सुरक्षित हैं ।

कार्कोट शासनकाल के अनन्तर उत्पल नरेशों के शासनकाल में जिन कवियों ने ख्याति अर्जित की उनमें मुक्तकाण, शिव स्वामिन् रत्नाकर तथा भल्लट उल्लेखनीय हैं । मुक्तकाण की रचना प्राप्य नहीं पर उनकी कृति के कुछ अंश क्षेमेन्द्र के "कविकण्ठाभरण" तथा 'सुवृत्त तिलक' में सुरक्षित हैं । रत्नाकर प्रख्यात वृहत्काय महाकाव्य "हरविजय" के रचयिता हैं । कल्हण के अनुसार उन्होंने अवन्ती वर्मा (८५५-८८३ ई०) के साम्राज्य में ख्याति प्राप्त की । अतः उनका रचनाकाल नवमी शताब्दी का मध्यभाग माना जा सकता है ।

"हरविजय" कलेवर की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का सबसे बड़ा महाकाव्य है । यह ५० सर्गों में विभक्त है । इसमें शिवजी द्वारा अन्धकासुर के वध की कथा का वर्णन है । परन्तु जैसा इस प्रकार के महाकाव्यों में देखा जाता है इसमें कथानक सर्वथा गौण और वर्णनों की भरमार है । वर्णनों में शंकर की नगरी, जल-क्रीड़ा, सन्ध्याकाल, चन्द्रोदय, सम्भोग, दूत-कर्म तथा युद्ध के वर्णन उल्लेखनीय हैं । संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में निर्दिष्ट महाकाव्य की सभी विशेषताएँ इसमें हैं और संस्कृत आचोलकों ने इसकी भूयसी प्रशंसा भी की है, परन्तु इस महाकाव्य में पाण्डित्य-प्रदर्शन अधिक और सरस ललित पदावली विरल है । भाषा क्लिष्ट है और लम्बे वर्णनों से पाठक ऊब जाता है, फिर भी यत्र-तत्र उत्कृष्ट काव्य के सुन्दर उदाहरण भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

शिव स्वामी के बौद्ध काव्य "कप्फिनाभ्युदय" की चर्चा आगे की जायेगी । भल्लट, शंकर वर्मा के समकालीन थे । उन्होंने "भल्लट शतक" की रचना की जिसके उद्धरण अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट की रचनाओं तथा "शारङ्गधर पद्धति" और "सुभाषितावली" में उपलब्ध होते हैं ।

बारहवीं शताब्दी में संस्कृत महाकाव्य के ह्रास-युग के प्रतिनिधि एक और महाकाव्य की रचना हुई जिसका नाम "श्री कण्ठ चरित" है । इसके लेखक मंख हैं । मंख प्रसिद्ध आलंकारिक रुय्यक के शिष्य थे । ये दोनों गुरु-शिष्य कश्मीर के राजा जय सिंह (११२६-५० ई०) के सभा पण्डित थे । २५ सर्गों पर आधारित इस महाकाव्य में शिवजी द्वारा त्रिपुरासुर के नाश की कथा का साहित्यिक वर्णन है । मूल कथानक अति संक्षिप्त है परन्तु विभिन्न वर्णनों के समावेश से महाकाव्य का कलेवर बढ़ा दिया गया है । वर्णनों में दोला, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा, संध्या, चन्द्रोदय, प्रसाधन, पानकेलि, क्रीड़ा तथा प्रभात का विस्तृत वर्णन उल्लेखनीय है । साहित्य के इतिहास की दृष्टि से इस महाकाव्य का २५ वाँ सर्ग विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें एक कवि दरबार का अतीव रोचक तथा सजीव वर्णन है जिसका आयोजन कवि के भाई अलंकार ने (जो जयसिंह के मन्त्री भी थे) किया था । "इस वर्णन में हम उक्त सभा में उपस्थित विद्वानों का, उनकी विशेष योग्यताओं और अभिरुचियों का वास्तविक जीवन से लिया हुआ चित्र पाते हैं ।" प्राचीन भारत में कवि सम्मेलनों का आयोजन किस ढंग से किया जाता

था, इसकी एक सजीव एवं रोचक झाँकी मंख की इस कवि सभा में देखने को मिलती है। अपनी रचना की पूर्ति पर उसको अपने मित्रों को सुनाना ही इस प्रकार की सभा का उद्देश्य था। जिन विद्वानों ने इस सभा में भाग लिया उनकी संख्या ३० है। इसमें जल्हण [राजपुरी (राजौरी) के मन्त्री और कवि], तेजकण्ठ (कोंकण नरेश अपरादित्य के राजदूत) रूय्यक (प्रसिद्ध आलंकारिक तथा मंख के गुरु) तथा सुहल (कन्नौज के राजा गोविन्द चन्द्र के राजदूत) विशेष रूप उल्लेखनीय से हैं।

इसी (१२वीं) शताब्दी में एक और कवि जयरथ ने "हरचरित चिन्तामणि" की रचना की जो साहित्य की अपेक्षा धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें शिव संबंधी पौराणिक कथाओं तथा शैवमतावलम्बियों के आचार, नियमों और विश्वासों का विस्तृत वर्णन है।

उपदेशात्मक एवं व्यंयात्मक काव्य

काव्यशास्त्र के नियमों का अक्षरशः पालन करने वाले उपर्युक्त महाकाव्यों के लेखकों के अतिरिक्त कश्मीर में ऐसे भी प्रतिभा-सम्पन्न कवियों का जन्म हुआ जिन्होंने काव्यशास्त्र के नियमों की अवहेलना करके और घिसी-पिटी लीक को छोड़कर राजाओं और देवताओं के स्थान पर साधारण जन-जीवन को अपनी कविता का विषय बनाया। इनकी रचनाओं में जन-जीवन का जैसा सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया गया है वह अपने में एक विशेष महत्व रखता है। प्राचीन कश्मीर के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का परिचय प्राप्त करने के लिए इन रचनाओं का विशेष महत्व है। ये रचनाएं आधुनिक रुचि के अधिक अनुकूल हैं और वृहत्काय कृत्रिम महाकाव्यों के स्थान पर इन्हीं रचनाओं में पाठक की रुचि अधिक रमती है।

दामोदर गुप्त—समय की दृष्टि से इन रचनाओं में सर्वप्रथम रचना दामोदर गुप्त कृत "कुट्टिनीमत काव्यम्" है। यह सुन्दर कृति अपने विषय की महत्वपूर्ण रचना है और भारतीय वेश्यावृत्ति साहित्य का एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें एक प्रौढ़ा गणिका कंकाली, मालती नामक एक नौंची को विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से शिक्षा देती है कि कैसे कृत्रिम प्रेम और चाटुकारिता की समस्त कलाओं के प्रयोग से कामी जनों तथा धनी राजकुमारों से धन खींचना चाहिए। संस्कृत-नाटक-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें हर्षकृत 'रत्नावली' नाटक के अभिनय का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।

दामोदर गुप्त कल्हण के अनुसार कश्मीर के राजा जयापीड़ (७७९-८१३ ई०) के मन्त्री थे। वेश्यावृत्ति पर आधारित होने पर भी इस रचना ने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इसका प्रमाण मम्मट तथा रुय्यक की रचनाओं और सुभाषित ग्रन्थों से मिलता है जिनमें इस कृति के अनेक उद्धरण दिए गए हैं।

'कुट्टिनीमत काव्य' की भाषा तथा शैली अतीव सरल, सरस तथा रमणीय है। यत्र-तत्र आज जिसे हम अश्लीलता कहते हैं वह भी देखने को मिलती है पर इस प्रकार की रचनाओं में इसका होना अस्वाभाविक नहीं है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

श्रुणु सखी कौतुकमेकं
ग्राम्येण कुकामिना यदधकृतम् ।
सुरत सुखमीलिताक्षी
मृतेति भीतेन मुक्तास्मि ॥

"हे सखी ! एक कौतुक सुनो ! जो आज एक गंवार कुकामी ने किया ! सुरत सुख में जब मेरी आँखें बन्द हो गयीं, तो 'यह मर गयी हैं,' इस डर से उसने मुझे छोड़ दिया ।"

स्पष्टत: लेखक का उद्देश्य पाठकों को वेश्याओं की कपट चालों से अवगत कराना है ताकि वे उनके कपट-जाल में न फँसे ।

क्षेमेन्द्र—कदाचिद् "कुट्टिनीमत काव्य" से प्रभावित होकर ही कश्मीर के बहुशास्त्रज्ञ अलौकिक प्रतिभा से विभूषित तथा विभिन्न विषयों पर कुशलता से लेखनी चलाने वाले प्रख्यात कवि क्षेमेन्द्र ने अपनी "समयमातृका" की रचना की ! क्षेमेन्द्र का जीवन कश्मीर-नरेश अनन्त (१०२८-१०६३ ई०) तथा उसके सुपुत्र कलश (१०६३-१०९१ ई०) के राज्यकाल में व्यतीत हुआ । वे सिंधु के प्रपौत्र, निम्नाशय के पौत्र, प्रकाशेन्द्र के पुत्र तथा अभिनवगुप्त के, साहित्य शास्त्र में शिष्य थे । क्षेमेन्द्र का समय कश्मीर में राजनीतिक उथल पुथल, आर्थिक असंतोष तथा विकट चारित्रिक शिथिलता का युग था । क्षेमेन्द्र ने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा सामाजिक दुर्बलताओं को नंगा करने में, दम्भी लोगों के कृत्रिम आवरण को हटाने में तथा सन्यासियों, शिक्षा-सेवियों एवं उच्च चरित्र की डींग मारने वाले आचार्यों का असली रूप दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी । वस्तुत: क्षेमेन्द्र "अपने युग के अशान्त वातावरण से इतने असन्तुष्ट तथा मर्माहत थे कि उसे सुधारने में तथा उसे पवित्र और विशुद्ध बनाने के लिए और दुष्टता के स्थान पर शिष्टता की, स्वार्थ के स्थान पर परार्थ की की भावना को दृढ़ करने के निमित्त अपनी द्रुतगामिनी लेलनी को काव्य के नाना अंगों की रचना में लगाया ।" क्षेमेन्द्र राज दरबार की अपेक्षा जन-साधारण के कवि थे । उन्होंने समाज को निकट से, गम्भीर एवं पैनी दृष्टि से देखा था और समाज का कोई भी अंग उनकी सर्वव्यापी द्रष्टि से ओझल नहीं रहा था ।

'समयमातृका' के आठ अध्यायों में नियमित रूप से वेश्या का व्यवसाय अपनाने वाली एक नवयुवती कंकाली का वर्णन है । एक नापित उसका परिचय एक अनुभवी वृद्धा गणिका कलावती से कराता है जिसकी अनुभवी शिक्षा के फलस्वरूप वह युवती अपने व्यवसाय में दक्षता प्राप्त करती है और एक नवयुवक मूर्ख को तथा उसके मूर्ख माता पिता को ठगने में सफल होती है ।

क्षेमेन्द्र की एक और कृति 'कला विलास' भी एक अतीव रोचक रचना हैं । इसका विषय दम्भ है । इसमें दम्भी व्यक्तिमों के ऐसे सजीव चित्र प्रस्तुत किए गए हैं जो आज भी ऐसे ही यथार्थ हैं जैसे तत्कालीन समाज में थे । कवि एक ज्योतिषी का वर्णन करते हैं जो अपने ग्राहकों को उनके भविष्य की सभी बातें बताने का दम्भ भरता

है। आकाश में विशाखा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ कब संगम होगा इसका हिसाब लगाता है पर स्वयं वह यह नहीं जानता कि उसके पीठ पीछे उसकी पत्नी क्या कर रही है। यही स्थिति सनदी दवाइयों के उस विक्रेता की है जो ग्राहकों को अचूक चिकित्सा द्वारा उनका गंजापन दूर करने की पूरी प्रत्याभूति (गारंटी) देता है परन्तु ताँबे के पतीले के समान अपने सिर पर केश नहीं उगा पाता। कायस्थों (लिपिकों, क्लर्कों) का यह चित्र कितना सजीव तथा हृदयग्राही है—

कुटिला लिपिविन्यासा दृश्यन्ते
कालपाश संकाशाः।
कायस्थ भूर्ज शिखरे
भण्डललीना इव व्यालाः॥

"कायस्थों की लिखावट कुटिल होती है जिसको साधारण व्यक्ति पढ़ नहीं पाता। दृष्टि उसकी यमराज के पाशों जैसी क्रूर है। अपने भोज-पत्र की पुस्तकों (फाइल) के ढेर पर वह ऐसे बैठते हैं जैसे मण्डल में साँप।"

"देशोपदेश" और "नर्ममाला" क्षेमेन्द्र के व्यंग्य एवं उपदेश काव्य के सुन्दर निदर्शन हैं। इनमें उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के अतिथियों का अतीव प्रभावोत्पादक व्यंग्य-चित्र खींचा है। अतिथि को देखते ही कदर्य (कंजूस) का दिल घबरा जाता है। अतः वह अपनी पत्नी से बनावटी झगड़ा कर बैठता है और उपवास रख लेता है ताकि बेचारा अतिथि देहली पर पाँव धरते ही अन्दर आने का साहस न कर बाहर से ही मुँह-मोड़ कर चला जाए। गौड़ देश के छात्र उस समय के प्रधान एवं प्रख्यात अध्ययन केन्द्र कश्मीर में विद्योपार्जन हेतु आते हैं परन्तु यहाँ आजकल के मनचले विद्यार्थियों की तरह जघन्य कर्मों में समय नष्ट कर गली-गली में घूमते फिरते हैं। ओमकार का उच्चारण करने तथा स्वस्ति के लिखने तक की जिनकी प्रतिभा नहीं वे पतंजली के 'महाभाष्य' तथा तर्क एवं मीमाँसा को पढ़ने का दुस्साहस करते हैं। जब कश्मीर आते हैं तो सूखे कांटे की तरह उनका शरीर दुर्बल होता है पर कुछ ही दिनों में यहाँ की जलवायु के प्रभाव से और यहाँ के चावल, माँस और मछली खाकर इतने हृष्ट-पुष्ट बन जाते हैं कि सहपाठियों को भी उनकी भीषण आकृति से डर लगता है। थोड़ी सी बात पर कलह करके वे सहपाठियों का चाकू से पेट चीरने से भी डरते नहीं। काले मुँह तथा सफेद दातों से वे बिल्कुल बन्दर जैसे लगते हैं। गौड़ छात्रों के इस चित्रण में तत्कालीन छात्र-जीवन की एक मनोरम झांकी दिखलायी देती है। सातवें अध्याय (उपदेश) में एक वृद्ध सेठ का एक अल्पवयसी युवती के साथ विवाह का मार्मिक वर्णन है। इस प्रकार के अनमेल विवाह से तत्कालीन नारी का जीवन कितना दूभर और शोचनीय हो जाता था इसका सजीव तथा तथ्यपूर्ण चित्रण कवि ने इस उपदेश (अध्याय) में किया है। बेचारी युवती अपनी निकटतम सहेलियों से भी अपने पति का परिचय नहीं करा सकती। वृद्धपति पर दृष्टि पड़ते ही वह लज्जा का अनुभव करती

है और उसकी यह कहकर भर्त्सना करती है कि वह उसका पति नहीं अपितु पितामह (दादा) कहलाने के योग्य है। जब दैवयोग से उनका बच्चा पैदा होता है तो स्त्रियाँ व्यंग्य पूर्वक पति के सबल स्वास्थ्य की सराहना करती हैं और उसकी इन शब्दों में खिल्ली उड़ाती हैं कि 'घुन से जीर्ण और दग्ध वृक्ष में भी अंकुर फूट आया है—घुण जग्धस्य दग्धस्य तरोजीतोऽयमंकुरः।

"नर्ममाला" के तीन परिहासों में कायस्थ उपाधि धारी राजकीय अधिकारियों की काली करतूतों का वर्णन किया गया है। इन अधिकारियों में गृहकृत्याधिपति (गृह-मन्त्री), परिपालक (गवर्नर) चाक्रिक (खुफिया पुलिस) लेखकोपाध्याय (आफिस सुपरइण्टेण्डेंट) गंज दिविर (अर्थ मंत्री) ग्राम दिविर (पटवारी) आदि सम्मिलित हैं। कायस्थ अधिकारी के जीवन में महत्ती आकांक्षा होती है कि वह गृहकृत्याधिपति या गंजदिविर बने। इन पदों को पाते ही उसकी काया पलट जाती है। कुत्सित विधियों से कमाए गए धन से न केवल उसमें अपितु उसकी पत्नी के चरित्र में भी गिरावट आ जाती है। वह सायं-प्रातः यही प्रार्थना करती रहती है कि उसका पति सदा दौरे पर रहे ताकि वह अपने प्रेमियों के साथ रंग-रलियां मना सके। यदि दुर्भाग्य से पति घर में ही बैठ जाता है तो वह भीषण रोग से ग्रस्त होने का बहाना बनाती है। जब भी वह दौरे पर होता है तो भारी मात्रा में घी, शहद, शाली, मसाले, पशु, पालतू पक्षी, फल तथा घर में काम आने वाली अनेक वस्तुएँ बेगार में लगाए गए कुलियों के द्वारा भेजता रहता है। कवि ने बताया है यौवन भले ही ऐश्वर्य में बीत जाए पर कायस्थ का अन्त नितांत शोचनीय होता है।

इस प्रकार समाज के विभिन्न वर्गों के सजीव तथा प्रभावोत्पादक चित्र खींचने में क्षेमेन्द्र की प्रतिभा निश्चय ही अलौकिक एवं तीक्ष्ण है। संस्कृत साहित्य में एक विशिष्ट काव्य प्रकार की उद्भावना करने के कारण तथा अपनी सभी रचनाओं में अक्षुण्ण मौलिकता का परिचय देने के कारण क्षेमेन्द्र प्रशंसा के पात्र बन गए हैं।

क्षेमेन्द्र की एतद्‌विषयक अन्य रचनाओं में "दर्प दलन", "सेव्य-सेवकोपदेश", "चारुचर्या शतक" उल्लेखनीय हैं। "दर्प दलन" के सात खण्डों में उच्चकुल 'धन, विद्या, सुन्दरता, साहस, दान अथवा वैराग्य के गर्व की मूर्खता का चित्रण किया गया है। "सेव्यसेवकोपदेश" में ६१ पद्यों में सेवकों और उनके स्वामियों के सम्बन्ध में शिक्षा दी गई है। "चारुचर्या शतक" में विभिन्न कथाओं और आख्यानों के माध्यम से सद्-व्यवहार के नियमों को समझाया गया है।

मंजरी-त्रय

क्षेमेन्द्र की अन्य रचनाओं में उनकी तीन मञ्जरियां—रामायण मञ्जरी, महाभारत मञ्जरी तथा बृहत्कथा मञ्जरी विशेष महत्वपूर्ण हैं। रामायण तथा महाभारत मञ्जरी में कवि ने रामायण तथा महाभारत का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है। संक्षेप इतनी कुशलता से किया गया है कि मूल-ग्रन्थों का कोई भी महत्वपूर्ण अंश छूट नहीं

पाया है। स्पष्टतः इन ग्रन्थों की रचना लोकोपकार की भावना से उन साधारण व्यक्तिओं के लिए की गई है जिन्हें मूल वृहत्काय ग्रन्थ पढ़ने का अवकाश नहीं मिलता। वृहत्कथा मञ्जरी का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व है। राजा शालिवाहन के सभा-कवि गुणाढ्य ने पैषाची भाषा में वृहत्कथा नामक कथा-समुच्चय का निर्माण किया था जिसकी ख्याति शीघ्र ही भारत से बाहर कम्बोज (कम्बोडिया) आदि देशों में भी फैल गयी। परन्तु यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ लुप्त हो चुका है। क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मञ्जरी ने इस महान् क्षति को बहुत हद तक पूरा किया है। इसमें वत्सराज उदयन के पुत्र नरवाहन दत्त के साहसिक उपक्रमों का रोचक एवं मार्मिक वर्णन है, जिनके फलस्वरूप वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करके अपनी प्रेयसी मदन मञ्जुका तथा विद्याधरों का चक्र-वर्तित्व प्राप्त करता है। इस मुख्य कथा को पुष्ट करने के लिए अनेक अवान्तर कथायें भी जोड़ दी गई हैं जिनमें 'वैताल-पञ्चविंशति' (वैताल-पच्चीसी) प्रमुख हैं। विशेष स्थलों पर क्षेमेन्द्र ने हृदयावर्जक देवी-देवताओं की भव्य स्तुतियों से इसे विभूषित किया है। इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने मूल ग्रन्थ का भव्य अनुवाद प्रस्तुत किया है, परन्तु यह कहना कठिन है कि क्षेमेन्द्र की रचना में मूल-कथानक की कितनी रक्षा हुई है।

सोमदेव-कथासरित्सागर—लुप्त वृहत्कथा का संस्कृत अनुवाद एक और कश्मीरी कवि सोमदेव ने किया है जो क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। क्षेमेन्द्र के अनुवाद से सोमदेव का अनुवाद अधिक लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध है। कलेवर में यह क्षेमेन्द्र की रचना से तिगुना है और इसमें ७५०० श्लोक हैं। सोमदेव ने अपने अनुवाद "कथासरित्सागर" में कथानक की रक्षा का श्लाघनीय प्रयास किया है। यही कारण है कि इसमें काव्य सम्बन्धी वाह्याडम्बर अत्यल्प हैं।

फारसी रचनाओं पर आधारित संस्कृत काव्य

कश्मीर में मुसलमान शासन के प्रतिष्ठान के बाद यहाँ फारसी राजकीय भाषा बनी और तत्कालीन प्रतिभा-सम्पन्न संस्कृत कवियों ने भी शीघ्र ही फारसी की शिक्षा को ग्रहण कर फारसी काव्य का गम्भीर अध्ययन किया और फारसी कथानकों पर आधारित कई महत्वपूर्ण संस्कृत काव्यों की रचना की ! सोलहवीं शताब्दी में श्रीवर ने फारसी स्रोत पर आधारित पन्द्रह सर्गों वाले एक महाकाव्य की रचना की जिसका नाम "कथा कौतुक" है। इस काव्य की रचना कवि के आश्रयदाता सुल्तान मुहम्मद शाह के सम्मान में सन् १५०५ ई० में की गई। इसमें मुल्ला जामी द्वारा रचित यूपुफ और जुलैखा की प्रणय-कथा का रोचक वणंन है। फारसी स्रोत पर ही आधारित भट्ट आह्लादक कृत "देला राम कथा सार" है। कविता का विषय किसी मुसलमान कवि की रचना से लिया गया है। काव्य में तेरह सर्ग हैं और इसका आरम्भ तत्कालीन शासक सुल्तान मुहम्मद शाह की एक कथा से ही किया गया है।

दर्शन साहित्य

(१) **बौद्ध साहित्य**—चीन, मध्य-एशिया तथा तिब्बत में उपलब्ध अनेक बौद्ध-

दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि पाली त्रिपिटक के साथ-साथ संस्कृत त्रिपिटक की भी रचना हुई क्योंकि उक्त प्रदेशों से प्राप्त ग्रन्थ पाली की अपेक्षा उन संस्कृत-मूल ग्रन्थों के ही अनुवाद हैं जो अब लगभग नष्ट हो चुके हैं। बौद्ध धर्म के संस्कृत धर्माम्नाय का स्थल प्रायः कश्मीर ही माना जाता है जो प्राचीन काल में बौद्धधर्म तथा बौद्ध-साहित्य का प्रधान केन्द्र रहा था और जहाँ पर दूर-दूर से बौद्ध भिक्षु बौद्ध-दर्शन तथा बौद्ध-साहित्य का अध्ययन करने के लिए प्रचुर संख्या में आते थे मध्य-एशिया और चीन में बौद्ध-दर्शन एवं साहित्य का प्रचार करने का श्रेय कुमारजीव, धर्मत्रात जैसे विद्वानों को है जिन्होंने कश्मीर में ही बौद्ध-दर्शन एवं साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था। परन्तु खेद का विषय है कि जहाँ कश्मीर में रचित मूल ग्रन्थों के अनुवाद प्रचुर मात्रा में उपर्युक्त प्रदेशों में सुरक्षित हैं वहाँ कश्मीर घाटी में अभी तक एक भी मौलिक बौद्ध-दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।[1] जो बौद्ध-धर्म संबंधी ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं उनमें अधिकाँश बौद्ध कथाओं पर आधारित संस्कृत काव्य हैं जिनका बौद्ध-दर्शन के साहित्य की दृष्टि से कोई महत्व नहीं। इनमें शिव स्वामी कृत "कप्फणाभ्युदय" और क्षेमेन्द्र कृत "बोधिसत्वावदानकल्पलता" उल्लेखनीय हैं। शिव स्वामी अवन्ति वर्मा के समकालीन थे। "कप्फणाभ्युदय" अवदान शतक में वर्णित 'कपिकण' के आख्यान पर आधारित है। दक्षिण देश के राजा कप्फण ने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित को युद्ध में परास्त किया। प्रसेनजित बुद्ध की शरण में आ गए और स्वयं प्रकट होकर बुद्ध ने कप्फण को पराजित किया। अन्त में कप्फण भी बुद्ध की शरण में आ गए और उनके धर्मानुयायी बन गए। इस संक्षिप्त कथानक का वर्णन शिव स्वामी ने २० सर्गों में किया है। कृत्रिम महाकाव्यों की तरह शिवस्वामी ने भी विभिन्न वर्णनों के समावेश से ग्रन्थ का कलेवर बढ़ा कर उसे काव्य-शास्त्रीय नियम-सम्मत महाकाव्य का रूप दिया है।

शिवस्वामी कश्मीर के उस युग के प्रतिनिधि हैं जब यहाँ सर्वधर्म समभाव की भावना चरम स्तर पर थी। विभिन्न मतावलम्बियों में वैर या वैमनस्य की कोई भावना न थी। यही कारण है कि स्वयं शैवमत का अनुयायी होने पर भी शिव स्वामी ने अपने महाकाव्य के लिए बौद्ध विषय चुना और कलात्मक ढंग से इसे अपने महाकाव्य में परिष्कृत रूप प्रदान किया।

"बोधिसत्वावदान कल्पलता" भी इसी धार्मिक उदारता का एक और ज्वलन्त उदाहरण है। इसकी रचना वैष्णव मतावलम्बी क्षेमेन्द्र ने राजा अनन्त के राज्यकाल में की। इसमें भगवान बुद्ध के प्राचीन जन्मों से सम्बद्ध पारमिता सूचक आख्यानों का पद्यबद्ध वर्णन है। हीनयान सम्प्रदाय के जातकों के समान ही महायान अवदानों में महात्मा बुद्ध के पूर्व-जन्म की कथाओं का वर्णन किया गया है और इनमें दान, शील, क्षमा, प्रज्ञा आदि छः पारमिताओं का निर्देश दिया गया है जिनको प्राप्त कर ही बौद्ध भिक्षु बोधिसत्व की उच्च पदवी पर पहुंच सकता है। क्षेमेन्द्र की इस रचना में १०८

---

१. सिकन्दर बुतशिकन के समय में अनेकानेक संस्कृत पाण्डुलियाँ भस्म कर दी गई थीं। —सम्पादक

पल्लव (कथायें) हैं जिनमें अन्तिम पल्लव की रचना क्षेमेन्द्र की मृत्यु हो जाने पर उनके पुत्र सोमेन्द्र ने की। बौद्ध-धर्म का अनुयायी न होने पर भी क्षेमेन्द्र की यह रचना शीघ्र ही इतनी लोकप्रिय हो गयी कि रचना के डेढ़ सौ वर्ष के भीतर ही इसका तिब्बती भाषा में अनुवाद हो गया।

कश्मीर के सुदूर उत्तर पश्चिम में गिलगित के स्थान पर एक स्तूप के नीचे बहुमूल्य हस्तलिखित बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं जिनका उत्तरकालीन बौद्ध साहित्य में विशेष महत्व है। इन ग्रन्थों में कुछ सूत्र तथा धारणियाँ हैं। धारणियों के उच्चारण से भिक्षु कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। बौद्ध-धर्म के धारणी-साहित्य में इनका विशेष महत्त्व है। ग्रन्थों की रचना लिपि के आधार पर ७ वीं शताब्दी में की गई प्रतीत होती है।

(२) **शैव दर्शन**—नवमी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कश्मीर में शैवधर्म के एक नए दर्शन का जन्म हुआ जो त्रिक दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। यह दर्शन मूलरूप में अद्वैतवादी है और अपने मूल सिद्धान्तों में शैय-दर्शन सम्बन्धी अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों से भिन्नता रखता है। इस दर्शन का मूल-स्रोत शिव सूत्र हैं जिसकी रचना स्वयं शिव जी द्वारा की गई बतायी जाती है। कालान्तर में ये सूत्र एक साधक वसुगुप्त पर स्वयं शिवजी द्वारा प्रकट किए गए। वसु गुप्तका आविर्भाव नवमी शताब्दी में हुआ।

इस दर्शन के प्रधान व्याख्याकर्त्ता कल्लट और सोमानन्द हैं जो वसुगुप्त के शिष्य थे। कल्लट (जो अवन्ति वर्मा के समकालीन थे) ने **स्पन्द सूत्रों** अथवा **स्पन्द कारिकाओं** की रचना की जिनमें उन्होंने सर्वप्रथम शिवसूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की। स्पन्द सूत्रों पर कल्लट ने स्वयं एक वृत्ति लिखी। स्पन्द सूत्र और वृत्ति दोनों "**स्पन्द-सर्वस्व**" के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध टीकाकार क्षेमराज ने भी स्पन्द सूत्रों पर "**स्पन्द-सन्दोह**" तथा "स्पन्द-निर्णय" नाम की दो टीकाएँ लिखी हैं। स्पन्द सूत्रों पर अन्य टीकाएँ "**विवृति**" व "**प्रदीपिका**" हैं जिनके रचयिता क्रमशः रामकंठ व उत्पलदेव हैं।

शिव सूत्रों पर भी कई स्वतन्त्र टीकाएँ उपलब्ध हुई हैं। इनमें क्षेमराज की "**शिवसूत्र विमर्शिनी**" उल्लेखनीय है। शिवसूत्रों पर ही एक और टीका "**शिवसूत्र-वृत्ति**" है जिसके रचयिता अज्ञात हैं। क्षेमराज की 'विमर्शिनी' में इस वृत्ति का अक्षरशः समावेश किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी में भास्कर नाम के आचार्य ने शिवसूत्रों पर "**शिवसूत्र-वार्त्तिक**" के नाम से एक और टीका लिखी !

सोमानन्द ने ही सर्वप्रथम कश्मीर के इस सम्प्रदाय को दार्शनिकता प्रदान की और विभिन्न तर्कों के आधार पर इसे एक विशिष्ट दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया। सोमानन्द द्वारा प्रतिपादित यह दर्शन '**प्रत्यभिज्ञा दर्शन**' या '**प्रत्यभिज्ञा शास्त्र**' के नाम से प्रसिद्ध हुआ ; क्योंकि अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए इसमें 'प्रत्यभिज्ञा' को आधार रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन साहित्य का प्रथम ग्रन्थ '**शिवदृष्टि**' है जिसके रचयिता स्वयं सोमानन्द हैं। यह ग्रन्थ अपने सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। इसके केवल प्रथम तीन

आह्निक और चतुर्थ के कुछ, खण्डित अंश ही प्राप्त हुए हैं। सोमानन्द ने स्वयं 'शिव-दृष्टि' पर एक टीका लिखी थी जो अब, अप्राप्य है।

सोमानन्द के अनन्तर उनके शिष्य उत्पल देव ने इस सम्प्रदाय के एक और महत्वपूर्ण ग्रन्थ "ईश्वर प्रत्यभिज्ञा" की रचना की जिसमें उन्होंने सोमानन्द के सिद्धान्तों का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित विवरण प्रस्तुत किया।

प्रत्यभिज्ञासूत्रों पर कई टीकाएँ लिखी गई हैं जिनमें उत्पल देव की वृत्ति, अभिनवगुप्त की 'प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी' (लाध्वी वृत्ति) तथा 'प्रत्यभिज्ञा विवृति विमर्शिनी' (वृहती वृत्ति) उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रथम दो अप्राप्य हैं।

शैव-दर्शन से सम्बद्ध एक और प्रमुख रचना है जो सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है, वह बहुशास्त्रज्ञ आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित "तन्त्रालोक" है जिसमें कश्मीर के शैव-दर्शन सम्बन्धी सभी सिद्धांतों की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है।

अभिनवगुप्त की शैवदर्शन सम्बन्धी अन्य रचनाओं में "परात्रिंशिका विवरण" "तन्त्रसार", "परमार्थ सार", तथा "मालिनी विजय वार्त्तिक" उल्लेखनीय हैं।

परवर्ती शताब्दियों में शैव-दर्शन के आरम्भिक आचार्यों के कार्य को जिन आचार्यों ने आगे बढ़ाया उनमें क्षेमराज, योगराज, जयरथ तथा शितोपाध्याय प्रमुख हैं। क्षेमराज (जो अभिनवगुप्त के शिष्य थे) ने उल्लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण ग्रन्थ "प्रत्यभिज्ञाहृदयम्" की रचना की जिसमें प्रत्यभिज्ञा के सिद्धान्तों की अतीव सरलता तथा गम्भीरता से व्याख्या की गई है। योगराज ने जो क्षेमराज के शिष्य थे, अपने गुरु की कृति 'परमार्थ सार' पर और जयरथ ने 'तन्त्रालोक' पर टीकाएँ लिखीं। शिवस्वामी ने जो अठारहवीं शताब्दी में हुए, अपनी टीका में "विज्ञान-भैरव-तन्त्र" की व्याख्या की है।

इस संक्षिप्त से लेख में हमने गागर में सागर भरने का भरसक प्रयास किया। परन्तु कश्मीर का संस्कृत-साहित्य इतना विपुल तथा विशाल है कि एक छोटे से लेख में उसके सभी अंगों का परिशीलन असम्भव है। इसके निम्नलिखित अंग शेष रह जाते हैं :—

१. वैष्णव धर्म सम्बन्धी साहित्य। २. वेदान्त तथा न्याय-दर्शन साहित्य।
३. पौराणिक साहित्य। ४. महात्म्य-साहित्य।
५. शास्त्रीय साहित्य (Scientific Literature) ६. अप्रकाशित साहित्य।

इनमें से प्रथम तीन का परिचय तो अधिकांश विद्वानों को है परन्तु मेरा अनुमान है कि अन्तिम तीन के विषय में बहुत ही कम लोगों को बहुत ही कम जानकारी होगी। अपने शोधकार्य के दीर्घ-काल में एतद् विषयक पर्याप्त सामग्री मेरे पास एकत्रित हो गई है, जिसे शीघ्र-भविष्य में पुस्तकाकार प्रकाशित कराऊँगा तथा यदि सम्भव हुआ तो उन पर फुटकर लेख भी लिखूँगा।

कश्मीरी भाषा और नागरी लिपि

डा० शशिशेखर तोषखानी
सूचना विभाग, ज० क० सरकार, श्रीनगर।

कश्मीर की अपनी पारम्परिक लिपि शारदा रही है जिसमें इस भाषा का प्रारम्भिक साहित्य लिखा गया है। आठवीं शताब्दी के आसपास विकसित यह लिपि कश्मीर में मुस्लिम शासन की स्थापना के बहुत काल बाद तक व्यवहृत होती रही। १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुल्तान जैन-उल-आबिदीन ने फारसी को कश्मीर की राजभाषा घोषित किया और फारसी-अरबी लिपि के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के विशेष प्रयत्न किये फिर भी शारदा लिपि १७ वीं शताब्दी तक हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के द्वारा व्यवहृत होती रही। **श्रीनगर तथा उसके आसपास मिलीं कुछ कब्रें इसका प्रमाण हैं जिनपर फारसी-अरबी लिपि के साथ-साथ शारदा लिपि में भी लिखा गया है।** श्रीनगर के संग्रहालय में ऐसे कुछ वसीयतनामे तथा विक्री-पत्र सुरक्षित हैं जो फारसी तथा शारदा दोनों लिपियों में लिखे गये हैं। इनमें से एक आलेख का सम्बन्ध प्रसिद्ध कश्मीरी संत शेख मख्दूम हव्ज़ा से है। फिर भी यह सत्य है कि १६वीं शताब्दी के बाद से कश्मीर के मुसलमान साहित्यकारों ने अपनी कृतियाँ फारसी-लिपि में लिखना प्रारम्भ किया और शारदा का प्रभाव-क्षेत्र सिमटता गया। १६वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते शारदा केवल हिन्दुओं, बल्कि हिन्दुओं के भी एक वर्ग पुरोहितों, द्वारा पोथी-पत्रे लिखने तक सीमित रह गयी।

शारदा लिपि की विशिष्टताओं और कश्मीरी लिखने के लिए उसकी उपयुक्तता की चर्चा करते हुए ग्रियर्सन ने उसे "कश्मीरी भाषा के वास्तविक तथ्यों के अनुकूल" माना है तथा इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित किया है इसमें विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियों के लिए चिह्न विद्यमान हैं। यद्यपि कश्मीरी की सभी स्वर-ध्वनियों को शारदा व्यक्त नहीं करती, पर पदान्त में आये 'मात्रा-स्वरों' को हलन्त-चिह्न के प्रयोग द्वारा, उनकी उपस्थिति के कारण हुए पूर्ववर्ती स्वरों में परिवर्तन को खड़ी रेखा के प्रयोग द्वारा दर्शाने की व्यवस्था शारदा अनुलेखन पद्धति में थी। इसके अतिरिक्त कश्मीरी की विशिष्ट व्यंजन-ध्वनियों च़, छ़, और ज़ को क्रमशः च, छ और ज के नीचे बिन्दी लगाकर व्यक्त किया जाता था। कश्मीरी ध्वनियों को व्यक्त करने की उस क्षमता के बावजूद शारदा को जिन कारणों के पीछे हटना पड़ा वे ऐतिहासिक और

राजनैतिक थे। यह कश्मीरी भाषा का दुर्भाग्य था कि उसकी लिपि को धर्म से सम्बद्ध करके देखा गया और एक परम्परागत लिपि का उपयोग बन्द कर दिया गया, इससे कश्मीरी भाषा और साहित्य को कितनी क्षति पहुँची है उसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि १९४७ तक कश्मीरी में गद्य का विकास ही न हो सका।

पादरी विलियम केरी द्वारा सेरामपुर मिशन से प्रकाशित बाइबल का कश्मीरी अनुवाद संभवतः शारदा लिपि में लिखा गया अन्तिम कश्मीरी ग्रन्थ है। इसके बाद कश्मीरी पंडितों ने अपनी भाषा को नागरी अक्षरों में लिखना शुरू किया। इसमें उन्हें विशेष सुविधा महसूस हुई क्योंकि शारदा और नागरी लेखन-पद्धति में काफी समानता है। कश्मीरी भाषा के लिये नागरी लिपि के प्रयोग का सबसे पहला उपलब्ध नमूना है अमरकोश की कश्मीरी टीका जिसकी पांडुलिपि जार्ज बूहलर को बीकानेर से प्राप्त हुई थी। टीका की भाषा कश्मीरी है और लिपि नागरी। यह पांडुलिपि आज भंडारकर शोध-संस्थान, पूना में सुरक्षित है। इसकी तिथि का पता तो नहीं चला है, पर अनुमानतः यह अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की होगी। शारदा अनुलेखन पद्धति के अनुरूप नागरी में कश्मीरी ध्वनियों को व्यक्त करने का प्रथम प्रयास किया पं० ईश्वर कौल ने, १९वीं शताब्दी के अन्त में। उन्होंने पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' के ढंग पर कश्मीरी भाषा के प्रथम व्याकरण तथा 'कश्मीरी 'शब्दामृत' के नाम से कश्मीरी के प्रथम शब्दकोश की रचना नागरी अक्षरों में की। पं० ईश्वर कौल ने अनुलेखन पद्धति में सुधार किया और वर्तनी में एकरूपता लाने का भी प्रयास किया। पं० आनन्द कौल बामज़ई ने भी पं० ईश्वर कौल द्वारा प्रयुक्त शारदा अनुलेखन पद्धति का अनुकरण किया।

कश्मीरी भाषा के लिए नागरी लिपि का प्रथम ध्वनि-विज्ञान-सम्मत रूपान्तरण किया प्रो० श्रीकण्ठ तोषखानी ने।

प्रो० तोषखानी ने इस लिपि में १९२८-२९ से लेकर १९३२-३३ तक, स्त्रियों में साक्षरता का प्रचार करने हेतु, अनेक पुस्तकें लिखीं जो उनके ही द्वारा स्थापित वीमेंन्स वेलफेयर ट्रस्ट के आधीन चल रहे स्कूलों में कई वर्ष तक पढ़ायी जाती रहीं। कश्मीर के स्कूलों में कश्मीरी के माध्यम से विविध विषयों की शिक्षा देने का यह पहला प्रयोग था जिसे आज तक दोहराया नहीं गया। प्रो० तोषखानी द्वारा संशोधित नागरी लिपि में लल्लेश्वरी श्रीकृष्ण राज़दान आदि कश्मीरी के प्रसिद्ध संत और भक्त कवियों की चुनी हुई रचनाएँ भी प्रकाशित हुईं। इसके अतिरिक्त १९२९-३० में लाहौर से, प्रवासी कश्मीरी पंडितों की ओर से, प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'बहार-ए-कश्मीर' का कश्मीरी भाग भी इसी लिपि में छपता रहा। वर्तमान युग के प्रसिद्ध कश्मीरी कवि पं० ज़िन्दा कौल 'मास्टरजी' ने भी इसी संशोधित नागरी लिपि में 'परमानन्द सूक्ति-सार' शीर्षक से १९वीं शताब्दी के महान् कश्मीरी भक्त कवि परमानन्द की चुनी हुई काव्य रचनाएँ प्रकाशित कीं। स्वयं अपनी (साहित्य अकादेमी पुरस्कार-प्राप्त) काव्य-कृति 'स्मरण' के लिये भी 'मास्टरजी' ने नागरी लिपि का प्रयोग किया, यद्यपि

यह कृति बाद में फारसी लिपि में भी प्रकाशित की गयी। नागरी लिपि में कश्मीरी लिखे जाने के ये प्रयास आज तक छुटपुट रूप में जारी हैं, यद्यपि सरकार की ओर से इन्हें कभी कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। इस दिशा में अनेक साहित्यिक संस्थाओं तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने 'वितस्ता' के माध्यम ने सराहनीय कार्य किया है।[1]

कश्मीर की सरकारी मान्यता प्राप्त लिपि है संशोधित फ़ारसी-अरबी लिपि जिसका प्रयोग राज्य सांस्कृतिक अकादमी की स्थापना के बाद १९५९-६० के लगभग शुरू हुआ। इससे पूर्व शेख अब्दुल्ला के प्रथम शासनकाल में, (१९५१-५२) में संशोधित अरबी लिपि के प्रयोग का प्रयास किया गया जो उसकी जटिलता के कारण विफल रहा। अनेक सुधारों, संशोधनों के बावजूद वर्तमान सरकारी लिपि भी काफी जटिल है। हाँ, कश्मीरी ध्वनियों के लिखित और उच्चारित रूप में जो अन्तर था वह नागरी स्वर-पद्धति को ग्रहण करने से कुछ कम अवश्य हो गया है। पर अब भी उसे पढ़ने में सामान्य पाठक को काफी दिक्कत होती है। पाठक को क्या स्वयं लेखक भी केवल अपना लिखा ही आसानी से पढ़ पाते हैं। इसका कारण यह है ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से फ़ारसी एक अत्यन्त कमज़ोर और अक्षम लिपि है। **कश्मीरी की जटिल स्वर-ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता तो दूर, फ़ारसी लिपि द्वारा कश्मीरी लोग खुद उर्दू का सही उच्चारण सीख नहीं पाये हैं।** यहाँ तक कि कश्मीर के अनेक ख्याति और पुरस्कार प्राप्त उर्दू लेखकों तथा पत्रकारों आदि को भी आप 'बछड़े' के स्थान पर 'बिछड़ा,' 'दुखती आँखों' के स्थान पर 'दिखती आँसू', 'दो टूक' के स्थान पर 'दो टोक', 'लू' के स्थान पर 'ली' आदि कहते पायेंगे। फिर भी लिपि के प्रश्न को केवल संकुचित साम्प्रदायिक दृष्टि से देखने के आदी लोग, फ़ारसी लिपि की अशक्तताओं को बिल्कुल अनदेखा कर देते हैं। इस लिपि के समर्थकों का कहना है कि संशोधित फ़ारसी लिपि को सरकारी मान्यता मिलने के कारण अब कश्मीरी भाषा के लिये लिपि की समस्या हमेशा के लिए हल हो चुकी है। जब नागरी या रोमन लिपि को वैकल्पिक लिपियों के रूप में प्रयुक्त करने की बात की जाती है तो ये लोग कहते हैं कि फ़ारसी कश्मीर में सबसे अधिक व्यवहृत लिपि है अतः कश्मीरी के लिए किसी अन्य लिपि की बात सोचना कश्मीरी भाषा और साहिप्य की प्रगति में रोड़े अटकाना और एक तय हो चुके सवाल को फिर से उठाना है। लेकिन क्या वस्तुतः सरकारी मान्यता-प्राप्त लिपि के कारण कश्मीरी भाषा और साहित्य ने विशेष प्रगति की है? आज स्वतन्त्रता-प्राप्ति

---

१. अति प्राचीन काल से लेकर अधुनातम सभी जाने-माने साहित्यकारों की कश्मीरी कृतियों को देवनागरी में रूपान्तरित करने और कश्मीरी भाषा पर विशिष्ट शोध-कार्य करने की दिशा में ६० विशेष प्रबन्धों (डिसर्टेशन्स) तथा आठ (पीएच० डी०) शोध-प्रबन्धों का प्रणयन विभाग में किया गया है। 'रूपभवानी रहस्योपदेश' का सम्पादन भी विभाग में किया गया और वह देवनागरी में प्रकाशित अधुनातम कश्मीरी ग्रन्थ है। —सम्पादक

के तीस वर्ष बाद भी कश्मीरी किसी भी स्तर पर शिक्षा का माध्यम नहीं है न स्कूलों-कालेजों में एक विषय के रूप में पढ़ायी जाती है। कश्मीर विश्वविद्यालय में कश्मीरी विभाग अवश्य स्थापित किया गया है, लेकिन मात्र एक शोध विभाग के रूप में।

यह ठीक है कि सरकारी लिपि के कारण, कश्मीरी लिखने में कुछ सीमा तक एकरूपता आ गयी है। यह भी ठीक है कि कश्मीरी भाषा में पुस्तकें लिखी जा रही हैं और उनमें से अनेक पर स्थानीय सांस्कृतिक अकादेमी अथवा साहित्य अकादेमी के पुरस्कार भी दिये जाते हैं, लेकिन इन पुस्तकों को पढ़ता कौन है? कश्मीरी साहित्य का पाठक वर्ग है कहाँ? लेखक किताबें छापते हैं और अपनी मित्रमण्डली में बाँटते है। फिर आधुनिक विचारों को वहन करने में सक्षम गद्य का कश्मीरी में अभी तक घोर अभाव है। जहाँ तक पत्र-पत्रिकाओं का सवाल है कश्मीरी में इक्की-दुक्की जो पत्रिकायें छपीं, वे अल्पजीवी रही हैं। इस समय केवल एक कश्मीरी पत्रिका प्रकाशित हो रही है, स्थानीय सांस्कृतिक अकादेमी द्वारा प्रकाशित 'शीराज़', और वह भी अनियमित रूप से छपती है। पिछले कुछ वर्षों में दो-एक लेखकों ने पत्रिकाएँ निकालने के प्रयास अवश्य किये, पर पाठकों के अभाव में वे अल्प-समय में ही दम तोड़ गयीं। इनमें से 'कॉशुर अदब' नाम की पत्रिका को चित्रकार लेखक गुलाम रसूल संतोष ने पिछले वर्ष पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था, पर एक-दो अंक निकलने के बाद वह फिर ठप्प हो गयी। इन सबके लिए केवल लिपि की जटिलता को ही उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, पर इस तथ्य से आँखें चुराने से भी काम नहीं चलेगा कि वह एक प्रमुख कारण है।

जहाँ तक कश्मीरी की सरकारी फ़ारसी-अरबी लिपि के प्रयोग का प्रश्न है, किसी को उस पर एतराज़ नहीं होना चाहिए—यदि कश्मीरी के लेखक उसे एक उपयुक्त लिपि मानते हैं तो अच्छी बात है। पर इस लिपि की ओट में जो राजनीति चल रही है, वह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। एक वैकल्पिक अथवा जोड़ लिपि के रूप में नागरी के प्रयोग की चर्चा तक सरकारी मान्यता प्राप्त लिपि के समर्थकों को क्यों सह्य नहीं? १९७२ में श्रीनगर में कॉशुर कल्चरल मर्कज़ नामक संस्था की ओर से आयोजित कश्मीरी लेखकों के एक सम्मेलन में जब दिल्ली में रहने वाले एक कश्मीरी कवि ने इस आशय का प्रस्ताव रखा कि नागरी को कश्मीरी की एक वैकल्पिक लिपि के रूप में मान्यता दी जाए तो साहित्य अकादमी-पुरस्कार प्राप्त एक 'विद्वान्'—प्रो० महीउद्दीन हाजनी साहब इतना बिगड़े कि उन्हें 'ग़द्दार' तक कह दिया।

लेकिन नागरी का कश्मीरी के लिये एक वैकल्पिक या अतिरिक्त लिपि के रूप में प्रयोग करने की माँग वास्तविक समस्याओं पर आधारित है। नागरी का एक वैकल्पिक लिपि के रूप में प्रयोग उन गैर-कश्मीरियों के लिए भी अधिक सुविधाजनक रहेगा जो कश्मीरी भाषा सीखने के इच्छुक हों या कश्मीरी साहित्य के विषय में जानना चाहते हों। लेकिन सरकारी मान्यता-प्राप्त फ़ारसी-अरबी लिपि के समर्थक इस प्रकार की बात से भी भड़क उठते हैं। इस विषय में उनका यह तर्क है कि जो कश्मीरी भाषा

सीखने के इच्छुक हों, उन्हें फ़ारसी लिपि भी सीख लेनी चाहिए। ये लोग कश्मीरी ध्वनियों को व्यक्त कर सकने में फ़ारसी लिपि की अक्षमताओं को और इस कारण एक ग़ैर-कश्मीरी के लिए पैदा होने वाली कठिनाइयों को बिल्कुल नज़र-अन्दाज़ कर देते हैं।

फ़ारसी-अरबी लिपि के इन समर्थकों की राजनीतिक दोहरी चाल का आश्रय लेती है। एक ओर यह तर्क दिया जाता है कि कश्मीर घाटी में (उर्दू के लिए) व्यापक रूप से व्यवहृत होने के कारण यही लिपि कश्मीरी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त लिपि है। दूसरी ओर से यह माँग की जाती है कि डोगरी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के लिए भी उनकी मान्य लिपियों के अतिरिक्त फ़ारसी-लिपि को एक अतिरिक्त लिपि के रूप में स्वीकार किया जाए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद डोगरी लेखकों और साहित्य-प्रेमियों ने सर्वसम्मति से यह निश्चित किया कि परम्परागत टाकरी लिपि के स्थान पर डोगरी नागरी अक्षरों में लिखी जाए। डोगरी के लिए नागरी लिपि का यह प्रयोग इतना सफल रहा कि प्रति वर्ष हज़ारों व्यक्ति इस लिपि के माध्यम से डोगरी की परीक्षाएँ दे रहे हैं। इसके विपरीत कश्मीरी की परीक्षाओं में बैठने वालों की संख्या इतनी थोड़ी रहती है कि उन्हें बन्द भी कर दिया जाए तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा; लेकिन इसके बावजूद यह आवाज़ उठायी गयी कि उन लोगों की सुविधा के लिए जो जम्मू में नागरी लिपि से परिचित नहीं, यह विकल्प रखा जाए कि वे डोगरी के लिए फारसी (उर्दू) लिपि का प्रयोग करें। कहना न होगा कि उनकी कह माँग स्वीकृत की गयी है, यद्यपि ऐसे व्यक्तियों की संख्या दो-चार से अधिक नहीं होगी। इसी प्रकार पंजाबी के लिए गुरमुखी के अतिरिक्त फ़ारसी लिपि को मान्यता दिलायी गयी। इधर लद्दाख़ी के लिए भी शताब्दियों से प्रयुक्त बोधि (तिब्बती) लिपि के साथ-साथ फ़ारसी को भी एक अतिरिक्त लिपि के रूप में मान्यता देने का आग्रह किया जा रहा है।

लिपि की इस राजनीति का शिकार होने के बावजूद भी नागरी लिपि का कश्मीरी के लिए प्रयोग बन्द नहीं हुआ है। कश्मीर के बाहर रहने वाले कश्मीरियों ने अनेक स्थानों पर कश्मीरी समितियाँ बनायी हैं जिनकी ओर से प्रकाशित पत्र-पत्रकाओं में कश्मीरी नागरी अक्षरों में ही लिखी जाती है। यही नहीं, पटियाला-स्थित उत्तर-क्षेत्रीय भाषा-संस्थान में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा संशोधित नागरी लिपि में ही प्रतिवर्ष अनेक गैर-कश्मीरी अध्यापकों को एक द्वितीय भाषा के रूप में कश्मीरी सिखायी जाती है। यह बात जब नागरी लिपि के प्रयोग को 'ग़द्दारी' कहने वाले प्रो० मही-उद्दीन हाजनी साहब को बतायी तो उनसे कोई जवाब देते न बना, क्योंकि स्वयं कश्मीर में छात्रों एवं अध्यापकों को कश्मीरी भाषा के अध्ययन का प्रशिक्षण देने की कोई व्यवस्था नहीं है।

स्पष्ट है कि नागरी लिपि के प्रति कश्मीर में कुछ लोगों के मन में जो पूर्वाग्रह है उसका कोई तर्क-सम्मत आधार नहीं है। इधर गत वर्ष शेख मुहम्मत अब्दुल्ला

की सरकार ने राज्य के सरकारी अध्यापकों के लिए उर्दू तथा हिन्दी दोनों भाषाओं तथा उनकी लिपियों को सीखना अनिवार्य घोषित कर दिया । स्वतन्त्रता से पूर्व भी, जब प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री श्री के० जी० सैय्यदैन राज्य के शिक्षा विभाग के निदेशक थे, फ़ारसी तथा नागरी दोनों लिपियों में लिखित 'सरल उर्दू' को राज्य शिक्षा का माध्यम बनाया गया था । कोई कारण नहीं कि कश्मीरी के लिये भी ऐसी ही कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती । इस प्रकार के कदम से नागरी लिपि के प्रति अनावश्यक पूर्वाग्रह को बहुत हद तक कम किया जा सकता है ।

कश्मीरी तथा हिन्दी के स्वनिमों का व्यतिरेकी विश्लेषण

डा० सोमनाथ कौल
प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर।

भारत के सुदूर उत्तर में स्थित कश्मीर में कश्मीरी को ही मातृभाषा के रूप में व्यवहार में लाया जाता है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान (Diachronic Linguistics) के सर्वसम्मत सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत भाषा को भारत-ईरानी उपकुल के अन्तर्गत रखा गया है जो कि भारोपीय कुल शतम् समूह के अन्तर्गत प्रमुख कुलों में से एक है। कई भाषा-विज्ञानियों ने समय-समय पर कश्मीरी के बारे में अपनी रुचि प्रकट की है तथा अपने विश्वास के अनुसार इसकी प्रकृति, प्रवृत्ति तथा इसके उद्गम पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। डॉ० ग्रियर्सन सम्भवतः प्रथम भाषा-विज्ञानी हैं जिन्होंने अपने ग्रन्थ 'भारत का भाषात्मक सर्वेक्षण' में कश्मीरी भाषा का उल्लेख किया है।[१] प्रस्तुत भाषा का अध्ययन करने के उपरान्त वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह दरद गोत्रजा है।[२] वास्तव में यह बड़े हर्ष तथा गर्व की बात है कि डॉ० जार्ज ग्रियर्सन जैसे विदेशी विद्वान ने कश्मीरी के स्वरूप को जानने की रुचि प्रकट की तथा प्रस्तुत भाषा के बारे में अपना वक्तव्य दिया। जार्ज ग्रियर्सन का ग्रन्थ भारतीय भाषाओं के बारे में (प्रकारान्तर से कश्मीरी के बारे में) सर्वेक्षण मात्र था, अतः प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वारा कश्मीरी का सामान्य परिचय ही मिलता है, विशिष्ट नहीं। साथ ही यह भी सत्य है कि वे कश्मीरी भाषा से स्वयं परिचित नहीं थे और उनके निष्कर्ष पूर्णरूपेण भ्रामक हैं। उन्होंने अन्य विद्वानों से कार्य करवाया था। डॉ० ग्रियर्सन की मान्यताओं का खंडन करते हुये एक लेखक लिखते हैं कि उनकी ग़लत धारणाओं के कारण ही कश्मीरी के सही स्वरूप को जानने में बाधायें पड़ी हैं।[३] कश्मीरी भाषा के बारे में डॉ० त्रिलोकीनाथ गंजू (जिन्होंने डा० रमेशकुमार शर्मा के निर्देशन में कश्मीरी भाषा के उद्गम एवं विकास पर पीएच० डी० के लिए शोध-कार्य किया है) लिखते हैं कि यह वैदिक संस्कृत की स्वतन्त्र विकसित अपभ्रंश है।[४] कश्मीरी भाषा के विभिन्न रूपों को समझाने में डॉ० ब्रज काचरू[५] श्री टाक जैनगीरी तथा ऐसे ही दूसरे लेखकों के नाम लिये जा सकते हैं।

---

१. दे० Linguistic Survey of India : G. A. Grierson; Vol. VIII, Part II.

२. दे० Linguistic Survey of India : G. A. Grierson; Vol. VIII, Part II, Page 233.

३. दे० वितस्ता खंड ५, अंक १, पृ० ८।

४. दे० वितस्ता (कश्मीरी-भाषा विशेषांक) खंड १०, अंक १, पृ० ४।

५. दे० A Reference grammar of Kashmiri, University of Illinois (Illinois 1969).

वास्तव में हमारा यहाँ यह प्रतिपाद्य नहीं है कि किस भाषा-विज्ञानी ने कश्मीरी भाषा के बारे में सही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। हम यहाँ संक्षेप में यह कहना चाहते हैं कि इस भाषा का अध्ययन-विश्लेषण जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है, उससे इसके स्वरूप को समझने में सहयता कम, किन्तु रुकावटें अधिक उत्पन्न की गई हैं। कश्मीरी भाषा का जो वर्त्तमान रूप हमारे सम्मुख है, वह इसके सुदीर्घ इतिहास की ओर संकेत करता है। कश्मीरी भाषा के इतिहास को जानने के लिये कश्मीरी भाषा के संकालिक (Synchronic) रूप को भली-भाँति जान लेना आवश्क प्रतीत होता है। हम कश्मीरी के जीवित रूप को देखकर भी अनदेखे रहते हैं. तथा सुनकर भी अनसुनी करते हैं। इतना ही नहीं प्रमुख भारतीय आर्यभाषाओं से प्रतिपाद्य भाषा का विभिन्न स्तरों पर व्यतिरेकी अध्ययन करने के पश्चात् इस ठोस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि किन-किन स्तरों पर यह भाषा दूसरी प्रमुख आर्यभाषाओं से समता और विषमता लिये हुई है। प्रस्तुत लेख के माध्यम से कश्मीरी तथा हिन्दी (खड़ी बोली) स्वनिमों का व्यतिरकी अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

हिन्दी प्रदेश में जो भाषायें, बोलियाँ तथा उपबोलियाँ बोली जाती हैं, विकाश की दृष्टि से उनका सम्बन्ध अर्द्धमागधी तथा शौरसेनी अपभ्रंशों से है। हिन्दी (खड़ी बोली) शौरसेनी अपभ्रंशों से विकसित होकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में प्रमुख स्थान रखती है। कश्मीरी की तरह इसका सम्बन्ध भी भारत-ईरानी उपकुल के साथ है। इस भाषा का मौखिक रूप (हिन्दुस्तानी) भारत के अधिकांश भागों में बोला-समझा जा सकता है। बोधगम्यता के कारण ही इसको भारतीय संविधान के अन्तर्गत सम्पर्क भाषा का स्थान मिल सका।

कश्मीरी में निम्नलिखित मूल स्वर हैं :—

ह्रस्व स्वर :—इ, उ॒, उ, ए॒, अ॑, अ॑, अ, अॅ।

कुल=८ स्वर

दीर्घ स्वर :—ई, ऊ॒, ऊ, ए, आ॑, आ॑, आ।

कुल=७ स्वर[1]

---

१. 'Kashmir Phonetic Reader' (Central Institute of Indian Languages Mysore) के अनुसार कश्मीरी में एक ओर स्वर स्वनिम /आॅ/ है जो कि /अॅ/ की अपेक्षा दीर्घ है। देखा जाए, यह मूल स्वर न होकर दो स्वरों के संगम से बनाया गया है—/अॅ/+[आ]=आॅ। मानक कश्मीरी में इस स्वर स्वनिम का वितरण कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा। उक्त पुस्तक में बड़ी कठिनाई से इसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, यह है सॉव (सवा)। वास्तव में /सॉव/ का सही उच्चारण [स्वाव] है। अतः कश्मीरी में इस स्वर स्वनिम की कोई आवश्यकता महसूस नहीं की जा सकती है।

अनुनासिकता—(१) कश्मीरी में अर्थ के औचित्य को देखते हुये प्रत्येक स्वर अनुनासिक नहीं हो सकता है। अनुनासिकता निम्नलिखित स्वर स्वनिमों में देखी जा सकती है।—

ह्रस्व स्वर :—उ, एॖ, अ॑, अ॔, अ, अॅ=कुल ६।

दीर्घ स्वर :—ई, ऊ̥, ऊ, ए, ॴ, ओ, आ=कुल ७।

ध्यान देने की बात यह है कि अनुनासिकता से उत्पन्न हुई नई ध्वनि को स्वतंत्र स्वर स्वनिक के रूप में नहीं लिया जा सकता है। यह अपने अस्तित्व को तभी प्रमाणित करती है जबकि किसी स्वर के साथ इसका उचित स्थान पर प्रयोग किया जाता है, जैसे आ॒ठ (आठ), आ॑ठ (गुठली)।

कश्मीरी भाषा के स्वर स्वनियों को नीचे दी गयी सारणी के द्वारा सुगमता के साथ समझा जा सकता है—

	अग्र (Front) ↓	मध्य (Central) ↓	पश्च० (Back) ↓
उच्च → (High)	इ ई	उ̥ ऊ̥	उ ऊ
मध्य → (Mid)	एॖ ए	अ॑ ॴ	अ॔ ओ
निम्न → (Low)		अ आ	अ

कुल=१५ स्वर।

कश्मीरी स्वर स्वनिमों का वितरण :—

१ स्वर स्वनिम	२ वितरण आ० म० अं०	३ विवरण ↓	४ उदाहरण ↓ आ०	 म०	 अंन
इ	√ √ √	उच्च, अग्र, अगोलीकृत ह्रस्व।	इदरार (पेशाब)	सिर (राज़)	बएॖनि (बहन)
ई	√ √ √	उच्च, अग्र, अगो०, दीर्घ।	ईद (ईद)	तील (तेल)	खॊली (खाली)
उ̥	× √ √	उच्च, मध्य, अगो०, ह्रस्व।	×	रउ̥श (ईर्ष्या)	पॊजामउ̥ (पाजामा)
ऊ̥	√ √ ×	उच्च, मध्य, अगो०, दीर्घ।	ऊ̥ठ्युम (आठवाँ)	कऊ̥मथ (कीमत)	×

उ	× √ √	उच्च, पश्च, गो० ह्रस्व।	×	वुफ (उड़ना)	हु (वह)
ऊ	√ √ √	उच्च, पश्च, गो० दीर्घ।	ऊतरउ़ (परसों)	हून (कुत्ता)	पकू (चलो)
ए़	× √ √	मध्य, अग्र, अगो० ह्रस्व।	×	ज़ए़व (जीभ)	मए़ (मुझे)
ए	× √ √	मध्य, अग्र, अगो० दीर्घ।	×	रेश (दाढ़ी)	×
अ'	√ √ ×	मध्य, मध्य (Central) अगो० ह्रस्व।	अ'र (ठीक)	ग'र (घड़ी)	×
आ'	√ √ √	मध्य, मध्य (Central) अगो०, दीर्घ।	आ'फीम (अफीम)	दा'र (खिड़की)	मसा' (मत)
अ़	√ √ ×	मध्य, पश्च, गो० ह्रस्व।	अ़न (अन्धा)	ज़ॖर (बहरा)	×
ओ	√ √ √	मध्य, पश्च, गो० दीर्घ।	ओलुव (आलू)	सोन (हमारा)	च़लो (भागो)
अ	√ √ √	निम्न, मध्य, अगो० ह्रस्व।	अज़ (आज)	च़ल (भागो)	×
आ	√ √ √	निम्न, मध्य, अगो० दीर्घ।	आर (दया)	वान (दुकान)	सफा (साफ़)
ॲ	× √ √	निम्न, पश्च, गो० ह्रस्व।	×	दॅंद (दूध)	सॅं (वह)

कश्मीरी में प्रत्येक स्वर अनुनासिक नहीं हो सकता है। इस भाषा में निम्नलिखित स्वर स्वनिमों के साथ अनुनासिकता का प्रयोग हो सकता है :—

ह्रस्व स्वर :—उ, ए़, अ', अ़, अ, ॲ =६

दीर्घ स्वर :—ई, ऊ़, ऊ, ए, आ', ओ, आ =७

कुल=१३ अनुनासिक स्वर।

इन स्वरों को नीचे दी गई सारणी के द्वारा सरलता के साथ समझा जा सकता है :—

	अग्र		मध्य		पश्च	
उच्च→		ई	ऊ़		उ	ऊ
मध्य→	ए़	ए	अ'	आ'	अ़	ओ
निम्न→			अ	आ	ॲ	

हिन्दी में निम्नलिखित मूल स्वर हैं :—

इ, अ, उ = ३ (ह्रस्व स्वर)

दीर्घ स्वर :—ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, आ = ७

हिन्दी में अँग्रेजी के कई आगत शब्दों के कारण अँग्रेजी की /ऑ/ ध्वनि को भी स्वर स्वनिम के अन्तर्गत रखा गया है। इसका कारण यह है कि शिक्षित वर्ग में यह अपने मूल रूप में प्रयुक्त होती है जिससे यह /आ/ /ऑ/ के अर्थ-भेद को प्रकट करती है, जैसे—/डाल/ /डॉल/।

हिन्दी में प्रत्येक स्वर अनुनासिक हो सकता है। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि अनुनासिकता को स्वतंत्र स्वनिम के रूप में नहीं लिया जा सकता। इसका अस्तित्व तभी प्रमगित होता है जबकि अर्थभेद को प्रकट करने के लिये इसको उचित स्थान पर प्रयोग में लाया जाता है, जैसे—है, हैं ; चिता, चिंता।

हिन्दी स्वर स्वनिमों का वितरण :—

स्वर स्वनिम	वितरण			विवरण
	अ०	म०	प०	
इ	√	√	√	अग्र, संवृत, अगोलीकृत, ह्रस्व स्वर
ई	√	√	√	अग्र, संवृत, अगोलीकृत, दीर्घ स्वर
उ	√	√	√	पश्च, संवृत, गोलीकृत, ह्रस्व स्वर
ऊ	√	√	√	पश्च, संवृत, गोलीकृत, दीर्घ स्वर
ए	√	√	√	अग्र, अर्धसंवृत, अगो०, दीर्घ स्वर
ऐ	√	√	√	अग्र, अर्धविवृत, अगो०, दीर्घ स्वर
ओ	√	√	√	पश्च, अर्धसंवृत, गो०, दीर्घ स्वर
औ	√	√	√	पश्च, अर्धविवृत, गो०, दीर्घ स्वर
अ	√	√	√	मध्य, अर्धविवृत, अगो०, ह्रस्व स्वर
आ	√	√	√	पश्च, विवृत।

कश्मीरी तथा हिन्दी के स्वर स्वनिमों में पारस्परिक समता तथा विषमता पायी जाती है। सबसे बड़ी विषम बात यह है कि हिन्दी की अपेक्षा कश्मीरी में अधिक स्वर हैं। कश्मीरी में कई स्वर बिलकुल विशिष्ट हैं जिनसे शुद्ध कश्मीरीपन छलकता है, जैसे—/अ़/, /आ़/, /ॲ/, /उ़/ /ऊ़/ आदि। ये स्वर स्वनिम हिन्दी के स्वर स्वनिमों के साथ कहीं भी साम्य अथवा अर्द्ध-साम्य नहीं रखते हैं।

/ऐ/ तथा /औ/ जैसे संयुक्त स्वर कश्मीरी में नहीं हैं। स्पष्ट है कि कश्मीरी भाषी हिन्दी बोलते समय इन ध्वनियों का अशुद्ध उच्चारण करना है कुछ अचेत होकर बोलते समय वह /ऐसा/ का उच्चारण (एसा) करेगा। इसी प्रकार /ओ/ और /औ/ का कोई अंतर न करके वह उच्चारण में भयंकर भूलें करता है और इस तरह से वह

अर्थ का अनर्थ भी करता है निम्नलिखित उदाहरणों से कथन की पुष्टि की जा सकती है :—

(१) मुझे दिल्ली जाने का बड़ा **शोक** है। शौक > शोक
(२) मुझे पढ़ने-लिखने का बड़ा **शोक** है। औ > ओ

यह सोचना भी ठीक नहीं है कि कश्मीरी भाषा के स्वर हिन्दी के स्वरोच्चरण में सदैव व्याघात उत्पन्न करते हैं। कश्मीरी के स्वरों की संख्या हिन्दी के स्वरों से अधिक है, जिनमें से कई स्वर हिन्दी के स्वरों से मिलते-जुलते हैं, जैसे इ, ई, उ, ऊ, अ, आ। ये स्वर हिन्दी के कई स्वरोच्चरण में सहायक सिद्ध होते हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि हिन्दी के स्वरों का अधिगम करने में कश्मीरी भाषी अधिक कठिनाइयों का अनुभव नहीं करता है।

कश्मीरी में व्यंजन स्वनिम :—

कश्मीरी में निम्नलिखित व्यंजन स्वनिम हैं :—

प्	फ्	ब्	
त्	थ्	द्	
ट्	ठ्	ड्	
क्	ख्	ग्	
त्स्	त्स्ह्		
च्	छ्	ज्	
म्	न्		
ल्	र्		
स्	ज़्	श्	ह्
व्	य्		

कुल = २७ व्यंजन स्वनिम।

कई लोग /क़/ /ख़/ /ग़/ जैसी जिह्वामूलीय ध्वनियों को भी कश्मीरी व्यंजन स्वनियों के अन्तर्गत रखने के पक्ष में हैं। उनका तर्क है कि कश्मीरी भाषा में उर्दू-फ़ारसी के बहुत से शब्द आये हैं, अतः इन आगत शब्दों के लिये उपरोक्त ध्वनियों की भी भाषा में रक्षा करनी होगी। किन्तु ध्यान से देखा जाय, ये ध्वनियाँ कश्मीरी भाषा में तद्भव रूप में प्रयुक्त होती हैं, जैसे—क़लम > कश्म० कलम, ग़ज़ल > कश्म० गजल, ग़ुलाम > कश्म० गुलाम, ग़नी > कश्म गनी। उर्दू-फ़ारसी से अनभिज्ञ होने के कारण इस प्रकार की प्रवृत्ति हिन्दी भाषियों में भी देखने को मिलती है, जैसे—ग़ज़ल > गजल, हज़ार > हजार आदि। हाँ, यह अवश्य है कि सचेत होकर बोलते समय उर्दू-फ़ारसी के शिक्षित विद्वान इन स्वनियों को तत्सम रूप में प्रयोग में लाने की चेष्टा करते हैं।

कश्मीरी के व्यंजन स्वनिमों को स्थान, प्रयत्न, घोषत्व तथा अघोषत्व के आधार पर इस चित्र के द्वारा सुगमता के साथ समझा जा सकता है :—

स्थान

	प्रयत्न ↓	द्वयोष्ठ्य	दन्त्योष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	तालव्य	मूर्द्धन्य	कंठ्य	जिह्वामूलीय	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श — अघोष	अल्पप्राण	प्	×	त्	×	×	ट्	क्	×	×
स्पर्श — अघोष	महाप्राण	फ्	×	थ्	×	×	ठ्	ख्	×	×
स्पर्श — घोष	अल्पप्राण	ब्	×	द्	×	×	ड्	ग्	×	×
स्पर्श — घोष	महाप्राण	×	×	×	×	×	×	×	×	×
स्पर्श संघर्षी — अघोष	अल्पप्राण	×	×	त्र	×	च्	×	×	×	×
स्पर्श संघर्षी — अघोष	महा०	×	×	छ	×	छ्	×	×	×	×
स्पर्श संघर्षी — घोष	अल्प०	×	×	×	×	ज्	×	×	×	×
स्पर्श संघर्षी — घोष	महा०	×	×	×	×	×	×	×	×	×
अनुनासिक	अल्प०	म्	×	न्	×	×	×	×	×	×
अनुनासिक	महा०	×	×	×	×	×	×	×	×	×
पार्श्विक	अल्प०	×	×	×	ल्	×	×	×	×	×
पार्श्विक	महा०	×	×	×	×	×	×	×	×	×
लुंठित	अल्प०	×	×	×	र्	×	×	×	×	×
लुंठित	महा०	×	×	×	×	×	×	×	×	×
संघर्षी — अघोष	अल्प०	×	×	×	स्	श्	×	×	×	ह्
संघर्षी — अघोष	महा०	×	×	×	ज़्	×	×	×	×	×
संघर्षी — घोष	अल्प०	×	×	×	×	×	×	×	×	×
संघर्षी — घोष	महा०	×	×	×	×	×	×	×	×	×
अर्द्ध-स्वर		व्	×	×	×	य्	×	×	×	×

कुल = २७ व्यंजन स्वनिम

कश्मीरी के व्यंजन स्वनिमों का वितरण :—

१ व्यंजन स्वनिम	२ वितरण			३ उदाहरण		
	आ.	म.	अं.	आदि	मध्य	अंत
१. प्	√	√	√	पर (पढ़ो)	क़ापी (कापी)	टंप (बाल)
२. फ्	√	√	√	फंत (टोकरी)	नफर (आदमी)	पाफ (पाप)
३. ब्	√	√	√	बोय (भाई)	शरबथ (शरबत)	बब (बाप)
४. त्	√	√	√	तार (तार)	कतुन (कातना)	लंत (हल्का)
५. थ्	√	√	√	थंद (लम्बा)	पथर (नीचे)	हथ (सौ)
६. द्	√	√	√	दंद (दूध)	ज़ादर (चादर)	बद (बुरा)
७. ट्	√	√	√	ट्योठ (प्यारा)	मंटुन (मोटा होना)	मंट (मोटा)
८. ठ्	√	√	√	ठांठुर (ठठेरा)	ब्रोंठकुन (सामने)	मठ (बड़ा मटका)
९. ड्	√	√	√	डांव (बहाना)	बुडजू (बूढ़ा)	बंड (बंड)
१०. क्	√	√	√	कोठ (कोट)	काकद (काग़ज़)	ग्राक (गाहक)
११. ख्	√	√	√	खर (गधा)	अखा (कइयों में से एक)	ग्राख (तलवार)
१२. ग्	√	√	√	गछुन (जाना)	मगर (मगर)	माग (माघ)
१३. त्स्	√	√	√	त्सास (खाँसी)	त्संत्सल (चंचल)	सउत्स (दर्जी)
१४. छ्	√	√	√	छ्ल (छल)	लछुन (झाड़ू)	लछ (धूल)
१५. च्	√	√	√	चोर (बेवकूफ)	मचि (बड़े मटके)	पंच (वह चली)
१६. छ्	√	√	√	छानुन (छानना)	बेछुन (भीख माँगना)	रांछ (हिफ़ाज़त करना)
१७. ज्	√	√	√	जाय (जगह)	लंजि (टहनियाँ)	कालेज (कॉलिज)
१८. म्	√	√	√	मन (मन)	आमि (कच्चे)	ओम (कच्चा)
१९. न्	√	√	√	नून (नमक)	वनो (बोलो)	जून (चाँद)
२०. ल्	√	√	√	लठ (मृगी)	वॅलो (आओ)	माल (माल)
२१. र्	√	√	√	रउख (लकीर)	परुन (पढ़ना)	कॅर (कड़ा)
२२. स्	√	√	√	सोरुय (सारा)	तसली (तसल्ली)	तस (उसको)
२३. ज़्	√	√	√	ज़ॉलिम (ज़ालिम)	मज़उदार (मज़ेदार)	माज़ (मांस)
२४. श्	√	√	√	शंगुंन (सोना)	मोशूर (प्रसिद्ध)	कूशिश (कोशिश)
२५. ह्	√	√	√	हरुद (शरद)	बहार (वसंत)	माह (चूमना)
२६. व्	√	√	√	वारयाह (अनेक)	कमावुन (कमाना)	काव (कौआ)
२७. य्	√	√	√	यख (ठंडा)	लायुन (पीटना)	माय (प्रेम)

कश्मीरी में कुछ संयुक्त व्यंजन भी देखने को मिलते हैं, जैसे—/क्र/ /ग्र/ /त्र/ आदि। ऊपर जिन व्यंजन स्वनिमों को दिखया गया है, वे प्रयोग में आने पर ऐसे कश्मीरी शब्दों की सृष्टि करते हैं जो बिल्कुल विशिष्ट होते हैं। प्रयोगात्मक स्तर पर कई व्यंजन युग्मों (Cluster Vowels) का विशिष्ट उच्चारणगत रूप हमारे सामने आता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

ब्याख (दूसरा), ज्यन (कीचड़, या पैदा होंगे)
प्रार (प्रतीक्षा करो), त्राम (ताँबा) आदि।

हिन्दी के परम्परागत ग्रन्थों में निम्नलिखित व्यंजन स्वनिम मिलते हैं :—

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	
त्	थ्	द्	ध्	न्	
प्	फ्	ब्	भ्	म्	
य्	र्	ल्	व्	श	
	ष्	स्	ह्		कुल = ३३ व्यंजन

/क्ष/, /त्र/, /ज्ञ/ मूल व्यंजन न होकर संयुक्त व्यंजन हैं। किन्तु उपरोक्त व्यंजनों के अतिरिक्त प्रयोग में /ड़/ /ढ़/, /क़/ /ख़/ /ग़/ /ज़/ /फ़/ /व/ स्वनिम व्यंजन भी हैं। /न्ह/, /ल्ह/ /म्ह/ जैसे—व्यंजनों को भी मूल व्यंजनों के अन्तर्गत रखा गया है, यद्यपि ये संयुक्त व्यंजन दिखते हैं। ये तीनों व्यंजन महाप्राण हैं तथा इनके अल्पप्राण /न/, /ल्/ तथा /म/ हैं। इस प्रकार उच्चारण तथा लेखन के स्तर पर हिन्दी में निम्नलिखित व्यंजन स्वनिम हैं :—

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	क़्	ख़्	ग्
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	ज़्		
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	ड़	ढ़	
त्	थ्	द्	ध्	न्	(न्ह्)[1]		
प्	फ्	ब्	भ्	म्	(म्ह्)	फ्	
य्	र्	ल्	व्		व्	ल्ह्	
श्	ष्	स्	ह				

स्थान, प्रयत्न, घोषत्व तथा अघोषत्व के आधार पर हिन्दी के व्यंजन स्वनिमों का वर्गीकरण किया जा सकता है। कश्मीरी तथा हिन्दी के व्यंजन स्वनिमों का ध्वन्यात्मक परिचय प्रायः एक जैसा है। यहाँ केवल हिन्दी के उन व्यंजन स्वनिमों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जो कि कश्मीरी भाषा में नहीं हैं :—

---

१. /न्ह/ और /म्ह/ व्यंजन स्वनिमों में कोई मौलिक लिपि चिह्न नहीं हैं।

स्वनिम	विवरण
/भ्/	द्वयोष्ठ्य, स्पर्श, सघोष, महाप्राण ।
/ध्/	दन्त्य, स्पर्श, सघोष, महाप्राण ।
/ढ्/	मूर्द्धन्य, स्पर्श, सघोष, महाप्राण ।
/क़्/	जिह्वामूलीय, स्पर्श, अघोष, अल्पप्राण ।
/झ्/	तालव्य, स्पर्श-संघर्षी, घोष, महाप्राण ।
/म्ह्/	द्वयोष्ठ्य, नासिक्य, घोष, महाप्राण ।
/न्ह्/	वर्त्स्य, नासिक्य, घोष, महाप्राण ।
/ञ्/	तालव्य, नासिक्य, घोष, अल्पप्राण ।
/ण्/	मूर्द्धन्य, नासिक्य, घोष, अल्पप्राण ।
/ङ्/	कंठ्य, नासिक्य, घोष, अल्पप्राण ।
/ल्ह्/	वर्त्स्य, पार्श्विक, घोष, महाप्राण ।
/ड़्/	मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त, घोष, अल्पप्राण ।
/ढ़्/	मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त, घोष, महाप्राण ।
/फ़्/	दन्त्योष्ठ्य, संघर्षी, अघोष ।
/व्/	ओष्ठ्य, संघर्षी, घोष ।
/ख़्/	अघोष, कोमलतालव्य, संघर्षी ।
/ग़्/	घोष, कोमलतालव्य, संघर्षी ।

कश्मीरी तथा हिन्दी में समान व्यंजन स्वनिम :—

व्यंजन स्वनिम				वितरण कश्मीरी				हिन्दी			
क्	ख्	ग्		√	√	√		√	√	√	
च्	छ्	ज्		√	√	√		√	√	√	
ट्	ठ्	ड्		√	√	√		√	√	√	
त्	थ्	द्	न्	√	√	√	√	√	√	√	√
प्	फ्	ब्	म्	√	√	√	√	√	√	√	√
य्	र्	ल्	व्	√	√	√	√	√	√	√	√
श्	स्	ह्		√	√	√		√	√	√	

कश्मीरी भाषा की विशिष्ट ध्वनियाँ जोकि हिन्दी में नहीं हैं :—

/त्र/ /ख्र/

हिन्दी के वे कुछ व्यंजन स्वनिम जो कि कश्मीरी भाषा में नहीं हैं :—

/घ/ /ङ/ /झ/ /ञ/

/ढ/ /ण/ /ध/ /भ/

/ड़/ /ढ़/

स्पष्ट है कि हिन्दी व्यंजनों के कई वर्गों के घोष, महाप्राण व्यंजन कश्मीरी में नहीं हैं। कवर्ग का /घ्/ चवर्ग का /झ्/ टवर्ग का /ढ्/ तवर्ग का /ध्/ पवर्ग का /भ्/ स्वनिम कश्मीरी में नहीं हैं। इन स्वनियों का कश्मीरी भाषा की स्वनिम व्यवस्था से अनुपस्थित रहना किसी गूढ़ रहस्य की ओर संकेत है। हो सकता है, किसी युग में ये व्यंजन कश्मीरी भाषा में मौजूद रहे हों किन्तु कालांतर में ध्वनि-विकारों के कारण ये शनैः-शनैः लुप्त हो गये हों। जो भी हो, कश्मीरी भाषी हिन्दी के इन व्यंजनों का उच्चारण करने में बहुत सी दिक्कतों का सामना करता है। उदाहरणार्थ /घ्/ जैसे—स्वनिम (Phoneme) को (ग्) संस्वन (Allophone) मानकर वह इनके उच्चारण में कोई अंतर नहीं करता है। परिणामस्वरूप उच्चारण अशुद्धि के कारण लिखित रूप में भी वह अशुद्धि कर सकता है। इस प्रकार स्वनिमों के व्यतिरेकी बिन्दु (Point of Contrast) के कारण अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। कथन की पुष्टि के लिये निम्नलिखित उदाहरण सार्थक सिद्ध हो सकते हैं :—

हिन्दी वाक्य	कश्मीरी भाषी का उच्चरित रूप
(१) भाई मुझे भी बताना।	बाई, मुजे बी बताना।
(२) बस में मुझे भी जगह मिली।	बस में मुजे बी जगह मिली।
(३) मुझे घर जाना है।	मुजे गर जाना है।
(४) झाड़ू से कमरा साफ़ करो।	जाडू से कमरा साफ करो।

इसी तरह अन्य वर्गों के महाप्राण घोष व्यंजनों को भी देखा जा सकता है। वास्तव में हिन्दी के शिक्षक को कश्मीरी भाषी को इन व्यंजन स्वनिमों का ज्ञान कराते समय सावधानी बरतनी होगी। इन स्वनों को हिन्दी स्वनों की सहायता से ही सीखना होगा, प्रथम भाषा (L_1) की सहायता से कदापि नहीं।

हिन्दी में /ड्/ तथा /ढ्/ के संस्वन (Allophones) क्रमशः (ड़्) और (ढ़्) हैं। कश्मीरी में /ड्/ ध्वनि तो है किन्तु शेष तीनों अनुपस्थित हैं। कश्मीरी भाषी हिन्दी के /ड्/ ◡ (ड़) तथा /ढ/ ◡ (ढ़) के उच्चारणगत अंतर तथा परिपूरक वितरण के सिद्धान्त से अनभिज्ञ होने के कारण भूलें करता है। यह सही है कि /ड/ के बदले यदि (ड़) को या (ड़) के बदले /ड/ को प्रयोग में लाया जाय, तब अर्थगत व्यतिरेक उत्पन्न नहीं होता है किन्तु यह सही है कि शुद्ध उच्चारण में खरोचें लग जाती हैं। इस प्रकार हिन्दी भाषी समुदाय में कश्मीरी भाषी अपने आपको अजनबी (Alien) समझने लगता है।

/क़्/ /ख़्/ /ग़्/ /फ़्/ जैसे व्यंजन हिन्दी भाषा में आगत हैं जोकि मूलतः फ़ारसी की ध्वनियाँ हैं। हिन्दी में ये उर्दू के माध्यम से आयी हैं। इन ध्वनियों के उच्चारण में हिन्दी तथा अहिन्दी भाषी दोनों अशुद्धियाँ कर सकते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि कश्मीरी भाषा के व्यंजन स्वनिमों की व्यवस्था हिन्दी का अधिगम करने में जहाँ एक ओर बाधक सिद्ध हो सकती है, वहाँ दूसरी ओर सहायक भी।

कश्मीरी तथा हिन्दी के खंडेतर स्वनिम :—

कश्मीरी तथा हिन्दी के खंडेतर स्वनिमों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत देखा जा सकता है :—

(१) विवृत्ति (Juncture)।

(२) अनुतान (Intonation)।

१. विवृत्ति—दो पदों के बीच में छोड़े जाने वाले स्थान को विवृत्ति कहते हैं। कश्मीरी में विवृत्ति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह शब्द के अर्थ को प्रभावित करती है।

उदाहरण :—

कश्मीरी	**हिन्दी अनुवाद**
(१) अन अन	खाना लाओ।
(२) अनन	(वे) लायेंगे।

प्रथम वाक्य विवृत्ति के कारण एक अर्थ देता है तथा दूसरे वाक्य में यही शब्द दूसरे अर्थ की सृष्टि करते हैं। कई दूसरे उदाहरणों से भी कथन को पुष्ट किया जा सकता है :—

कश्मीरी	**हिन्दी अनुवाद**
वंथ अन	उठो (और) लाओ।
वंथन	(वे) उठेंगे।
ज़ अन	दो लाओ।
ज़अंन	मानों (कि)।

कश्मीरी की तरह हिन्दी में भी विवृत्ति महत्वपूर्ण है। निम्नलिखित उदाहरण से कथन का स्पष्टीकरण किया जाता है :—

बन्द रखा गया है।
बन्दर खा गया है।

स्पष्ट है कि 'बन्द' और 'रखा' के मध्य जो विवृत्ति है, उसे बदलने के साथ अर्थ बदलता है।

२. अनुतान—अनुतान का सम्बन्ध भाषा की समग्र अभिव्यक्ति से है। अनुतान भेद से शब्दार्थ में बहुत अधिक भेद आ जाता है। एक ही स्वनिम-विन्यास भिन्न-भिन्न (Intonation) में उच्चरित हो तो वही सामान्य कथन हो सकता है, वही प्रश्न भी बन सकता है या वही अपेक्षामय प्रश्न भी हो सकता है। कश्मीरी भाषा के खंडेतर स्वनिम-विन्यास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उदाहरण के लिये—'बउ़ गछ़उ़ दिलि' (मैं दिल्ली जाऊँगा) को यदि विभिन्न अनुतान में प्रस्तुत किया जाय, तो कई अर्थ प्रदान किये जा सकते हैं :—

(१) बउ् गछ़उ् दिलि । (मैं दिल्ली जाऊँगा) । वाक्य में बोलते समय /मैं/ पर बलाघात है। कहने का आशय यह है कि मेरे सिवा कोई भी दिल्ली नहीं जायेगा। इसी वाक्य को दूसरे अनुतान में भी प्रस्तुत किया जा सकता है । (२) 'बउ् गछ़उ् दिलि ।' (मैं दिल्ली **जाऊँगा**) वाक्य में **'जाऊँगा'** पर बलाघात है। कहने का आशय यह है कि मैं दिल्ली अवश्य जाऊँगा । अनुतान की दृष्टि से कश्मीरी भाषा सम्पन्न है तथा इससे लाक्षणिक प्रयोग भी किये जा सकते हैं।

यह अपूर्व संयोग है कि कश्मीरी तथा हिन्दी के खंडेतर स्वनिम-विन्यास में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि कश्मीरी भाषा का अध्ययन एक नवीन एवं वैज्ञानिक दृष्टि की अपेक्षा रखता है। इसका अध्ययन-विश्लेषण यदि समकालीन (Synchronic) पद्धति के अनुसार किया जाय और इसका व्यतिरेकी अध्ययन-विश्लेषण दूसरी प्रमुख आर्यभाषाओं (विशेषकर हिन्दी) से किया जाय तो इस भाषा से सम्बन्धित कई तथ्य उजागर हो सकते हैं। इसके साथ ही भाषा$_2$ (L_2) का अधिगम करने का रास्ता भी सरलीकृत किया जा सकता है।

तिलेल-गुरेसी श्रिण्या-भाषा में क्रिया-पद

मसूदुलहसन सामूं, एम० ए०
जम्मू-कश्मीर प्रशासनिक सेवा, श्रीनगर।

जार्ज ग्रियर्सन श्रिण्या विभाषा को दारदिक भाषा कहते हैं और इस विभाषा को अन्य दरद विभाषाओं से अधिक संपन्न घोषित करते हैं। महाभारत[1] में सर्वप्रथम दरद शब्द का उल्लेख मिलता है। भारतीय पुराणों में दरद-पल्लव आदि नाम आते हैं। इतिहासकार कल्हण ने कई बार राजतरंगिणी[2] में दरदों का उल्लेख किया है। दरद की मूल अर्थवत्ता संस्कृत जबान की है। जिसे पहाड़ कहते हैं। परन्तु यहाँ हमारा भूगोल से नहीं बल्कि भाषात्मक सामग्री से सम्बन्ध है। इसलिए मैं दरद भू-भाग की भाषाओं के बारे में ही अधिक कहना चाहता हूँ। दरद प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा के प्रमुख पाँच विभाग हैं। जो वास्तव में श्रिण्या के ही रूप हैं लेकिन थोड़ा ध्वन्यात्मकता का फ़र्क़ जरूर है। (१) गिलगती; (२) अस्तोरी; (३) चिलासी; (४) द्रासी; (५) तिलेलगुरेसी; ये हैं श्रिण्या के विभिन्न रूप।

गिलगित की श्रिण्या-भाषा की ध्वन्यात्मकता पर काफ़िरी विभाषाओं का इस कदर असर पड़ा है कि उसका अपना हुलिया ही बिगड़ गया है। श्रिण्या इलाक़े के बीच के तबक़े में अस्तोरी और चिलासी का स्थान आता है। इस ज़बान के बारे में यह कहा जा सकता है कि इसकी ध्वन्यात्मकता अभी भी सुरक्षित है। द्रासी श्रिण्या पर बलती भाषा का असर इस कदर छा गया है कि यह बलती और श्रिण्या का एक नया रूप है, या यों कहिए एक नई जबान सी पनप उठी है। इसके बाद तिलेल-गुरेसी श्रिण्या का स्थान आता है। दरअसल मेरा यहीं की भाषा के क्रिया-पदों से सम्बन्ध है क्योंकि यह मेरी जन्मभूमि है। गुरेस की ६ मील लम्बी घाटी को पार करने के उपरान्त तिलेल की सुन्दरतम-घाटी ६० मील लम्बे भू-भाग पर फैली मिलती है। गुरेस की घाटी के यातायात के सम्बन्ध कश्मीर से हैं। इस घाटी की श्रिण्या भाषा पर कश्मीरी का बड़ा प्रभाव है। यहाँ कुछ एक ऐसे गाँव हैं जहाँ के लोग कश्मीरी भाषा ही बोलते हैं, यदि

---

१. महाभारत : धौम्य-वर्णन।
२. कल्हण : राजतरंगिणी १/३१२; ७/११७१; ७/११७४; ७/११८५; ८/२७०९।

कभी वे श्रिण्या बोलते भी हैं तो ध्वनि कश्मीरी भाषा की रहती है। इन कश्मीरी भाषा-भाषी गाँवों के नाम हैं :—(१) दावर, (२) बगतोर, (३) फकीरपुरा। संभवतः इन लोगों के संपर्क से या इन्हीं लोगों में से ग्रियसन ने किसी को अपना गाइड चुना होगा जिसके फलस्वरूप उन्होंने श्रिण्या और कश्मीरी को एक ही भाषा माना। हकीकत यह है कि इन गाँवों के लोग नाम को श्रिण्या बोलते हैं, असल में वे कश्मीरी ही बोलते हैं।

फकीरपुरा में रहने वाले कुछ ऐसी जबान बोलते हैं जो पचास फीसदी श्रिण्या है और ५०% कश्मीरी। अलबत्ता तिलेल-घाटी पर कश्मीरी जुबान का असर शून्य है और न तिलेल घाटी के आस-पास और कोई भाषा ही बोली जाती है, जिसका असर इस भाषा पर पड़ सकता है। गुरेस घाटी के लोग जब तिलेल के मध्य-भाग में जाते हैं तो प्रथमतः उन्हें उनके उच्चारण को सुनकर ऐसा लगता है कि जैसे कोई विदेशी भाषा है। मगर तिलेल का यातायात का रास्ता गुरेस से ही है। तिलेल के दूसरी तरफ द्रास का इलाका है पर दुर्गम मार्ग होने के कारण शायद साल में एक-आध आदमी ही उस रास्ते से जाता हो। गुरेसी और तिलेली में थोड़ा-सा ध्वन्यात्मक भेद अवश्य है मगर अधिक नहीं।

तिलेली → नेंड़्बा (नही रे)
गुरेसी → नेवा (नही रे)
तिलेली → ओव (हां)
गुरेसी → ओ (हां)
तिलेली → खलोंव् (निकाला)
गुरेसी → खलौ (निकाला)
तिलेली → छोंरौ (रखा)
गुरेसी → छरी (रखा)

यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि तिलेल में श्रिण्या भाषा का स्वरूप अमिश्रित और अन्य भाषाओं के प्रभाव से रहित है। श्रिण्या मातृभाषा होने के कारण, मैं दोनों में विशेष फर्क नहीं समझता हूँ। इस कारण इस लेख में जो भी साग्रमी प्रस्तुत कर रहा हूँ, उसका भाषात्मक प्रचलन गुरेस-तितेल में एक समान है।

इस घाटी को श्रिण्या भाषा में 'गुरैय' और यहाँ के नगर निवसियों को 'गुराच्चु' कहते हैं। कुछ लोगों की राय है यह फारसी भाषा का 'गुरेज' शब्द है जिसका अर्थ है—भागना। मगर इससे कोई स्पष्टि नहीं होती है। कई विदेशी विद्वानों का तर्क है कि यह शब्द फारसी "गावरेज" है, जिसका अर्थ है तीन कोस, जो ६ मील बनता है। गुरेस घाटी की लंबाई भी यही है। मेरा अपना अन्दाज है कि इसका ताल्लुक संस्कृत के निम्नलिखित शब्दों से होना चाहिए (१) गिरि+आस्य, (२) गिरि+आलय, (३) गरिज। यदि गुरेस की भौगोलिकता सामने रखें तो अवश्य ही इन तीनों में कोई इस प्रदेश का आदिम नाम होना चाहिए। गुरेस का आकार चौड़े और खुले मुख के समान

है अतः गिरि+आस्य यानी पर्वत के मुख में, गिरि+आलय तो सारा गुरेस है ही और यदि यह मानें कि पर्वत 'पर' या 'में' पैदा होने वाले मनुष्य, तो भी स्पष्ट होती है जैसे संस्कृत में "गिरिजा" पार्वती को कहते हैं। मगर गुरैय की आधुनिक अपभ्रंश ध्वनि गिरि+आलय के अधिक निकट है। मगर सवाल यह है, कि श्रिण्या-भाषा में यहाँ के रहने वालों को 'गुराच्च' कहते हैं। शायद कल्हण ने जो गिरिराष्ट्रीयः संकेत दरद के लिए किया है उसी का यह विगड़ा रूप है क्योंकि राज और राष्ट्र को श्रिण्या में 'राश' और 'राच' कहते हैं। गुरैय-घाटी चौड़ाई में कहीं भी आधे मील से अधिक नहीं है इस घाटी के चारों ओ गगनचुम्बी पर्वत की शृङ्खलाएँ खड़ी हैं। तिलेल में केवल दर्रे, खाइयाँ और घाटियाँ हैं, इन्हीं दर्रों के बीच में जहाँ भी जमीन का टुकड़ा है छोटी-सी बस्ती अवश्य मिलेगी। यही कारण है कि यहाँ की आबादी बहुत कम है, और गाँव दूर-दूर बिखरे पड़े हैं। कहने का अभिप्राय है कि सारा इलाका पहाड़ी है मगर हैरत-अंगेज बात यह है जितना पहाड़ीपन का असर कश्मीरी ज़बान पर है उतना यहाँ की जबान पर नहीं है। श्रिण्या हिन्दुस्तान के मैदानी इलाके में बोली जाने वाली जबानों के अधिक नजदीक है। मैं दावे से कह सकता हूँ श्रिण्या का जितना गहरा रिश्ता अन्य हिन्दुस्तानी ज़बनों से है उस हिसाब से कश्मीरी से कुछ भी नहीं है। श्रिण्या पहाड़ी इलाके की भाषा होने के बावजूद मैदानी मिज़ाज रखती है। इस तथ्य पर जितना ही सोचें कश्मीरी और श्रिण्या का रिश्ता उतना ही दूर होता जाता है, जो कि सही भी है।

इससे पहले कि मैं आगे बढ़ूँ, मैं उन भाषा-वैज्ञानिकों के बारे में दो एक बातें कहना चाहूँगा जिन्होंने वीर बनकर गलत या सही कुछ न कुछ काम अवश्य किया है। इनमें ग्रियर्सन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जार्ज ग्रियर्सन अपनी कृति में इस ज़बान के ग्रैमर का एक खाका पेश करते हैं और शिण्या भाषा की विभिन्न विभाषाओं और बोलियों को अलग-अलग खण्डों में प्रस्तुत करते हैं। मैं यहाँ केवल गुरेसी श्रिण्या भाषा के बारे में ही कुछ कहना चाहता हूँ। साठ मील लम्बी तिलेल-गुरेस घाटी को वह केवल छः मील की फरमाते हैं। ज़ाहिर है उन्होंने तिलेल घाटी को एकदम अछूता छोड़ा है। गुरेस वे स्वयं कभी नहीं गये और तिलेल का उन्होंने कोई भी उल्लेख नहीं किया है। कुल मिलाकर उनका प्रयास यहाँ की भाषा के बारे में जेम्स विल्सन की पुस्तक है जिसकी अन्धाधुन्ध नकल उतार कर उन्होंने इस भाषा का विश्लेषण किया है। इस बात को ग्रियर्सन इशारों ही इशारों में स्वयं स्वीकारते हैं। मुझे यह पता नहीं कि दूसरी भाषाओं के बारे में उनका शोध कितना सही है। पर जहाँ तक गुरेसी और तिलेली का सवाल है यह एकदम ऊलजलूल और ध्वन्यात्मकता में एकदम असंगत और विकृत है। जो व्यक्ति ध्वनि को पकड़ नहीं सका है वह यह फ़तवा कैसे दे सकता है कि फ़लानी ज़बान फलां स्रोत से निकली है। मैं तो इसे पांडित्य का दिवाला समझता हूँ। मैं इस लेख में उस सारी गड़बड़ को प्रस्तुत करने में सशक्त नहीं हूँ जो उन्होंने अपने 'गुरेसी खण्ड' में की है। अतः मैं क्रिया-परक एक तालिका को लेकर उस असंगति को दिखाने का प्रयत्न करूँगा :—

वर्तमानकाल (मैं करता हूँ)[1]

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मौस थिम होंस	बेस थोन हांस
मध्यम पुरुष	तुस थे हों	छोंछ् थ्यान हांन
अन्य पुरुष	जुस थेई हो	जेंस थेइन हां

जबकि इसका शुद्ध एवं संगत रूप इस प्रकार होना चाहिए :—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मड्ःस् थेंइ्म् होंस् (हनोंस)	बेंस थोन हांस (हनेंस)
मध्यम पुरुष	तुस् थे हों (हनों)	छोंछ थ्यान् हांत (हनेंत्)
अन्य पुरुष	ज्र्स थेइ् हू (हनों)	ज्रेस् थेन हां (हनें)

ग्रियर्सन उक्त "मैं करता हूँ" वाक्य को उभयलिङ्गी समझकर चले हैं। जबकि इसका स्त्रीलिङ्ग श्रिण्या भाषा में विद्यमान है :—

"स्त्रीलिङ्ग" (मैं करती हूँ)

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मड्ःस् थेंइ्म् हेंस् (हनेंस)	ब्यास् थोन् हेंस् (हनेंस्)
मध्यम पुरुष	तुस् थे हनें (हेंड्)	छांछ् थ्यात् हनेंत् (हेंत्)
अन्य पुरुष	ज्रस् थेंइ हीं	ज्रास् थेंन् हें (हनिं)

शोक इस बात का है कि सर ग्रियर्सन श्रिण्या की प्रमुख ध्वनियों को पकड़ ही नहीं सके :—

ग्रियर्सन "ज" या जह् ; जबकि ध्वनि "ज्र" है। इसी प्रकार का अनर्थ अन्य ध्वनियों के साथ भी हुआ है। निम्नलिखित क्रिया सूची में जिसे ग्रियर्सन[2] ने प्रस्तुत किया है, किस कदर ध्वनियों का अनर्थकारी स्वरूप दिया है :—

ग्रियर्सन प्रस्तुत सूची (क्रिया)	शुद्ध क्रिया सूची
थियोण	थ्योंनि (करना)
ओन्ण	ओंनि (आना)
बोझोण	बंजोंनि (जाना)
खोण	खोंनि (खाना)
सोण	सोंनि (सोना)
बेंओण	बियोनि (बैठना)
पिओण	पियोनि (पीना)
वलिओण	वल्योंनि (उतारना)

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८, विभाग २, पृ० १८२।
२. वही।

चोकवोण	चौंक्योंनि (उठना)
बेइहोण	बेंयोंति (होना)
बिलिओण	शिल्योंनि (बीमार होना)
उंजाइलोण	ऊंव्यायोनि (भूख लगना)
देंओण	द्योंनि (देना)

इसके उपरान्त कुछ शब्दों को छोड़ ही दिया है। संभवतः विल्सन महोदय ने उनके रूप नहीं दिए होंगे पर आभास ऐसा दिया है जैसे उनका 'इन्फिनिट' है ही नहीं। निम्नलिखित वर्तमान-कालिक कृदन्तों में देखिए क्या कुछ हुआ है :—

ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत	**शुद्ध रूप, श्रिण्या भाषा का**
(वर्तमान कृदन्त)	(वर्तमान कृदन्त)
थइब हुँ	थेंइ॒ हू॒ँ (करता है)
एंइ हुँ	एंइ॒ हू॒ँ (आता है)
बोझुं	बोज॑ हू॒ँ (जाता है)
खा हुँ	खा हू॒ँ (खाता है)
सेंइ हुँ	सेंइ॒ हू॒ँ (सोता है)
बें हुँ	बें हू॒ँ (बैठता है)
दी हुँ	दी हू॒ँ (पीता है)
वलेंइ हुँ	वलेंइ॒ हू॒ँ (उतारता है)
चोकबेंइ हूँ	चंक्येंइ॒ या चंकेंइ॒ हू॒ँ (उठाता है)
बेंइ हुँ	बेंइ॒ हू॒ँ (होता है)
बिला हुँ	शिला हू॒ँ (बीमार होता है)
उनजाइल हुँ	उव्यालु॒ हू॒ँ (भूखा है)
देइ हुँ	देइ॒ हू॒ँ (देता है)

अन्य पुरुष भूतकाल

ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत	**शुद्ध रूप, श्रिण्या भाषा का**
थाउ	थंवु॒ (उसने किया)
आलु	आलु॒ (आया)
गाउ	गंव् (गया)
खिआउ	खेंव् (खाया)
सुत्तु	सुतु॒ (सोया)
बेंहतु	बेटु॒ (बैठा)

पिआउ	पियौव् (उसने पिया)
बलउ	वलीव (उतारा)
चोकबिलु	चौंकि़लु (उठा)
बिलु	बिलु (हुआ)
बिलाल	शिलालु (बीमार हुआ)
उनयाइल	उञ्यालु (भूख लगी)
याउ	दंव (दिया)

मेरा उद्देश सिर्फ़ यह दिखाना है कि ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत श्रिण्या भाषा की जो भी भाषात्मक सामग्री 'भाषा सर्वेक्षण' के आठवें वाल्यूम और दूसरे हिस्से में दी है वह वाक्य-गठन में, ध्वनि में, प्रयोग में और भाषात्मक संरचना में एकदम अस्पष्ट, असंगत और एक भयानक भ्राँन्ति है। मुझे तो आश्चर्य इस बात का अधिक होता है कि किस तरह उन्होंने यह दावा किया है कि कश्मीरी, श्रिण्या वर्ग की भाषा है जब कि कश्मीरी और श्रिण्या का कोई सम्बन्ध ही नहीं। मैं आगामी लेख में ग्रियर्सन द्वारा स्थापित इस भ्रान्ति का निवारण करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ताकि यह गलत-फहमी हमेशा के लिए दूर हो जाय। अब मैं श्रिण्या (शीना) भाषा की क्रिया पर आता हूँ।

श्रिण्या भाषा में क्रिया विस्तार

(हिन्दी)	(श्रिण्या)
वर्तमान काल :—	
(१) रहीम खेलता है	रहि़मसं ञ्चिके थेंइ़ हूँ।
(२) ताजा गाती है	ताजिस् गैइ़ देंइ़ हूँ।
पढ़	रस्
चल	यासं
खा	खां
जा	बौअ्
ला	अटेंअ
पढ़ना	रजोंनि
खाना	खोंनि
जाना	बौजोंनि
लाना	अट्योनि
(क) अब्दुल हंसता है।	अब्दुल हाजें हूँ।
(ख) रहीम गाय को देखता है।	रहिमूसं गावु ञ्चकैय् हूँ।
(ग) बच्चा रोता है।	बालूसं हिवें देंइ़ हूँ।
(घ) रहीम किताब पढ़ता है।	रहिमूसं किताल पऍय् हूँ।

क्रिया का सामान्य रूप "नि" प्रत्ययान्त :—

हिन्दी	श्रिण्या
ठहरना	बसृम्योंनि
बैठना	बेंयोनि
आना	ओंनि
जाना	बोंजोंनि
चलना	यजोंनि
रोना	हिवंद्योंनि
सोना	सोंनि
हंसना	हजोंनि
कूदना	हिगिद्योंनि
उछलना	प्रिकृद्योंनि

(हिन्दी)	(श्रिण्या)

अकर्मक क्रिया :—

(क) बालक हंसता है	बालं हाजेंअ हूँ
(ख) करीम चलता है	करिम याजं हूँ

सकर्मक क्रिया :—

(क) बालक हंसी हंसता है	बालुसं हाजि हाजं हूँ
(ख) करीम चाल चलता है	करिम यातं याजं हूँ

प्रेरणा में आकर भी अकर्मक क्रिया सकर्मक बन जाती है :—

(क) गाड़ी चलती है	गाड़ी याजेंअ् हीं
(ख) बैल गाड़ी को चलाता है	दोनुस् गाड़ी यजायें हूँ
(क) बच्चा सोता है	बालं सेंदॢ हूँ
(ख) मां बच्चे को सुलाती है	मास् बालं सयैय् हीं

प्रेरणार्थक क्रिया :—

उस्ताद बालक को पढ़ाता है	मास्टरुसं बलट् रजायि हूँ

द्विकर्मक क्रिया :—

बालक दूध पीता है	बालुसं दुत् पी हूँ।
रहीम बालक को दूध पिलाता है	रहिम्सं बलट् दुत पियायें हूँ
पिता बेटे को मेला दिखाता है	मालुस् बालट् तंमाशां पशायें हूँ

सामान्य वर्तमान काल :—मैं जाता हूँ, हो, है, हैं, हो, है।

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मों बोंजम् होंस्	बंअ् बोंजोन् हांस
मध्यम पुरुष	तु बोंजें हो	छोंअ् बोंजान् हांव्
अन्य पुरुष	सों बोंजें हूँ	सें बोजेन् हां

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मों बोंजेंम् हेंस्	ब्या बोंजोन् हेंस्
मध्यम पुरुष	तु बोंजें हें	छां बोजात् हेंव्
अन्य पुरुष	संअ् बोंजें हीं	सा बोंजेन् हें

संदिग्ध वर्तमान "मैं जाता हूँगा, हूँगी" (पुलिङ्ग)

उत्तम पुरुष	मों बोंजेम् आस्याम्	वें बोंजोन् आसोन्
मध्यम पुरुष	तु बोंजें आसे	छों बोंजाव् आसात्
अन्य पुरुष	सों बोंजेंअ् आसें	सें बोंजेन् आसेन्

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मों बोंजेंम् आस्यम्	ब्या बोंजोन् आसोन्
मध्यम पुरुष	तु बोंजें आसे	छां बोजात् आसात्
अन्य पुरुष	स्यं बोंजेंअ् असेंअ्	सा बोंजेंन् आसेन्

सामान्य भविष्यत् :—

"पुलिङ्ग" "मैं जाऊँगा"

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मों बोंजेंम्	वें बोंजोंन्
मध्यम पुरुष	तु बोजें	छोंय बोंजात्
अन्य पुरुष	सों बोंजेंअ्	सें बोंजेन्

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मो बोंजेंम्	ब्या बोंजोन्
मध्यम पुरुष	तु बोंजे	छां बोंजात्
अन्य पुरुष	स्यं बोंजेअ्	सा बोंजेन्

आसन्नभूत :<पुलिङ्ग>"मैं गया हूँ"

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मों गास् होंस	वें ग्येस् हांस्
मध्यम पुरुष	तु गा हों	छों ग्येत् हांव्
अन्य पुरुष	सों गव हूँ	सें ग्ये हां

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मों ग्येंस् हेंस्	ब्या ग्येस हेंस्
मध्यम पुरुष	तु ग्ये हें	छां ग्येत् हेंत्
अन्य पुरुष	स्यं ग्ये हें	सा ग्ये हें

पुपूर्णभूत < लिङ्ग > "वह गया था"

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मों गस् असुलोस्	बें ग्येस् असलोत्
मध्यम पुरुष	तु गा असुलो	छों ग्येत् असलेत्
अन्य पुरुष	सों गव् असुलु	सें ग्ये असलेंअ्

< स्त्रीलिङ्ग >

उत्तम पुरुष	मों ग्येस् असलेस्	ब्या ग्येस् असलेस्
मध्यम पुरुष	तु ग्ये असलेअ्	छां ग्येत् असलेत्
अन्य पुरुष	स्यं ग्येड् असलेअ्	सा ग्ये असलेअ्

(भाषा का वैज्ञानिक एवं तटस्थ अध्ययन एक ऐसा विषय है जिसे धार्मिक, व्यक्तिगत अथवा प्रादेशिक पूर्वाग्रहों से अछूता रखना चाहिए। देखा गया है कि कुछ दूषित मनोवृत्ति के लोग इस प्रकार के अध्ययनों को पूर्वाग्रहों के चश्मे से देखते हैं और साम्प्रदायिक वैमनस्य के विष का प्रचार-प्रसार व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए करने का प्रयत्न करते हैं। हमें हर्ष है कि गुरेस-निवासी श्रिण्या (शीना) भाषा-भाषी श्री मसूद सामूं ने इन सभी पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर अपनी भाषा की आत्मा और उसके स्वरूप को पहिचानने का प्रयत्न किया है। हमें इस बात का भी गर्व है कि संसार में प्रथम बार इस भाषा पर इस प्रकार का लेख इस पुस्तक में हम प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक

लद्दाखी लोक-गीत

दुर्जेय छेवांग
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सोपुर (कश्मीर)

लद्दाख़ प्रदेश भारत के धुर उत्तर में स्थित है। कुछ लोग (ललाट + अक्ष) ललाटाक्ष से लद्दाख़ शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं जो बिल्कुल भ्रामक है। लद्दाख़ 'लदकस' का बिगड़ा हुआ नाम है। लद्दाख़ी भाषियों को छोड़, अन्य भारतीय तथा विदेशी लोग 'लदकस' को लद्दाख़ कहते हैं। लद्दाख़ी भाषा में 'ला' का अर्थ 'दर्रा' है। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहाँ बहुत से दर्रे देखने को मिलते हैं। अतः 'लदकस' का अर्थ दर्रों से युक्त प्रदेश है। लद्दाख़ के लोग आज भी लद्दाख़ न कहकर 'लदकस' ही कहते हैं। लद्दाख़ भारत के जम्मू कश्मीर प्रदेश का एक भाग है, और संसार में सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित छोटा सा, किन्तु खूबसूरत प्रदेश है। समुद्रतल से ८००० फीट से ११५५० फीट की ऊँचाई पर स्थित होने के कारण वहाँ अत्यधिक शीत पड़ता है। यहाँ के निवासी सरल, भोले तथा निश्छल हृदय वाले हैं। यहाँ बौद्ध, मुसलमान तथा ईसाई, तीन धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। बहुमत बौद्धों का है। लद्दाख़ में प्रथम बार तिब्बत के 'छोसग्याल श्रीमागोन' के राजपुत्र 'लाछेन पलगोन' ने अपने राजवंश की स्थापना की थी। तब से देश विभाजन तक इनका राजवंश बराबर राज्य करता रहा।

लद्दाख़ के लोग कई जातियों से सम्बन्धित बताए जाते हैं 'सोगपा' अर्थात् मंगोल जाति से सम्बन्धित तथा 'ऽकस्पा' अर्थात् आर्य जाति से सम्बन्धित। मंगोल लोगों की आँखें उभरी हुई, नाक चपटी, गाल उभरे हुए तथा क़द न लम्बा, न अधिक छोटा, वरन् मध्यम होता है। इनका वर्ण गेंहुआ होता है। लद्दाख़ के लोग भी ठीक मंगोलों की भाँति हैं। प्राचीन काल के मठों की चित्रकलाओं से भी ऐसा ही ज्ञात होता है। इन चित्रों में से एक चित्र ऐसा है जिसमें एक बाघ को जंजीर से वृक्ष के साथ बाँधा हुआ है तथा उसके निकट एक व्यक्ति लम्बा चोगा और गोल बूता पहने तथा कमर में तलवार लटकाए बैठा है। मंगोल देश का भ्रमण करके वापिस आने वाले बहुत से लोग इस बात से सहमत हैं कि वहाँ की वेश-भूषा तथा लद्दाख़ की वेश-भूषा में कोई अन्तर नहीं। यह भी कहा जाता है कि मंगोल देश के लामाओं की

वेश-भूषा तथा पूजा पाठ करने का ढंग लद्दाख़ के लामाओं की भाँति ही है। मंगोल देश के लोग अपने सिर के पीछे लम्बे-लम्बे तथा अग्र-भाग में तनिक छोटे बाल रखते हैं। लद्दाख़ी भी ऐसे ही बाल रखते हैं। 'फकस्पा' अर्थात् आर्य जाति से सम्बन्धित लोग लद्दाख़ के 'दरज्ञिकस', 'दा', गरकोन', 'ह्रानु' तथा 'द्रास' आदि गाँवों में पाए जाते हैं। इन लोगों की भाषा आज दरद है। कहा जाता है कि इस जाति के लोग गिलगित के मार्ग से होते हुए लद्दाख़ में पहुँचे थे। लद्दाख़ के लोग आजकल भी इस जाति के लोगों को 'ब्रोकपा' नाम से अभिहित करते हैं। आर्य जाति से सम्बन्धित लोगों के एक और दल को लद्दाख़ में 'मोन' नाम से अभिहित करते हैं। ये लोग हिमाचल प्रदेश के 'करजा', ग्यूगती, स्पिती तथा खुनू आदि गाँव से आए थे। लद्दाख़ में गाने बजाने का सामान—शहनाई तथा ढोल—इन्हीं लोगों द्वारा पहुँचाया गया माना जाता है। आर्य जाति के ये लोग कश्मीर की ओर से व्यापार करने तथा भारतीय सेना की सेवा करने लद्दाख़ आए थे। धीरे-धीरे इन लोगों ने वहाँ की बौद्ध स्त्रियों के साथ विवाह रचाया तथा वहीं बस गये।

लद्दाख़ के बौद्धों के रीति तथा रिवाज गिलगित (जो आजकल पाकिस्तान के क़ब्जे में है) के बग्रोट नामक प्रदेश के मुसलमानों की रीति रिवाज से मिलते-जुलते हैं। बग्रोट प्रदेश के लोग गाय का दूध तथा मक्खन नहीं खाते। लद्दाख़ के 'ब्रोकपा' लोग भी गाय का दूध तथा मक्खन नहीं खाते। आर्य जाति से सम्बन्धित गिलगित प्रदेश से आये ये लोग सिन्धु नदी के तटवर्ती गाँव—'अस्तोर', 'चीलस' तथा 'स्करदो' में निवास करते हैं। पहले ये लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, परन्तु आजकल इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं।

लद्दाख़ की भाषा—लद्दाख़ की भाषा मूल रूप से तिब्बत की भाषा है। ऐसा इससे भी सिद्ध होता है कि पंचभूत अर्थात धरती, आकाश, जल, वायु तथा अग्नि को तिब्बती भाषा में 'सा', 'छू', 'में', 'लूङ्ग' तथा 'नमखा' कहते हैं। लद्दाख़ी लोग भी 'सा', 'छू', 'मे', 'लूङ्ग' तथा 'नमखा' कहते हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रियों को तिब्बती में 'मिक', 'अर्नावा', 'स्ना', 'इल्चे' तथा 'लूस' कहते हैं। लद्दाख़ के लोग भी पांचेन्द्रियों को 'मिक', 'अर्नावा', 'स्ना', 'इल्चे' तथा 'लूस' ही कहते हैं। परन्तु लद्दाख़ की तथा तिब्बत की बोली में अन्तर है। लद्दाख़ की तथा तिब्बत की बोली में ही नहीं, वरन लद्दाख़ की अपनी बोलियों में भी अन्तर है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी देखा जाए तो हर छः अथवा सात मील के पश्चात बोली में अन्तर है।

बलती लोगों की (जो इस समय पाकिस्तान द्वारा अधिकृत 'गिलगित' तथा 'स्करदो' में रहते हैं) मूल भाषा तिब्बती है। बलती लोग आज भी अपनी भाषा में तिब्बत की शुद्ध साहित्यिक भाषा के शब्दों का प्रयोग करते हैं। यदि आज कोई अन्य भाषा-भाषी व्यक्ति तिब्बत की साहित्यिक भाषा लिखने का प्रयत्न करे तो मात्र बलती भाषा के माध्यम से लिखने का प्रयत्न कर सकता है। तिब्बत की शुद्ध साहित्यिक भाषा के उच्चारण में आजकल तिब्बत तथा लद्दाख़ में काफी परिवर्तन

आ गया है। जैसे 'डी', 'टी', 'डी'। वास्तव में ये 'डी', 'टी' तथा 'डी' नहीं अपितु 'ग्री', 'त्री' तथा 'ब्री' है। 'ग्री' का अर्थ छोटा चाक़ू, 'त्री' का अर्थ बड़ा चाक़ू तथा 'ब्री' का अर्थ 'लिखना' है। लद्दाख़ तथा तिब्बत के लोगों के उच्चारण में काफी भेद आ गया है। इसलिए अब लद्दाख़ तथा तिब्बत के लोग चाक़ू, बड़ा चाक़ू तथा 'लिखना' को 'ग्री', 'त्री', तथा 'ब्री' न कहकर 'डी', 'टी' तथा 'डी' ही कहते हैं, परन्तु बलती भाषी आजकल भी 'ग्री', 'त्री' तथा 'ब्री' ही कहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि बलती लोगों ने इस भाषा को लिखित रूप में सुरक्षित नहीं रखा है। सिर्फ व्यावहारिक जीवन में इस भाषा के शब्दों का प्रयोग करते हैं जबकि लद्दाख़ तथा तिब्बत में भाषा लिखित रूप में सुरक्षित है। यहाँ के साहित्यकारों के समय-समय के प्रयासों द्वारा इस भाषा ने काफी उन्नति की है।

आज से लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व इस भाषा के माध्यम से तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार तथा प्रसार हुआ था। उस समय लद्दाख़ एक स्वतन्त्र प्रदेश था और उन्हीं दिनों यहाँ भी बौद्ध धर्म तिब्बत से आया था।

इस भाषा में लिखित बौद्ध धर्म का सम्पन्न साहित्य तिब्बत में सुरक्षित था। चीनी आक्रमण के पश्चात अब तिब्बत में बौद्ध धर्म सम्बन्धी साहित्य-भण्डार सुरक्षित है अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता।

लद्दाख़ अब स्वतन्त्र भारत का एक अटूट अंग है। यहाँ के सरल लोग शान्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यहाँ धार्मिक सहिष्णुता है, इसी कारण भगवान बुद्ध तथा उनके बाद के अन्य अवतारों से सम्बन्धित धर्म-शास्त्र यहाँ सुरक्षित हैं। आजकल विदेशी पर्यटक लद्दाख़ को 'छोटा तिब्बत' के नाम से भी सम्बोधित करते हैं।

लद्दाख़ की वेश-भूषा—लद्दाख़ के लोगों की प्राचीनतम वेश-भूषा का नमूना 'अलची' गाँव के मठ में दीवारों पर बने चित्रों में सुरक्षित है। यह मठ आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व का तथा लद्दाख़ का प्राचीनतम मठ है। इस मठ की दीवारों पर उस समय के नरेशों तथा उनकी रानियों के चित्र बने हुए हैं। नरेश का वस्त्र कोट की भाँति है, परन्तु यह आजकल के कोट की तरह न होकर पैरों तक लम्बा है। सर पर ऊनी मोटे पट्टू की पगड़ी बंधी हुई है। यह पगड़ी भिन्न-भिन्न रंगों से रंगी गई है। रानियों की वेश-भूषा तथा आज की लद्दाख़ी नारियों की वेश-भूषा में कोई अन्तर नहीं। नारी तथा पुरुष के कमर-बन्द में भी कोई अन्तर नहीं।

'लाछेन पलगोन' ने तिब्बत से आकर लद्दाख़ पर राज्य किया है। इनके राज्य में आचार्य रिनछेन ज़ांगपो तिब्बत से लद्दाख़ आए थे तथा बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। इनके प्रचार से यहाँ बौद्ध धर्म उन्नति कर गया। लद्दाख़ तथा तिब्बत इन्हीं दिनों धार्मिक तथा राजनीतिक दृष्टि से एक दूसरे के अधिक निकट आ गये। धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से तिब्बत के निकट आते ही लद्दाख़ के लोगों ने तिब्बत की वेश-भूषा अपना ली। प्राचीन काल में रेशमी तथा मखमल जैसे मूल्यवान वस्त्र सिर्फ नरेश तथा इनके अधिकारी लोग पहन सकते थे। नरेश तथा

इनके उच्चवंशीय कर्मचारी लोग लाल ऊनी कपड़े पहनते थे। आम लोग श्वेत ऊनी कपड़े पहनते थे। उस समय स्त्रियाँ ऊनी काला वस्त्र पहनती थीं। नरेश सिंगे नंग्याल के राज्य में लोग सफेद तथा काली पगड़ी बाँधा करते थे। इससे सिद्ध होता है कि पहले लद्दाख़ में भी पगड़ी बाँधने का रिवाज था। परन्तु बाद में नरेश सिंगे नंग्याल ने अपने लिए मखमल की काली टोपी बनवाली। तब से लद्दाख़ में आम लोगों में भी टोपी पहनने का रिवाज चल पड़ा।

नरेश तथा इनके कर्मचारी अपने पूरे सिर पर बाल रखते थे। आम लोग आधे सिर पर बाल रखते थे। इसका उद्देश्य राजा तथा प्रजा में अन्तर दिखाना था। परन्तु महाराजा गुलाब सिंह के सेनापति ज़ोरावर सिंह के लद्दाख़ पर आक्रमण के पश्चात् लद्दाख़ के लोगों की वेश-भूषा में धीरे-धीरे अन्तर आने लगा। राजा तथा प्रजा के मध्य वस्त्रों का अन्तर नहीं रहा। लोग अपनी इच्छानुसार वस्त्र पहनने लगे।

पहले कह चुका हूँ कि लद्दाख़ पर तिब्बत के नंग्याल वंश के नरेशों ने राज्य किया है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सम्पूर्ण लद्दाख़ पर नंग्याल वंश के नरेशों का अधिकार नहीं था। अति प्राचीनकाल में लद्दाख़ प्रशासानिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित था। (१) पूर्वी लद्दाख़, (२) पश्चिमी लद्दाख़। पूर्वी लद्दाख़ को 'लदकस' तथा पश्चिमी लद्दाख़ को, (जिसमें आधुनिक करगिल जिला आता है) 'पुरीक' नाम से अभिहीत करते थे। पश्चिमी लद्दाख़ के 'पुरीक' प्रदेश के शासक बाद में मुसलमान हो गए और इनको 'पुरीक सुलतान' के नाम से पुकारते थे।

लोक गीतों का अध्ययन करने से एक नवीन तथ्य सामने आता है। वह यह कि पूर्वी लद्दाख़ (लदकस) पर राज्य करने वाले नरेशों के वंश का उपनाम 'शर-लाचेन' तथा पश्चिमी लद्दाख (पुरीक) पर राज्य करने वाले नरेशों के वंश का उपनाम 'गाशोपी स्करचेन' रखा गया था। आर्य जाति से सम्बन्धित लोगों[1] का अलग से अपना नरेश था। इनके नरेश के वंश का उपनाम 'मर्त्र्कस्पी स्करचेन' रखा जाता था।

यहाँ के लोक गीतों में 'शर-लाचेन' तथा 'गाशोपी स्करचेन' की प्रशंसा खूब की गई है परन्तु 'मर्त्र्कस्पी स्करचेन' की प्रशंसा में बहुत कम लोक गीत पाए जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से यह प्रान्त लद्दाख़ के अन्य भागों से बहुत पिछड़ा हुआ था तथा आज भी है। इस प्रदेश के एक गाँव में आज भी शुद्ध आर्य रक्त के लोग उपलब्ध हैं। कई विदेशी विशेषज्ञ इस जाति की खोज करने आये हैं। लद्दाख़ के अन्य लोग तथा 'शर-लाचेन' वंश के नरेशगण इन लोगों तथा इनके नरेश 'मर्त्र्कस्पी स्करचेन' को हीन दृष्टि से देखते थे।

---

१. यह वर्ग दरदी भाषा बोलता है क्योंकि दरद भाषी प्रदेश से होता हुआ यहाँ आया था। कश्मीर के उत्तर (लद्दाख़) में आर्यों के एक वर्ग को दरदी भाषा बोलते देख कर ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा को दरदी भाषा से जोड़ दिया। —सम्पादक

ऐसा इनके विषय में बनाए गए एक विशिष्ट मुहावरे से भी ज्ञात होता है जो इस प्रकार है :—

" 'ब्रोकपा' उल्ला मम्बोर, राग्री फेअल्ला मम्बोर ।"

अर्थात 'ब्रोकपा' को उच्च स्थान अथवा उपाधि न दो तथा तलवार को दीवार पर लटका कर न रखो। 'तलवार को दीवार पर लटका कर न रखो' से बिल्कुल स्पष्ट है कि तलवार यदि गिर गई तो किसी न किसी के घाव कर देगी, इसी भाँति 'ब्रोकपा' को उच्च पद देने से तथा उससे गोपनीय बात कहने से वह कभी न कभी अवश्य हानि पहुँचाएगा।

यहाँ एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि पूर्वी लद्दाख़ के 'शर-लाचेन' वंश के लोक-गीतकार कवियों ने लोक गीतों के आरम्भ में सूर्य तथा चन्द्रमा की प्रशंसा की है तथा पश्चिमी लद्दाख़ के 'गाशोपी स्करचेन' वंश के लोक-गीतकार कवियों ने लोक गीतों के आरम्भ में शुभ मुहूर्त तथा शुभ ग्रह-नक्षत्रों की प्रशंसा की है।

लोक गीत—लद्दाख़ में अधिकांश लोक गीत नरेशों तथा लामाओं की प्रशंसा में रचे गये हैं। लद्दाख़ को लामाओं का देश भी कहा जाता है। इस दृष्टि से लामाओं तथा मठों की प्रशंसा में अधिक लोक गीत पाया जाना स्वाभाविक है।

वर्गीकरण की दृष्टि से लद्दाख़ के लोक गीतों को नौ भागों में विभाजित किया है, जो इस प्रकार हैं :—

१. स्तेनडेल लू—अर्थात मंगल कार्य सम्बन्धी गीत। ये गीत बौद्धों के नवीन वर्ष के उत्सव के आरम्भ में तथा अन्त में गाया जाता है।

२. बकस्तोन लू—अर्थात विवाह गीत।

३. छांग लू—अर्थात मदिरा सम्बन्धी गीत। लद्दाख़ में छांग नामक मादक पेय का अधिक प्रयोग करते हैं। इसलिए यहाँ के लोक गीतों में छांग की प्रशंसा तथा इसका अधिकांश वर्णन हुआ है।

४. जूंगलू—अर्थात बड़े-बड़े उत्सवों में गाए जाने वाले लोक गीत।

५. गींग लू—लोक गाथाओं पर आधारित काल्पनिक गीत।

६. शोन लू—इस प्रकार के गीत हाथों में हाथ मिलाए, खड़े होकर, गोलाकार चक्कर लगाते हुए गाते हैं।

७. जींग मोस लू—अर्थात बुआई के गीत। खेतों में बीज बोते समय वहाँ के कृषक बैलों की प्रशंसा में गाते हैं।

८. छिक लू—अर्थात व्यंग्य गीत अथवा प्रेम गीत।

९. जबरो—इस प्रकार के गीत खड़े होकर, नाचते हुए गाते हैं। ये अधिकांशतः तिब्बत तथा लद्दाख़ के खानाबदोश (चांगपा) लोगों में अधिक प्रचलित हैं। इन विषयों पर आधारित लोक गीतों के अतिरिक्त भी अन्यानेक लोक गीत पाए जाते हैं।

प्रस्तुत लेख में स्थानाभाव के कारण प्रत्येक विषय पर आधारित गीतों का उदाहरण देना असम्भव है। फिर भी कुछेक गीतों का उदाहरण देना उचित समझता हूँ।

जैसे संसार के अन्य भागों में उत्सव होते हैं, उसी भाँति लद्दाख के निवासियों के भी अपने उत्सव हैं। शेष संसार से कटे रहने के कारण, और अन्य किसी प्रकार के मनोरंजन के साधनों से वंचित होने के कारण, यहाँ छोटे-छोटे उत्सव भी पूरे उत्साह से मनाये जाते हैं। इन उत्सवों के समय यहाँ के लोग अपने हृदय की सम्पूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं। धार्मिक उत्सवों को छोड़, अन्य उत्सवों में नाच-गाने का आयोजन खूब होता है। इस प्रदेश में छोटे-मोटे सामाजिक उत्सव होते ही रहते हैं।

मंगल कार्य सम्बन्धी एक गीत इस प्रकार है :—

नमस्तोत थोनबोना स्करछोकशिक मांगसे।
गुङ्ङम्स थोनपोला स्करछोकशिक मांगसे।
ङोनदुम तायंग थूप्पा, स्करछेन नांग स्पलजांगस।
तांगपोए तायंग स्तेनडेल, चिकपा नांग छुकस्शीक,
स्तेनडेल जांगपो चिकपा, देना छुकस्शीक।

यह लोक गीत वहाँ के मेला लोसर (नवीन वर्ष) के आरम्भ में गाते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में नक्षत्रों की प्रशंसा इस प्रकार की है :—

विशाल आकाश में सहस्रों तारे टिमटिमा रहे हैं। इनमें 'स्पलजांग' (शुक्र) नक्षत्र ही सबसे महान तथा उज्ज्वल है। हम प्रार्थना करते हैं कि प्रथम मंगल कार्य का प्रथम चरण महान तथा उज्ज्वल नक्षत्र 'स्पलज़ांग' से ही आरम्भ हो।

लिङ्ङजी तायंग दीगारू, ओतसल कोंगमा,
जमलिङ्ङ तायंग दीगारू, ओतसल कोंगमा।
ङोनदुम तायंग थूप्पा, ज़ीलज़ा नांग ज़ोल्का।
ङोनदुम तायंग थूप्पा, ग्युस्कर नांग ज़ोम्मो।

इन पंक्तियों में नक्षत्रों के पश्चात सूर्य तथा चन्द्रमा की प्रशंसा इस प्रकार की है :—

संसार को प्रकाशित करने वाले अन्यानेक नक्षत्र हैं परन्तु इनमें सूर्य तथा चन्द्रमा ही सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा महान हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे प्रथम मंगल कार्य का द्वितीय चरण सूर्य तथा चन्द्रमा से आरम्भ हो।

कांगस्तोत तायंग थोनबोना, कांगस्सी सिंगे।
कांगसग्यान तायंग थोनबोना, सिंगे नांग युरल।
ङोनदुम तायंग थूप्पा, सिंगेनांग युरल।
ङोनदुम तायंग थूप्पा, कांगसेंग नांग करमो।

तांगपोए तायंग स्तेनडेल, सूम्पा, नांग छुकस्शीक।
स्तेनडेल ज़ांगपो सूम्पा, देना छुकस्शीक।

उपर्युक्त पंक्तियों में सूर्य तथा चन्द्रमा के पश्चात 'हिम के सिंह' की प्रार्थना इस प्रकार की है :—

विशाल हिम के ऊपर अनेकों सिंह निवास करते हैं इन सिंहों में सबसे महान तथा प्रसिद्ध हिम का सिंह ही है। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे प्रथम मंगल कार्य का तृतीय चरण हिम के सिंह[1] से आरम्भ हो।

डाकस्तोत तायंग थोनबोना, लास्कीन नांग ज़ोम्बो।
डाकग्यान तायंग थोनबोना, लास्कीन नांग बर्गन।
ङोनबुम तायंग थूप्पाओ, स्कीनछेन नांग बर्गन।
ङोनबुम तायंग थूप्पाओ, शाठन नांग ज़ोम्मो।
तांगपोए तायंग स्तेनडेल, जीपा नांग छुकस्शीक।
स्तेनडेल ज़ांगपो जीपा, देना छुकस्शीक।

इन पंक्तियों में हिम के सिंह के पश्चात अब पर्वत निवासी वन के पशुओं की प्रशंसा की है :—

उच्च पर्वतों पर वन के अनेक पशु निवास करते हैं। इन पशुओं में सबसे अधिक महान तथा प्रसिद्ध हिरन ही है। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे प्रथम मंगल कार्य का चतुर्थ चरण महान तथा प्रसिद्ध हिरन से ही आरम्भ हो।

छोस्तोत तायंग थोनबोना, ज़ामो नांग सेरमिक,
छोरग्यान तायंग थोनबोना, ज़ाठन नांग ज़ोम्मो।
ङोनबुम तायंग थूप्पा, ज़ामो नांग सेरमिक,
ङोनबुम तायंग थूप्पा, ज़ाठन नांग ज़ोम्मो।
तांगपोए तायंग स्तेनडेल, इल्ङापा नांग छुकस्शीक,
स्तेनडेल ज़ांगपो इल्ङापा, देना छुकस्शीक।

उपर्युक्त पंक्तियों में वन के पशुओं के पश्चात सागर निवासिनी मछली[2] की प्रशंसा की है :—

विशाल सागर में अनेकों मछलियाँ निवास करती हैं। इन अनेकों मछलियों से सबसे अधिक महान तथा प्रसिद्ध 'सेरमिक' मछली ही है। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे मंगल कार्य का पंचम चरण 'सेरमिक' मछली से ही आरम्भ हो।

---

१. संसार के सारे हिमबद्ध प्रदेशों में इस प्रकार हिम का सम्मानजनक मानवीकरण पाया जाता है। —सम्पादक

२. आज के लद्दाख में कभी सागर रहा होगा यह भू-वैज्ञानिक भी मानते हैं। —सम्पादक

खरस्तोत तायंग थोनबोना, मिछेन नांग कोंगमा,
खरग्यान तायंग थोनबोना, डकजन नांग जोम्मो।
ङोनदुम तायंग थूप्पा, मिछेन नांग कोंगमा,
ङोनदुम तायंग थूप्पा, डकजन नांग जोम्मो।
तांगपोए तायंग स्तेनडेल, टुकपा नांग छुकस्शीक,
स्तेनडेल जांगपो टुकपा, देना छुकस्शीक।

इन पंक्तियों में सागर की मछली के पश्चात राजभवन की प्रशंसा की है :—

विशाल राजभवन में प्रजापति तथा इनके कर्मचारी अन्य उच्चवंशीय लोग निवास करते हैं। इनमें सबसे अधिक महान तथा प्रसिद्ध प्रजापति ही है। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे प्रथम मंगल कार्य का षष्ठम चरण प्रजापति से ही आरम्भ हो।

छोस्डा तायंग टुबजी नांग, जांगसुम नांग लामा,
छोस्डा तायंग टुबजी नांग, डाचुन नांग जोम्मो।
ङोनदुम तायंग थूप्पाओ, जांगसुम नांग लामा,
ङोनदुम तायंग थूप्पाओ, जांगसुम नांग लामा।
तांगपोए तायंग स्तेनडेल, दूनपा नांग छुकस्शीक,
स्तेनडेल जांगपो दूनपा, देना छुकस्शीक।

उपर्युक्त पंक्तियों में राजभवन के पश्चात अब धर्म-स्थल की प्रशंसा की है :—

पवित्र धर्म-स्थल पर महान लामा तथा इनके धर्मानुयायी अन्य लामागण निवास करते हैं। इनमें सबसे अधिक महान तथा प्रसिद्ध अवतारी लामा ही हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे प्रथम मंगल कार्य का सप्तम चरण अवतारी लामा से ही आरम्भ हो।

माखंग तायंग टुबजी नांग, यबयूम नांग फामा,
स्कीतखंग तायंग टुबजी नांग, ञेनडुंग नांग जोम्मो।
ङोनदुम तायंग थूप्पा, यबयूम नांग फामा,
ङोनदुम तायंग थूप्पा, ञेनडुंग नांग जोम्मो।
तांगपोए तायंग स्तेनडेल, ग्यादपा नांग छुकस्शीक,
स्तेनडेल जांगपो ग्यादपा, देना छुकस्शीक।

इसके बाद इनकी प्रशंसा की जाती है :—परिवार-भवन, संसार भर के लोग और उनके भगवान (देवता), प्रजापति ञीमा का राज्य (नांगकरचे), जल और उसका हिम रूप, सुन्दर तथा वीर पुरुष एवं नारियाँ।

प्रस्तुत लोकगीत का अपना एक सांस्कृतिक महत्व है। लद्दाख़ के बौद्धों के नवीन वर्ष का उत्सव इसी गीत से आरम्भ होता है। इस गीत में सूर्य, चन्द्रमा,

हिम के सिंह, मछलियाँ, हिरन, प्रजापति, महान लामा, माता-पिता, वीर पुरुष तथा नारियाँ, सब की प्रशंसा क्रम से की है तथा इन्हीं से प्रथम मंगल कार्य के शुभारम्भ की कामना की है। गीत का मुख्य भाव यह है कि जिस प्रकार इस समय लोग सहर्ष नवीन वर्ष का शुभारम्भ कर रहे हैं, उसी प्रकार आगामी वर्ष भी इसी भाँति इस उत्सव के शुभारम्भ के लिए भगवान से प्रार्थना करें। प्रार्थना में यह इच्छा व्यक्त की है कि सूर्य, चन्द्रमा, हिम के सिंह, मछलियाँ, हिरन, प्रजापति, महान लामा, माता-पिता, वीर पुरुष तथा नारियाँ ये सब आगमी वर्ष तक कुशल से रहें ताकि आगामी वर्ष के उत्सव का शुभारम्भ प्रसन्नता सहित हो सके।

नवीन वर्ष के उत्सव के अन्तिम दिन नाच तथा गाने का अन्तिम कार्यक्रम भी एक गीत से ही आरम्भ होता है। इसमें धन-दौलत की दृष्टि से देश के सम्पन्न होने की कामना व्यक्त की जाती है :—

शरगी छोकस्ना टाशिसी शोक, टाशिस यांगखिलमा,
शरगी छोकस्ना टाशिसी शोक, टाशिस सुमखीलमा।
आमे नोमो शोनथूतला शोक, टाशिस यांगखिलमा,
स्कलज़ांगस डोलमा शोनथूतला शोक, टाशिस सुमखीलमा।
टादेरू शिस, ग्यूरदेरू लकस,
अर्गावे स्तेनडेल डीक, स्कीतपे ज़ोमा शर।
स्कीत-स्कीत नांग छेन, अर्ग्याकस अर्ग्याकस नांग छेन,
जूला खोदा जू, जूला नमसी जू।

इन पंक्तियों में लद्दाख़ के पूर्व में स्थित देश के धन दौलत की निधि लद्दाख़ देश में एकत्रित होने की कामना की है :—

पूर्वी संसार के धन की निधि हमारे यहाँ एकत्रित हों। हमारा शुभ-लाभ हो। हमारे यहाँ धन की वृद्धि हो। सुमाता की सुपुत्री स्कलज़ांग डोलमा, इसी खुशी में तुम नृत्य के लिए उठ खड़ी हो। हे भगवान आपको लाख-लाख जूले (नमस्ते), आप धन्य हैं।

इस लोक-गीत में आगे चलकर लद्दाख़ के पूर्व ही नहीं पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर में जितने अन्य देश हैं, उन समस्त देशों की निधि भी लद्दाख़ देश में एकत्रित होने की कामना की गई है जिससे यहाँ का शुभ-लाभ हो तथा यहाँ की सम्पत्ति में वृद्धि हो। धन में वृद्धि होने से ही लोग प्रसन्न होंगे। इसी लिए अन्त में कहा गया है कि हम प्रसन्न मुद्रा सहित अपने-अपने घर जायेंगे। भगवान को धन्यवाद देते हुए कहते हैं कि ये सब कुछ तुम्हारी दया से ही हो सकता है। इसी गीत के साथ नवीन वार्षिक उत्सव का अन्त होता है।

अवतारी पुरुष **लामा की प्रशंसा में लोक-गीत** का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

रिनछेन सेरठी स्तेंगना, टिनचन इर्ज़्ञावे लामा,
जबस्पत स्कलग्यार इर्तनचिक, ङातंग यातोए स्मोनलम,
मिशेस मुनसेलगी ज़ोमा, टिनचन इर्ज़्ञावे लामा,
मिशेस मुनसेलगी ज़ोमा, तोकदन ङारिस टुलस्कू ।

अर्थ इस प्रकार है :—

मूल्यवान स्वर्ण सिंहासन पर महान लामा विराजमान हैं। हम भगवान से अपने महान लामा की दीर्घायु की प्रार्थना करते हैं। हमारा महान लामा अज्ञानरूपी अंधकार का निवारक है।

इद्दुकस्ङल छोत स्क्यापस्की इल्ज़ावा, टिनचन इर्ज़्ञावे लामा,
इद्दुकस्ङल छोत स्क्यापस्की इल्ज़ावा, तोकदन ङारिस टुलस्कू ।
गोसबोद रेस्कोंगी नोरबू, टिनचन इर्ज़्ञावे लामा,
गोसबोद रेस्कोंगी नोरबू, तोकदन ङारिस टुल स्कू ।

अर्थ इस प्रकार है :—

हमारा महान लामा हमारी विपत्तियों को दूर करने वाले हैं। हमारा अवतारी पुरुष लामा तोकदन ही हमारी विपत्तियों को दूर करने वाले हैं। हमारा महान लामा तोकदन हमारे लिए चिन्तामणि है। इसी चिन्तामणि की दया से हमारे जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं होती है। इत्यादि।

प्रेम गीत—छलिया प्रेमी के लिए प्रेयसी तड़पती है तथा अभिसार स्थल को याद करके कितनी चिन्तित होती है, इसका एक उदाहरण देखिए :—

नाङ्गगानोकस्सीनांग, सेनमो ला शीतु बिगना,
छुईनांग फारोल्ली, अर्ज़ा शकथांग थोङ्गङेद ।
दाची नमज़े तुसला, छु मोरोल, अर्ज़ा शकथांग योतपिन ।
बोमोए दुन्याती तुसला, अर्ज़ा शकथांग, शोकना डाबेर चोएत,
शिरिङ्ग गङ्गाचोए तुसला, अर्ज़ा शकथांग, शोकना डाबेर चोएत।

इन पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार है :—

नाङ्गगानोकस गाँव के मनमोहक दर्रे के ऊपर से दृष्टि डालें तो नदी के उस पार पथरीली भूमि दिखाई देती है। बहुत समय पूर्व तो यह भूमि सचमुच पथरीली थी परन्तु मेरे प्रेमी ने, जो मेरे लिए मेरा संसार है, इस पथरीली भूमि को इतना उपजाऊ बना दिया कि इस उपजाऊ भूमि पर आजकल भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षी आकर मधुर स्वर में चहचहाते हैं। 'शिरिङ्गगङ्गाचो' ने इस पथरीली भूमि को इतना उपजाऊ बना दिया कि इस उपजाऊ भूमि पर आजकल भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षी आकर मधुर आवाज़ में चहचहाते हैं। मुझे भी यह भूमि अब अति सुन्दर लगने लगी है।

छुईनांग फारोल्ली स्तरगे होतोंगङीआंग
सेस्त्रन्नी छर्कालिगचिक रोल्बा छोरेत ।
दे सेस्त्रन्नी छर्कालिगपो, ङा बोमोए इस्त्रोंगङी,
इस्त्रोंगखोकपिआंग जुकस्सेत ।

उस उपजाऊ भूमि के अखरोट के वृक्ष के नीचे बैठ मेरा प्रेमी वंशी बजाया करता था। उसकी वंशी की आवाज़ आज भी मेरी अन्तरात्मा में हलचल मचाती है।

ङानांग दुन्याती तमछतपो, सेरमो नस्सी डुर्दोक्र अर्दुन योतपीन ।
शिरिङ्ग गङ्गाचोनांग ङी तमछतपो, सेरमो नस्सी सुमछांग योतपीन ।
वेनांग स्तिगमे नाठतपो, बलथोती जूल फांगसे,
खेरबी नाछत योतपीन ।
बुस्केस्सी जूल फांगसे, खेरबी नाछत योतपीन ।
ङानांग दुन्याती, बर फेकनला,
स्तोंग चुकत्रीस्सी, स्तोंग लानेत योंगशिक ।
शिरिङ्ग गङ्गाचो नांग, ङा फेकनला,
खोए छेला ओबल योंगशिक ।

उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार है :—

उसने मेरे साथ प्रतिज्ञा की थी कि वह मुझे जीवन-संगिनी बनाएगा। शिरिङ्ग गङ्गाचो ने कहा था कि विवाह के पश्चात हम दोनों मिलकर खेत में परिश्रम करके अन्न उपजायेंगे तथा उससे छांग बनायेंगे। उसने यह प्रतिज्ञा भी की थी कि वह अपनी पूर्व पत्नी तथा बच्चों को त्याग देगा और मुझसे विवाह करेगा। परन्तु न जाने मेरे और उनके मध्य कौन आ टपकी जिस कारण उसने मुझे ठुकरा दिया। मैं भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि वह उस निर्लज्ज तथा निर्दयी को इस धरती पर से शीघ्र ही उठा लें जिसने मेरे चाहने वाले को मुझसे छीन लिया है।

एक युवती का विवाह अनिच्छित व्यक्ति के साथ हुआ है, वह अपने पूर्व प्रेमी को एक पथिक द्वारा सन्देश भेजती है :—

छुई नांग फारोल्ली शिरिङ्ग अर्तापा, ङा बोमोए ङोसला ञोन,
त्यामछोए फारोल्ली शिरिङ्ग अर्तापा, ङा अकस्कीतनांग जोम्बे ङोसला ञोन ।
बोमोए अता नांग मिंगबोला, ङा बोमोसंग लोन कालुक,
स्करवो गूतीनांग चांगराला, ङा अकस्कीतनांग जोम्बासंग लोन कालुक ।

अर्थ है :—

हे सरिता के उस पार जाने वाले घुड़सवार ! मेरी विनती सुन। हे सरिता

के उस पार जाने वाले घुड़सवार, मुझ 'अकस्कीत ज़ोम्बा' की विनती सुन। अपने स्करदो प्रदेश में मैं अपने पिता, भाई तथा गाँव वालों को सन्देश भेजना चाहती हूँ।

अर्गाखननी मिङनला ज़ेर, ङा बोमो ङुइनचिक छेनुक ज़ेर,
मिरगाखननी मिङनला ज़ेर, ङा अकस्कीत ज़ोम्बा अर्गोतिन छेनुक ज़ेर।
अकछननी अली फ़ूला ज़ेर, कांगबा अर्क्यांगसे ओमा ला, द्रोज्ञ दूक ज़ेर।

मेरे पिता, भाई तथा शुभचिन्तकों से कहना कि मैं अनिच्छित पति के साथ रोती हुई जा रही हूँ परन्तु मेरे शत्रुओं से कहना कि मैं अपने पति के साथ हंसती हुई प्रसन्न चित्त जा रही हूँ। 'अकछन अली' के पुत्र से कहना कि तुम पैर पसार कर बड़े मजे से धूप सेकते रहना। तुमने मुझे चाहते हुए भी प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की। अब मैं न चाहती हुई भी अनिच्छित व्यक्ति के साथ जा रही हूँ।

'शत्रुओं से कहना कि मैं हंसती हुई तथा प्रसन्नचित्त अपने पति के साथ जा रही हूँ' वाक्य से नारी हृदय की लोक-लाज की भावना का परिचय मिलता है। अपने प्रेमी को सन्देश में कहा है कि 'तुम पैर पसार कर धूप सेकते रहना'। यह एक विशिष्ट लद्दाख़ी मुहावरा है, जो जीवन के संघर्षों से दूर भागता हो, जीवन में परिश्रम न करता हो, उसी के लिए इस मुहावरे का प्रयोग करते हैं। 'अकछन अली' के पुत्र ने भी अकस्कीत से प्रेम तो किया, परन्तु अकस्कीत को प्राप्त करने के लिए संघर्ष नहीं किया।

हिमपात के कारण वन के पशु घास की तलाश में गाँव में उतर आते हैं तो गाँव वाले लम्बे-लम्बे डण्डे लेकर हिरन को घेराव में डालते हैं तथा बन्दूक वाला हिरन को मारता है। इस लोक गीत का यह उदाहरण देखिए :—

ङारी हानु नांग हनडंगस्मिननी, लिंगसा शीतु,
देला इर्खेपा ग्यासंग इर्ज्ञे जूने,
यांग इरगुकलुकशीक बेत।
ङी हानुनांग हनडंगस्मिननी, लिंगसा शीतु,
देला दोपा स्तोंगङोस, दो जूने,
यांग इरगुकलुकशीक बेद।

अर्थ इस प्रकार है :—

मेरे 'हानु' और 'हनडंगस्मिन' गाँव के इर्दगिर्द सौ-सौ शिकारी शिकार को घेराव में डालने की तैयारी कर रहे हैं। मेरे 'हानु' और 'हनडंगस्मिन' गाँव के निचले भाग में भी सौ-सौ शिकारी शिकार को घेराव में डालने की तैयारी कर रहे हैं।

ङारी रोंगयुल्ली तुबकगा, यांग ब्रुकछेनचिक इल्विर,
ङारी मिकसेरपा रागीला, बंग-बंग लोक बारेत।

ङारी बुरकारी स्मनञ्जस्सीनांग, यांग खाश्रो खूरे,
यांग गिगलुकसशीक बेत ।

'रोंग' गाँव से लाई गई मेरी बन्दूक से अब बादल के गर्जन के समान भयंकर आवाज़ निकलने वाली है। मेरी तलवार भी अब बादल के मध्य चमकने वाली विद्युत के समान चमकने वाली है। मेरा थैला भी अब तैयार है। इसमें माँस भरकर मैं प्रसन्नचित्त इधर-उधर विचरण करूँगा और फिर अपने घर जाऊँगा।

शीत ऋतु में भारी हिमपात होने पर समस्त धरती हिम की लपेट में आ जाती है। ऊपर के पशु घास न मिलने पर घास की तलाश में नीचे गाँवों में उतर आते हैं। हिरनों के झुंड को गाँव में देखते ही गाँव के लोग गाँव के इर्द-गिर्द जाकर हिरनों को घेराव में डालते हैं। हिरन भय के कारण इधर-उधर भागते हैं परन्तु उनके भागने का समस्त मार्ग बन्द है। अन्त में थकावट के कारण हिरन कहीं छिप जाते हैं तो शिकारी उन्हें बन्दूक से मारते हैं। घेराव डालने वाले लोगों के हाथों में लम्बे-लम्बे डन्डे होते हैं। इनमें से सिर्फ एक व्यक्ति के पास बन्दूक रहती है। इस लोक गीत में शिकारी कहता है कि उसके गाँव 'हानु' और 'हनडंगस्मिन' के इर्द-गिर्द उसके मित्र शिकारी घेराव डाल रहे हैं। उसे मालूम है कि थकावट के कारण हिरन अब कहीं न कहीं छिप जाएगा। अब उसको पूरा विश्वास है कि उसे बन्दूक चलानी है।

शीत ऋतु में श्रीनगर तथा लद्दाख़ के मध्य ज़ूजीला दर्रा बन्द रहने के कारण सम्बन्ध टूट जाता है। ज़ूजीला मार्ग सचमुच दुर्गम है। हिमपात के कारण पथिक अपने गाँव नहीं पहुँच पाता। वह माता ज़ूजीला से किस प्रकार प्रार्थना करता है, इसका उदाहरण देखिए :—

नमसूरुपी शरबाओ, शरबा सोदेन्ननजीक,
नमसूरुपी शरबाओ, शरबा अर्गामोचनजीक।
छुनञ्जीन पोना चुकञ्जीस्सी, छोग्रो नमखोरचिक योंगञेत।

अर्थ है :—

मेरे नमसूरू गाँव के लोग कितने भाग्यवान हैं। अपने-अपने घरों में सानन्द बैठे होंगे। यहाँ तो निरन्तर बारह दिनों से आकाश में मेघ छाए रहते हैं तथा निरन्तर हिमपात हो रहा है। इसी कारण ज़ूजीला मार्ग बन्द हुआ है।

राग्री खाओ मस्तनबा, ङाला छोग्रो नमथांगचिक स्तोनांग,
स्तारी खाओ मस्तनबा, ङाला छोग्रो नमथांगचिक स्तोनांग।
जगशीगी जगग्याला, ङारंग रंगयुलपिआंग लेबना,
छोग्रोना रस्केस खूरे, ङी मुजुराती ग्यालमोला ङस गो इञगुईक।
तकबीरी ताकपोला, ङा नमसूरू ला लेबना,
मिकमर नांग फोटोंगस खूरे, ङी ब्राती नांग ग्यालमोला, ङस गो इञगुईक।

उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ है :—

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि माता ज़ूजीला तलवार तथा कुल्हाड़ी लिये मुझे मारने आ रही है। माता ज़ूजीला से मैं विनती करता हूँ कि वह मुझे तलवार तथा कुल्हाड़ी न दिखाएँ वरन कृपा करके नीले आकाश का दर्शन करा दें अर्थात मौसम साफ करा दें। यदि नीले आकाश का दर्शन हो जाये तथा मार्ग खुल जाएँ तो मैं अपने गाँव नमसूरू पहुँच सकूँगा। हे माता ज़ूजीला, मैं तुम्हें माता ही नहीं, अपितु महारानी (मुज़ूराती ग्यालमो) भी कहता हूँ। यदि मैं इस बार सुरक्षित अपने गाँव पहुँच गया तो तुम से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सबसे स्वस्थ बकरा लेकर तुम्हारे पास वापिस आऊँगा। मेरी जीवन रक्षा के बदले में तुम्हें बकरे की बलि दूँगा तथा तुम्हारे सम्मुख अपना मस्तक झुकाऊँगा।

शसदेरीक शाखोलरीक सोंगना, ङा जगशीगी स्नाला तोङांग,
शसदेरीक शाखोलरीक सोंगना, ङा जगजोस्सी स्नाला तोङांग।
ङी ब्रातीनांग ग्यालमो, यारंग ले ग्यालमो।
ङी मुज़ूराती ग्यालमो खेनखेन।

अर्थ :—

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय तुम प्रकृति की एक बहुत बड़ी शक्ति हो। मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम अपना मार्ग खोल दें। तथा मुझे शीघ्राति-शीघ्र अपने गाँव नमसूरू पहुँचा दो। हे माता ज़ूजीला, हे महारानी (मुज़ूराती ग्यालमो), तुम महारानी ही नहीं, अपितु महान देवी हो। यदि मुझे अपने गाँव पहुँचा दें तो तुम्हारी बड़ी कृपा होगी।

इस गीत में ज़ूजीला के दुर्गम मार्ग का यथार्थ वर्णन मिलता है। निरन्तर हिमपात के कारण पथिक ज़ूजीला के इस पार फँसा है। अपने गाँव पहुँचने की आशा बिल्कुल नहीं है। प्रकृति के इस कठोर व्यवहार के सम्मुख वह हार जाता है और ज़ूजीला दर्रा को माता, महारानी तथा देवी, न जाने किस-किस नाम से पुकारता है।

हिमबद्ध पर्वतीय प्रदेश के कठोर जीवन के सभी पक्षों एवं रंगों को परिलक्षित करने वाले अनेकानेक लोक-गीत लद्दाख़ में पाये जाते हैं। इसी प्रकार लोक-नाटक तथा लोक-कथाओं की भी यहाँ प्रचुरता है। अफगानिस्तान, रूस, भारत, चीन तथा तिब्बत की सीमाओं के केन्द्र-बिन्दु गिलगिट के माध्यम से अनेकानेक संस्कृतियों की टक्कर झेलने वाले इस प्रदेश के लोगों ने अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को अपने लोक-साहित्य में जीवित रखा है। इस लोक साहित्य का समाज-शास्त्रीय अध्ययन अभी नहीं हुआ है। आशा है शीघ्र इस दिशा में कार्य किया जायगा। मैं स्वयं इसके लिए प्रयत्नशील हूँ।

लद्दाख के भित्ति-चित्र तथा कश्मीर

डा० अजयकुमार सिंह

लद्दाख भारतवर्ष का सुदूर उत्तरी सीमा प्रान्त है जो आरम्भ से ही अपने प्राकृतिक अनूठेपन के कारण कौतूहल की दृष्टि से देखा जाता रहा है। हिमालय की दुर्गम घाटियों में स्थित लद्दाख प्रान्त सामरिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है अपितु यह सम्पूर्ण पश्चिम हिमालय के साथ भारत के सांस्कृतिक इतिहास में अपना एक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय स्थान रखता है। ऐतिहासिक काल से लद्दाख भारतवर्ष का एक सीमा प्रान्त रहा है, जहाँ से भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रसार-प्रचार मध्य एशिया, तिब्बत, मंगोलिया और सूदूर पूर्व के देशों में हुआ, साथ ही भारत की महान भूमि पर अनेक सभ्यताओं तथा विदेशी जातियों ने प्रवेश किया। इस प्रकार लद्दाख उत्तर भारत और हिमालय के पार के देशों के मध्य एक सेतु बना।

भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक विषमताओं ने लद्दाख को भारतीय जीवनधारा से परोक्षरूप से थोड़ा-सा अलग-सा कर रखा है, परन्तु लद्दाख की संस्कृति और धर्म पर भारतीय प्रभाव यह सिद्ध करते हैं कि लद्दाख भारतवर्ष का एक अभिन्न अंग रहा है और भारतीय राजनीति, संस्कृति तथा धर्म की अविरल धारा से जुड़ा रहा है।

लद्दाख का प्राचीन इतिहास अभी तक पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है किन्तु प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अनुसार लद्दाख सहित, कैलास-मानसरोवर प्रान्त भारतवर्ष की उत्तरी सीमा के अन्तर्गत थे।[1] लद्दाख से प्राप्त ऐतिहासिक व पुरातात्विक सामग्री के अध्यन से यह निष्कर्ष निकलता है कि लद्दाख की प्राचीन सभ्यता का स्वरूप आज के स्वरूप से निश्चित रूप से भिन्न था। सातवीं शताब्दी के पूर्वकाल में लद्दाख संयुक्त सभ्यता का एक भाग था जो मध्य एशिया, अफगानिस्तान, ईरान के पूर्ववर्ती पठार तथा कश्मीर तक फैली हुई थी। प्राचीन काल से इस प्रान्त में व्यापारिक सभ्यता का विकास हुआ था जिसका कारण मुख्य रूप से मध्य भारत तथा कश्मीर से होते हुए व्यापारिक राज्य मार्गों का यहाँ से मध्य एशिया के प्रसिद्ध सिल्क मार्ग से जुड़ना था। ये मार्ग लद्दाख के उत्तर में स्थित ग्रेट हिमालय श्रृंखला के कर्राकोरम दर्रे से होते हुए यारकन्द, खोतान तथा काशगर को जाते थे। इन्हीं व्यापारिक राजमार्गों के समीप स्थित बौद्ध विहारों से प्राचीन भित्ति-चित्र-कला के अवशेष प्राप्त होते हैं जो भारतीय चित्रकला इतिहास के अमूल्य व महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं। ये भित्ति-चित्रों के अवशेष,

---

१. एस० सी० बाजपेई; द नार्दर्न फ्रन्टियर्स अव इण्डिया, कलकत्ता, १९७०, पृष्ठ २–८।



प्रज्ञापारमिता ; सुमसैक मन्दिर (आलची विहार) ग्यारहवीं शती ।

प्रज्ञ पारमिता ; मंजूश्री लखांग, अलची विहार । १३वीं शती । इसमें लद्दाखी शैली के उद्भवके चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं ।



मध्यएशिया जैसी कश्मीरी वेशभूषा वाला राजा का चित्र .सुमसैक मन्दिर, आलची विहार । ११वीं शती ।



मोंग्यु विहार से एक नारी-चित्र । ११वीं शती ।

पश्चिमोत्तर भारत की एक अत्यन्त विकसित मध्यकालीन चित्र शैली के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जो अब पूर्णतः लुप्त हो गयी है।

लद्दाख के बौद्ध-विहारों से प्राप्त भित्ति-चित्रों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं। प्रथम वर्ग के भित्ति-चित्रों के उदाहरण हमें प्राचीन विहारों से प्राप्त होते हैं, जो कालक्रम की दृष्टि से १०वीं से १३वीं शताब्दी के हो सकते हैं और उन पर बहुत स्पष्ट भारतीय प्रभाव है तथा वे भारतीय शैली के दीख पड़ते हैं। दूसरे वर्ग के चित्र; १४-१५वीं शताब्दी और उसके बाद के विहारों से प्राप्त होते है। शैलीगत दृष्टि से ये चित्र प्रथम वर्ग के चित्रों से भिन्न प्रकार के हैं और तिब्बती चित्र शैली के अधिक समीप हैं, यद्यपि इस शैली के उद्भव एवं विकास में पूर्व शैली का विशेष योगदान रहा है।

प्रथम वर्ग के भारतीय शैली के चित्र आजकल लद्दाख में दुर्लभ हैं। आजकल ये प्राचीन चित्रकला के उदाहरण केवल आलची और मौन्ग्यू बौद्ध विहारों में प्राप्त होते हैं। आलची और मौन्ग्यू विहारों में स्थित मन्दिरों में सुरक्षित प्राचीन भित्ति-चित्र अजन्ता शैली से प्रभावित जान पड़ते हैं। यदि हम इसे अजन्ता शैली का सुदूर उत्तर में विस्तार कहें तो अनुचित न होगा। जैसा कि हम जानते हैं भारतीय कला का बौद्ध धर्म के साथ सम्पूर्ण एशिया में विस्तार हुआ था, फलस्वरूप इसका स्पष्ट प्रभाव वहाँ की प्राचीन क्षेत्रीय कलाओं पर देखा जाता है। भारतीय कला इतिहास में गुप्तकाल को हम कला का स्वर्णिम युग मानते हैं, तथा इस समय के अजन्ता और बाघ की गुफाओं में निर्मित चित्र भारतीय चित्रकला के स्रोत (Fountain head) माने जाते हैं जिसका प्रभाव बाद में मध्य एशिया, अफगानिस्तान और कश्मीर की चित्रकला पर पड़ा।

लद्दाख से प्राप्त इन प्राचीन चित्रों की शैली के उद्भव व विकास में कश्मीर का विशेष योगदान रहा है। हमें ज्ञात है कि कम से कम आठवीं शताब्दी तक कश्मीर उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का सर्वप्रमुख केन्द्र था, तथा इसका बौद्ध धर्म के मध्य एशिया, लद्दाख और तिब्बत में प्रचार में मूल योगदान था। लद्दाख व तिब्बत से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि लद्दाख सहित पश्चिमी तिब्बत में बौद्ध धर्म की स्थापना व विकास गुगे के राजा ये-शे-मोद के प्रयासों से आरम्भ होते हैं। इस कार्य के लिए ये-शे-मोद ने अपने राज्य से कुछ मेधावी छात्रों को कश्मीर में बौद्ध धर्म व दर्शन की शिक्षा के लिए भेजा था। इन विद्यार्थियों में सर्वप्रमुख रिन-चन-जंग-पो (९५८-१०५५ ई०) था। रिन-चन-जंग-पो सत्रह वर्षों तक कश्मीर में विद्या अध्ययन करने के बाद गुगे लौटने पर अपने साथ कश्मीरी विद्वानों तथा कलाकारों का एक दल लाया। उसने ७५ कश्मीरी शिल्पकारों की मदद से सम्पूर्ण पश्चिमी तिब्बत राज्य में (जिसका लद्दाख भी एक भाग था) १०८ मन्दिर तथा विहारों का निर्माण किया।[1] यह काल लद्दाख के इतिहास में बौद्ध धर्म के पुनः जागरण काल के नाम से जाना जाता

---

१. ए० एच० फ्रैंके; एन्टीक्विटीज अव इण्डियन तिब्बत, कलकत्ता, १९१४, पृष्ठ ५०।

है। रिन चन जंग पो के निर्देशन में चल रहे इस धर्म आँदोलन में जिन अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ उन्हें अधिक आकर्षक बनाने तथा बौद्ध धर्म की अनेक शिक्षाओं व सिद्धान्तों को सरल और ग्राह्य बनाने के लिए सुन्दर भित्ति-चित्रों तथा अन्य कलाकृतियों का प्रयोग किया गया। ये कलाकृतियाँ जैसे मूर्तियाँ, कांस्य प्रतिमायें आदि कश्मीर से आयात की गयी थीं तथा कुछ का निर्माण कश्मीर के शिल्पकारों द्वारा पश्चिमी तिब्बत व लद्दाख में ही हुआ। यहीं से कश्मीरी कला शैली का सुदूर पश्चिमी हिमालय तथा प० तिब्बत में प्रत्यारोपण हुआ।

आज चित्र-अवशेषों की दुर्लभता के कारण कश्मीर की प्राचीन चित्रकला के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है। (सिकन्दर बुतशिकन के द्वारा पाण्डुलिपियों, चित्रों, मन्दिरों तथा मूर्तियों का महा विध्वंस किया गया था और उसके बाद इनका तथा संगीत-नृत्य आदि का ह्रास ही होता गया) किन्तु कश्मीर से प्राप्त मूर्तिकला के उदाहरणों, अफगानिस्तान के बामियान, ककराक तथा फोन्दुकिस्तान विहारों से प्राप्त भित्ति-चित्र तथा मध्य एशिया के अनेक बौद्ध विहारों से प्राप्त चित्रों के आधार पर कश्मीर की चित्र शैली के विषय में एक परिकल्पना की जा सकती है। प्रोफेसर जे० हैकिन[1] के अनुसार काशगर, खोतान आदि मध्य एशिया के विहारों से प्राप्त प्राचीन भित्ति-चित्रों पर जो भारतीय प्रभाव दीखता है वह कश्मीर की कला द्वारा हो सकता है, अर्थात् अनेक भारतीय तत्व जो वहाँ के चित्रों में हैं, वे कश्मीर की कला शैली के माध्यम व कश्मीरी चित्रकारों के द्वारा रूढ़ हुए होंगे। प्रोफेसर गुसेप तुच्ची[2] (प्रसिद्ध इतालवी कला-मर्मज्ञ) के अनुसार कश्मीरी चित्रकला के मध्यकालीन (११वीं सदी के) उदाहरण सतलज की ऊपरी घाटी (कैलास-मानसरोवर प्रान्त) में मान्ग नान्ग विहार से प्राप्त होते हैं।

लद्दाख के आलची और मौन्यू विहार के प्राचीन मन्दिरों से प्राप्त चित्रों के अवशेष मान्ग नान्ग विहार से प्राप्त चित्रों की शैली से बहुत मेल खाते हैं।

इन चित्रों के निर्माण का समय, वहाँ के प्राचीन मन्दिरों के निर्माण काल के समकालीन है। इन मन्दिरों में विशेष मरम्मत या फिर से चित्रकारी के चिह्न नहीं मिलते हैं जैसा कि लद्दाख के अन्य विहारों के चित्रों को बौद्ध धर्म के अनेक सम्प्रदायों के उत्थान या उनके प्रभाववश, परिवर्तित किया गया।

लोकोक्तियों के अनुसार भी आलची, मौन्यू, समदा और न्यारमा विहार रिन चन जंग पो के द्वारा ११वीं शताब्दी में बनवाये गये थे जिनमें से न्यारमा तो अब पूर्णतः

---

१. जे० हैकिन; स्टडीज इन चाइनीज आर्ट एण्ड सम इण्डियन इन्फ्लूएन्सेस, लन्दन, १९३८, पृष्ठ १०।

२. जी० तुच्ची; इण्डियन पेन्टिंग्स इन वेस्टर्न तिबेतन टेम्पल्स, आर्तीबस एशियाइ, न० ८, १९३७, पृष्ठ १९१–२०४।

ध्वस्त हो चुका है। अतः आलची और मौन्यू के भित्त-चित्र के अवशेषों का काल ११वीं शताब्दी माना जा सकता है।

प्राचीन भित्ति-चित्रों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें आलची विहार के दो प्राचीन मन्दिरों से प्राप्त होते हैं। लगभग हजार वर्षों के बाद, आज भी इन चित्रों के रंग बहुत ही ताजे व चमकदार हैं जैसे उन्हें अभी अंकित किया गया हो। इन सभी चित्रों की विषयवस्तु बौद्ध धर्म से सम्बन्धित देवी-देवता हैं। चित्र लघुचित्रों की परम्परा में अंकित हैं जिन पर एक चमकदार लेप किया गया है जो रंगों को जलवायु तथा वातावरण के प्रभाव से सुरक्षा प्रदान करता है। इस तरंह के लेप का प्रयोग प्रत्येक प्राचीन विहार के भित्ति-चित्रों पर मिलता है।

विहारों की दीवारों को चित्रित करने में चित्रकार ने अपने कला-कौशल के अतिरिक्त असीम धैर्य का परिचय दिया है। चित्रकार ने जितने परिश्रम व साधना से मुख्य चित्रों को अंकित किया है उतने ही परिश्रम और लगन से उसने घटना क्रम के छोटे से छोटे चित्र को बनाया है, यहाँ तक कि एक इंच के आकार के मानव-चित्रों में पूरा विवरण तथा प्रभाव उत्पन्न किया गया है। चित्रों में छाया, प्रकाश का संयोजन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। चित्रों में वास्तविक प्रभाव व सजीवता उत्पन्न करने में कलाकार ने अजन्ता की परम्परा का ही निर्वाह किया है। इसी प्रकार भावाभिव्यक्ति में भी चित्र अजन्ता शैली की शृंखला के जान पड़ते हैं। आलची व मौन्यू के मन्दिरों में चित्रित स्त्रियाँ अजन्ता में चित्रित सुन्दरियों के समकक्ष जान पड़ती हैं और कहीं-कहीं तो ये अलंकरण व कमनीयता में अजंता की नारियों से भी अधिक आकर्षक दीख पड़ती हैं। चित्रकार ने भारतीय कला की परम्परा के अनुसार नारी-सौन्दर्य के आदर्शों तथा प्रतिमानों को चित्रों में स्थापित किया है और उनके अंकन में विशेष अभिरुचि दिखाई है।

चित्रों में गहराई व आयतन के प्रभाव को उत्पन्न करने वाले तकनीकी तत्वों को (Tonal Variation) तथा (Colour Gradation) के द्वारा भलीभाँति प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रों की प्रमुख विशेषता वस्त्रों के अंकन में है। अजंता के नारी चित्रों व मध्यकालीन भारतीय कला की नारी मूर्तियों के अंकन के विपरीत इन चित्रों में स्त्रियों के शरीर पूर्ण रूप से वस्त्रों से ढके अंकित किए गए हैं किन्तु वस्त्रों को इतना पारदर्शी बनाया गया है कि वे नारी-शरीर के अवयवों को अनावृत-सा कर देते हैं। इन वस्त्रों को बहुत ही अलंकृत दिखाया गया है तथा उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण को अंकित किया गया है जिससे ये चित्र बहुत ही स्वाभाविक दिखाई पड़ते हैं।

कलाकार ने चित्रों के अंकन में विविधता दिखलाई है किन्तु जब कभी बोधिसत्व या बुद्ध के चित्र का अंकन किया गया है, वहाँ पर चित्रकार ने एक निश्चित रूप व योजना के अन्तर्गत कार्य किया है जिसके फल-स्वरूप इस प्रकार के चित्रों में एकरूपता-सी आ गयी है। ऐतिहासिक तथा धार्मिक घटनाओं के चित्रण में सामन्यजन तथा राज-परिवारों के लोगों में हम स्पष्ट रूप से भारतीय, लद्दाखी तथा तिब्बती मूल

के लोगों को पहचान सकते हैं। स्त्रियों व पुरुषों के वस्त्रों में हमें भारतीय वस्त्रों के साथ-साथ मध्य एशियाई वस्त्रों का प्रभाव देखने को मिलता है। जैसा कि हमें ज्ञात है जलवायु की समानता के कारण ही मध्य एशियाई, तिब्बती तथा कश्मीरी वस्त्रों में समानता हो सकती है। कश्मीर में भी मध्य एशिया जैसे वस्त्रों का प्रचलन था, इसके प्रमाण हमें हारवन से प्राप्त टाइल्स पर उत्कीर्ण चित्रों से मिलते हैं। कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी' में कश्मीर में मध्य-एशियाई वस्त्रों के प्रचलन का जिक्र है। कश्मीर तथा मध्य-एशिया के बीच सांस्कृतिक-सम्बन्ध, (दोनो के पड़ोसी तथा भौगोलिक दृष्टि से समान परिवेश होने के कारण) बहुत स्वाभाविक रहे होंगे।

चित्रों में कलाकार ने पृष्ठभूमि में स्थापत्य का जो अंकन किया है वह कश्मीर के तत्कालीन बौद्ध तथा हिन्दू स्थापत्य का प्रतिबिम्ब है। अतः हम निश्चित होकर कह सकते हैं कि इन चित्रों का निर्माण कश्मीर के कलाकारों द्वारा हुआ होगा और इसीलिए उन्होंने तत्कालीन कश्मीरी संस्कृति का चित्रांकन ही इन विहारों में किया।

चित्रों की शैलीगत विशेषता मानव चित्रों की आँखों के अंकन में मिलती है। चित्रों में आँखों को पतला (Narrow) अथवा बादामी आकार का दिखाया गया है तथा तीन-चौथाई मुड़े हुए चेहरों (Three-fourth profile) से एक आँख को बाहर निकलते हुए अंकित किया गया है जो पश्चिम भारत के पोथी चित्रों में बहुलता से मिलता है।

नारी तथा पुरुष चित्रों में कपोलों को भरा-भरा तथा चेहरे को गोल दिखाया गया है, साथ ही गले की रेखाओं को भी अंकित किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख विशेषता पेट व नाभि-प्रदेश के अंकन में मिलती है जिन्हें कुछ उभरा तथा कसा हुआ दिखाया गया है; ये शैलीगत विशेषतायें हैं। इन चित्रों में हमें भारतीय तत्वों के अतिरिक्त मध्य एशिया, विशेषतः चीनी-तुर्कीस्तान के तत्व भी दीख पड़ते हैं। संभवतः ये तत्व कश्मीर की मध्यकालीन कला के आरम्भिक काल में ही प्रविष्ट हुए होंगे। जैसा कि हमें विदित है, सम्राट ललिता दित्य के समय में, आठवीं शती के मध्य में, कश्मीर एक बहुत ही शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में एशिया में उभरा था तथा वहाँ भारत सहित विदेशों के अनेक विद्वान व कलाकार एकत्रित हुए थे। इस काल को कश्मीर का स्वर्ण युग कहते हैं। वस्तुतः यह समय मध्यकालीन कश्मीरी कला के चरमोत्कर्ष का समय कहा जा सकता है क्योंकि उस समय कश्मीर की कला एक बहु-राष्ट्रीयकला के रूप में विकास के मार्ग पर प्रशस्त होती है।

आलची विहार के अन्य मन्दिरों में हमें ११वीं शताब्दी के बाद के भित्ति-चित्र के अवशेष मिलते हैं जो पूर्व शैली का स्थानीय परिवेश में विकास दर्शाते हैं। चित्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बाद के चित्रों को स्थानीय चित्रकारों के द्वारा प्रथम वर्ग के चित्रों के अनुकरण पर बनाया गया है। इन चित्रों में एकरूपता व तकनीक का सरलीकरण चित्रों को तुलनात्मक दृष्टि से निम्न स्तर का बना देता है। चित्रों की शैली बहुत ही आरम्भिक व अविकसित-सी जान पड़ती है। चित्रों में चित्रकला के

मूल तकनीकी तत्व अनुपस्थित कहे जा सकते हैं। इन चित्रों की शैली को हम लद्दाख की स्थानीय चित्रकला शैली का आरंभ कह सकते हैं जो लगभग १३वीं शताब्दी की मानी जा सकती है, तथा जो पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग पूर्णरूप से विकसित होती है।

लद्दाख से प्राप्त प्राचीनतम, अर्थात् ११वीं शताब्दी के चित्रों का रंग संयोजन अत्यन्त उत्कृष्ट श्रेणी का है जिसमें सौम्य व सजीव रंगों का विविधता के साथ प्रयोग किया गया है। रंग-व्यवस्था में मुख्य रूप से नीले (लापिस-लाजली) व फीरोज़ी रंग का बहुलता से प्रयोग किया गया है। इन दोनों खनिज रंगों का बहुल प्रयोग अफगानिस्तान के प्राचीन बौद्ध विहारों से प्राप्त तथा मध्य-एशिया के कीज़िल तुन-हुआंग, दन्दान यूलीक, काशगर आदि बौद्ध विहारों से प्राप्त छठी से आठवीं शताब्दी तक के भित्ति-चित्रों में देखने को मिलता है।

लद्दाख के आलची मौन्ग्यू तथा ससपोल की कन्दराओं से प्राप्त भित्ति-चित्र पश्चिमोत्तर भारत की एक बहुत ही समुन्नत चित्र-शैली के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिसका आठवीं शताब्दी के पश्चात् विकास विशेषत: कश्मीर की घाटी में हुआ था। इस कला-शैली के उद्‌भव व विकास में मूल रूप से गान्धार व गुप्त कला शैलियों का योगदान रहा है।

अन्तत: कश्मीरी कला शैली को गान्धार व गुप्त कला शैलियों तथा अनेक स्थानीय तत्वों (जो सम्पूर्ण पश्चिमी हिमालय में क्रियाशील थे) का सम्मिश्रण है, कह सकते हैं। यह सम्मिश्रण मूल रूप से भारतीय प्रतिमानों पर आधारित था जिसका १०वीं-११वीं शताब्दी के लगभग मध्यकालीन कश्मीरी चित्रकारों के योगदान से हिमालय की दुरूह घाटियों में प्रत्यारोपण किया गया, और जो आगे चल कर लद्दाख तथा पश्चिमी तिब्बत की कला शैली को जन्म देती है।

जम्मू-कश्मीर प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता

डा० निजामुद्दीन
प्रवक्ता, इस्लामियां कालेज,
श्रीनगर, कश्मीर।

जम्मू-कश्मीर प्रदेश अहिन्दी भाषा होने पर भी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में नानाविध रूपों में अनवरत योग देता रहा है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इसके योगदान की सराहना करनी होगी। प्रदेश में पत्रकारिता का प्रारम्भ १८६७ से माना जा सकता है। उन्हीं दिनों जम्मू में विद्याविलास प्रेस की स्थापना पं० वेंकटराम शास्त्री ने की थी। इसी प्रेस से जम्मू-कश्मीर का प्रथम साप्ताहिक समाचार पत्र—**विद्याविलास** हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में एक साथ जम्मू से निकलता था, ठीक "मालवा अखबार" (इन्दौर, १८४६ से १८७३ तक) की तरह। इसमें न कोई सनसनीखेज समाचार होता था और न किसी बात पर कमेंट्स होते थे। इसका वार्षिक चन्दा १२ रु० और एक मास का एक रु० था। इसके अंक नं० २८, जिल्द नं० ४, १५ अक्तूबर, १८४० के मुखपृष्ठ पर मूल्य का विवरण छपा है, सन, संवत् और हिजरी तीनों में तिथियाँ अंकित हैं और यह भी छपा है—"यह विद्याविलास" नामक समाचार पत्र आधा हिन्दी, आधा उर्दू में प्रति सप्ताह के शनिवार को सब लोगों के उपकार के लिए इस मुद्रालय से मुद्रित होकर निकलेगा।"

इस समाचार-पत्र का महत्व दो कारणों से अधिक है; (१) प्रदेश का प्रथम हिन्दी-उर्दू का पत्र, (२) एक शताब्दी पूर्व इस प्रदेश में साम्प्रदायिक और भावात्मक एकता का सुखद वातावरण था, भाषा-विषयक कोई संघर्ष नहीं था। यह महाराजा रणवीर सिंह का शान्तिपूर्ण शासन काल (१८६७-१८८५) था।

प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता के विकास-स्वरूप को देखते हुए उसे दो रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है:—(१) स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी पत्रकारिता, (२) स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी पत्रकारिता।

स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी पत्रकारिता :

जम्मू : हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में जम्मू में अधिक गतिविधियां देखने में आईं। लाला मुलकराज सराफ़ ने "वास्तविक पत्रकारिता" का प्रारम्भ २४ जून १९२४

के उर्दू साप्ताहिक रणवीर से माना है। परन्तु इससे सब सहमत नहीं हैं क्योंकि इससे पूर्व उर्दू में "महाजन पत्र" और "डोगरा गजट" जम्मू से प्रकाशित हो चुके थे और इनसे भी पूर्व १८६७ में पूर्वोक्त "विद्याविलास" निकल चुका था। अतः इस प्रदेश में पत्र-कारिता का आरम्भ "विद्याविलास" से ही माना जाना चाहिए। इस शताब्दी के प्रथम चरण में उर्दू साप्ताहिक 'रणवीर' निकलना आरम्भ हुआ जिसका सम्पादन लाला मुल्क-राज सराफ़ करते थे, बीच में कुछ वर्षों के व्यवधान के बाद इसका प्रकाशन १९५० तक चला। इसके कुछ अंकों में हिन्दी के पृष्ठ भी सम्मिलित किये गये थे। इसके अति-रिक्त शुद्ध हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में ये नाम उल्लेखनीय हैं :—

(१) वसुधा (१९३२) इसके केवल पाँच ही अंक निकले। इसके सम्पादक थे श्री बंसीलाल सूरी और सहयोग देते थे सन्तलाल "विचित्र"।

(२) दीपक (१९३६) यह एक साप्ताहिक पत्र था जो केवल तीन वर्ष चला। इसकी ग्राहक संख्या ८०० तक पहुँच गई थी। इसे पं० हरदत्त निकालते थे और इसके सम्पादक उत्तर प्रदेश के रमाकन्त थे।

(३) भारती (१९४०) यह एक सचित्र मासिक पत्रिका थी और प्रमुखतः महिलावर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी। इसकी सम्पादिका थीं शान्ताकुमारी। इसमें राजनीतिक पक्ष अधिक मुखरित था। इसका "हिन्दी आन्दोलन अंक" बहुचर्चित रहा। "भारती" ने हिन्दी प्रचार के कार्य को जम्मू क्षेत्र में रचनात्मक रूप देने का अच्छा कार्य किया।

(४) उषा (१९४३) यह भी एक मासिक पत्रिका थी, इसका प्रकाशन तीन वर्षों तक चलता रहा; इसकी सम्पादिका थीं शकुन्तला सेठ और सहयोगी सरितावली। यह एक साहित्यिक पत्रिका थी। "उषा" और "भारती" इन दोनों पत्रिकाओं ने राज भल्ला, कृष्णा कपूर, शकुन्तला सेठ, सत्यवती मलिक आदि हिन्दी महिला लेखिकाओं को प्रोत्साहित करके उनकी सृजनशीलता के परिष्कार और विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

(५) जम्मू प्रकाश—इसके सम्पादक पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र थे, जो महाराजा प्रतापसिंह के शासन काल (१८८५-१९२५) में 'एज्यूकेशन एडवायज़र' थे और पत्र-कारिता में भी दक्ष थे। उर्दू साप्ताहिक गुलाब (१९४३-४५) में भी हिन्दी-सामग्री को कभी-कभी स्थान दिया जाता था। इसका "कृष्णांक" हिन्दी में निकला था। जम्मू से हिन्दी में जम्मू भारती एक हिन्दी साप्ताहिक भी निकलता था।

कश्मीर—जहाँ तक कश्मीर में पत्रकारिता का सम्बन्ध है "तूफाने कश्मीर" (१८७६) को प्रथम उर्दू पत्र कह सकते हैं, इसके सम्पादक मुंशी हरसुखराय थे। इसके वर्षों बाद "जम्मू गजट" (१८८४) का प्रकाशन हुआ जिसके सम्पादक मुँशी सैयद निसार अली थे। पं० प्रेमनाथ ने "वितस्ता" उर्दू (१९३२) में निकाली। इसके अति-रिक्त मार्तण्ड, पैग़ाम, इस्लाह, नूर, हमदर्द, अल-बर्क, हक़ीक़त, सदाक़त आदि भी उर्दू में निकले। लद्दाख़ से बोधी भाषा में "लद्दाफ़ फोयियान" लद्दाख़ समाचार (१९०३)

पादरी जे० ई० पीटर के सम्पादकत्व में निकला। **वितस्ता** और **मार्तण्ड** में भी कभी-कभी हिन्दी में रचनाएं दी जाती थीं, परन्तु शुद्ध हिन्दी पत्र के रूप में दो साप्ताहिकों के नाम ही लिये जा सकते हैं (१) **महावीर** (१९३६) और (२) **चन्द्रोदय** (१९३९) और इस दृष्टि से **महावीर** को कश्मीर का प्रथम हिन्दी साप्ताहिक माना जा सकता है और शुद्ध हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ इसी से मान सकते हैं। इन दोनों पत्रों को निकालने में पं० दीनानथ 'दीन', दुर्गाप्रसाद काचरू, वीर विश्वेश्वर, जानकीनाथ कौल आदि ने सक्रिय भाग लिया। इनमें इधर-उधर के स्थानीय तथा देशीय समाचारों के अतिरिक्त कविता, कहानी, लेख आदि भी छपते थे तथा बच्चों के लिए नैतिक बोध की कविताएं और कहानियां दी जाती थीं। कु० मलिक की पुस्तक ''अन्तर्वेदना'' की आलोचना भी ''चन्द्रोदय' के एक अंक में छपी थी। दोनों पत्रों की भाषा सुबोध और सरल थी जिसमें उर्दू के शब्दों को काफी मात्रा में प्रयुक्त किया जाता था। १९३६ में श्री प्रताप कालेज की पत्रिका **प्रताप** में पहली बार हिन्दी के लेख और कविताएं दी गईं।

स्वतन्त्रता से पूर्व निकलने वाली पत्रिकाओं में **''ज्योति''** का नाम भी लिया जा सकता है। यह उर्दू और हिन्दी में एक साथ—एक जिल्द में छपती थी। इसका प्रकाशन अप्रैल १९४७ में पं० दुर्गाप्रसाद काचरू के सम्पादकत्व में शुरू हुआ और यह १९५२ तक चलती रही। इसमें उर्दू के १६ और हिन्दी के ८ पृष्ठ होते थे। इसका प्रकाशन श्रीनगर से ''सुधार समिति'' द्वारा किया जाता था इसलिए इसमें दहेज जैसी समाज-सुधार सम्बन्धी समस्याओं पर लेखादि दिये जाते थे। पंडित वर्ग का **मार्तण्ड** १९३२ में निकलना आरम्भ हुआ, इसके विशेष अवसरों पर हिन्दी परिशिष्ट भी छपते रहे हैं।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी पत्रकारिता :

स्वतन्त्रता के बाद प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता में उल्लेखनीय प्रगति और अभिवृद्धि हुई। जम्मू-कश्मीर सरकार की ओर से फरवरी १९५६ में **योजना** नामक सचित्र मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ परन्तु १९६३ में आकर इसे बन्द कर दिया गया। वेदराही ने इसकी साजसज्जा में अपनी कलात्मक प्रतिभा के जौहर दिखाये। इसके साधारण अंक ४० पृष्ठों के होते थे जबकि विशेषांक १८० पृष्ठों तक के निकले। इसके ''नववर्ष विशेषांक'', संस्कृति विशेषांक'' और ''राष्ट्रीय एकता अंक'' नामक विशेषांक आज भी अपनी ज्ञानवर्द्धक सामग्री के लिए संग्रहीत हैं। ''संस्कृति विशेषांक'' में जम्मू, कश्मीर और लद्दाख़ तीनों क्षेत्रों के साहित्य, लोकजीवन, संस्कृति और इतिहास का विषद गवेषणात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। अतः इसे एक दृष्टि से 'भावात्मक एकता का अंक, भी कह सकते हैं। यह अंक अपना स्थायी महत्व रखता है। अब इसका पुनर्प्रकाशन अप्रैल १९७८ से शुरू हुआ है। सम्प्रति इसके सम्पादक मनसाराम शर्मा 'चंचल' हैं। इस सचित्र मासिक पत्रिका में संपूर्ण प्रदेश की प्रगति और योजनाओं का अच्छा विवरण दिया जाता है। इसमें प्रकाशित लेख, कहानी, कविता भी स्तरीय होते हैं। डा० वेद कुमारी घई का 'बसोहली की चित्रकला', सूरज सराफ़ का

"अखनूर", मनसाराम चंचल का "डोगरी राज भाषा" (दिसम्बर १९७८) और मार्च १९७९ के अंक में बलदेवप्रसाद शर्मा का "व्यवहारगीता" लेख शोधात्मक हैं। इसका नवम्बर १९७९ में 'बालवर्ष विशेषांक' भी निकला जिसे अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाशित किया गया था। इसका प्रकाशन जम्मू से सूचना निदेशालय द्वारा किया जाता है। कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का सहयोग भी इसको प्राप्त है।

कश्मीर से दो मासिक पत्रिकाएं "कश्यप" और "प्रकाश" दो-चार वर्ष चलकर बन्द हो गईं। "कश्यप" १९६१ में और "प्रकाश" मार्च १९६२ में निकलनी आरम्भ हुईं। एक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, श्रीनगर द्वारा निकलती थी और दूसरी ब्राह्मण महामण्डल श्रीनगर द्वारा निकाली जाती थी। एक का रूप साहित्यिक अधिक था दूसरी का धार्मिक और सामाजिक था। कश्मीरी पण्डितों में आत्मविश्वास और सामूहिक भ्रातृत्व-भाव को प्रोत्साहन देने में "प्रकाश" का अधिक सहयोग रहा। "कश्यप" और "प्रकाश" के द्वारा कश्मीर के हिन्दी लेखकों—शशिशेखर, मोहन निराश, चमनलाल सप्रू, हरिकृष्ण कौल, मोतीलाल क्यमू, आदि को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर के हिन्दी विभाग से वार्षिक पत्रिका "वितस्ता" का प्रकाशन १९६१ में डा० हरिहरप्रसाद गुप्ता द्वारा किया गया था परन्तु बाद में वह कई वर्षों तक बंद रही और पुनः १९६६ में डा० रमेशकुमार शर्मा ने उसे न केवल पुनर्जीवित किया वरन् एक शुद्ध साहित्यिक और अनुसन्धानात्मक पत्रिका होने का गौरव भी प्रदान किया। इसमें छात्रों तथा प्राध्यापकों के निबन्धों, कविताओं, कहानियों के अतिरिक्त विभाग में दिये गये विख्यात विद्वानों के भाषणों का सार-संक्षेप भी रहता है। इसके १९७० के अंक में प्रेमचन्द्र के ९ फरवरी १९३१ के पत्र की फ़ोटो प्रकाशित की गई जो उनके द्वारा पं० श्रीराम शर्मा को लिखा गया था। १९७५ के अंक में डा० रमेशकुमार शर्मा का अनुसन्धानात्मक निबन्ध "कश्मीर में हिन्दी" प्रकाशित हुआ। इसके अंक नं०१० को कश्मीरी भाषा के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया। वितस्ता के १९७८ के अंक में डा० इन्द्रनाथ मदान के "नये उपन्यास" पर दिये गये भाषण का सार भी दिया गया है। १९७९ का वितस्ता का अंक पुस्तकाकार रूप में "वितस्ता के नये चरण" शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसमें विभाग के प्राध्यापकों और छात्रों की प्रतिनिधि कविताओं को संकलित किया गया है। १९८० में इसका दूसरा पुस्तककार रूप प्रकाशित हुआ, 'वितस्ता के कथा चरण' जिसमें कश्मीर विषयक कहानियाँ संग्रहीत हैं। कश्मीर के डिग्री कालेजों तथा स्कूलों की वार्षिक पत्रिकाओं में हिन्दी रचनाओं को बराबर स्थान मिलता रहता है।

वितस्ता के माध्यम से जो साहित्यकार प्रकाश में आये हैं वे हैं—डा० मुहम्मद अयूब खान, डा० निज़ामुद्दीन, शामा सेठी, मुहम्मद परवेज़, त्रिलोकीनाथ गंजू, सन्तोष जारू, डा० विमलाकुमारी मुंशी, वीना कुमारी, प्राणनाथ 'गरीब,' डा० रोशनलाल एमा, डा० रामदयाल कटारा, डा० भूषणलाल कौल, डा० सोमनाथ कौल, वीणा डुल्लू, वीणा चन्ना, डा० विनोदकुमार, अशोककुमार पंडित आदि।

कश्मीर के मुकाबले में जम्मू क्षेत्र में हिन्दी पत्रकारिता को अधिक अनुकूल परिवेश मिला है। यहाँ से 'शीराज़ा', 'धर्ममार्ग', 'डुग्गर समाचार', 'घोषवती', 'प्रतिभा', 'मधुरिमा', 'साक्षर', 'सवेरा', 'समर्थन', हमजोली', 'निस्तन्द्र', 'मन्तव्य' आदि पत्रिकाएं निकलती रही हैं। 'निस्तान्द्र', 'मंथन', 'साक्षर' तथा 'डुग्गर समाचार' बन्द हो गई हैं। 'धर्ममार्ग' जो बहुत पहले बंद हो गई थी, उसके प्रकाशन की पुनः व्यवस्था होने का समाचार है। अच्छी श्रेष्ठ पत्रिका के रूप में 'शीराज़ा' का नाम लेना आवश्यक है। १९६५ से प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका का सम्पादन सर्वप्रथम स्वर्गीय नरेन्द्र खजूरिया ने किया। उन्होंने ही इसका वार्षिक अंक "हमारा साहित्य" के नाम से पुस्तकरूप में प्रकाशित करना आरम्भ किया था। उनके निधन के उपरान्त श्यामलाल शर्मा (१९७१ से ७३ तक) इसका सम्पादन करते रहे और १९७३ से रमेश मेहता इस उत्तरदायित्व को पूर्ण कुशलता और योग्यता से संभाले हुए हैं। इसके विशेषांक बहुत महत्वपूर्ण रहे जिनमें 'नरेन्द्र स्मृति अंक' (१९७२), अरविन्द विशेषांक' (१९७४) 'इकबाल विशेषांक' (१९७६) और १९७८ का 'कहानी विशेषांक' स्मरणीय हैं। पत्रिका में आलोचनात्मक, गवेषणात्मक निबंधों के साथ अच्छी कविताएं और कहानियां बराबर स्थान पाती हैं। कभी-कभी 'परिचर्चा' को भी स्थान दिया जाता है। सन् '७८ के ४२वें अंक में डा० गंगादत्त विनोद ने एक अनुसन्धानात्मक निबन्ध में भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन जम्मू के प्रसिद्ध कवियों की कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया है जिसमें कविदत्त, नीलकण्ठ, छन्नूलाल, राजेन्द्र प्रसाद, ठाकुर मीहरा सिंह, गांगेय नरोत्तम शास्त्री आदि की चर्चा की गई है।' 'शीराज़ा' के 'कहानी विशेषांक' में जहाँ राजेन्द्र अवस्थी, डा० इन्द्रनाथ मदान, डा० विनय, डा० नरेन्द्र मोहन, डा० विवेकी-राय जैसे सुप्रसिद्ध लेखकों की रचनाएं देखी जा सकती हैं वहाँ "नई हिन्दी कहानी" की उपलब्धियों और सम्भावनाओं पर एक अच्छी परिचर्चा भी शामिल है जिसमें डा० ओमप्रकाश गुप्त, डा० अनिल गोयल, और सर्वश्री छत्रपाल तथा अशोक जेरथ आदि ने भाग लिया। डा० ओमप्रकाश ने नई कहानी को सिचुएशन और परिस्थिति विशेष की रचना माना है जिसमें अभिव्यक्ति और आक्रोश का तीखापन है। इस विशेषांक में अनामिका द्वारा प्रश्नावली पर आधारित एक और परिचर्चा है जिसमें डा० हरदयाल, हिमांशु जोशी, वेद राही, गंगाप्रसाद विमल के उत्तर दिये गये हैं। 'शीराज़ा' का १९७५ में निकला 'लोक साहित्य अंक' पुस्तक रूप में छपा जिसमें जम्मू और कश्मीर के लोकगीतों और लोकजीवन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। 'शीराज़ा' द्वारा जम्मू-कश्मीर के स्थानीय लेखकों और कवियों को अपनी रचनात्मक प्रतिभा प्रकट करने का सुन्दर अवसर मिलता रहता है।

जब हम जम्मू क्षेत्र की पत्रकारिता की बात करते हैं तो यहाँ की लघु पत्रि-काओं को भी स्मरण रखना होगा। भारत के बहुत से स्थानों से सैकड़ों छोटी-छोटी पत्रिकाएं हिन्दी में निकल रही हैं। यहाँ की लघु पत्रिकाओं में 'घोषवती', प्रतिभा', (सम्प्रति 'मधुरिमा') आदि का योगदान ध्यातव्य है। इनमें कहानी; कविता के साथ

निबन्ध भी अच्छे निकलते रहे हैं। इनमें 'घोषवती' के दूसरे अंक में 'बहाव' (ओमप्रकाश गुप्त) 'जमी हुई यादें' (फूलचंद मानव) 'भय' (दीदार सिंह) कहानियाँ अच्छी रहीं। जुलाई १९७६ के अंक में अशोक कुमार की कविता 'एहसास' और धर्मचन्द 'प्रशांत' का लेख 'जम्मू में हिन्दी का प्रसार' अच्छे रहे। डा० देवराज बाली के, इस अंक में 'मानववादी दर्शन और उसकी मान्यता' शीर्षक से लेख में नयापन था। इसी पत्रिका के १९७९ के संयुक्तांक में 'आस्था' और 'दुःस्वप्न' कहानियाँ काफी अच्छी थीं, इनके साथ आधुनिक नई कविता को लेकर बौद्धिकता और रसास्वादन की चर्चा भी एक लेख (डा० ओमप्रकाश गुप्त) में की गई। 'प्रतिभा' आकार में बड़ी है और इसमें सामग्री भी अधिक दी जाती है। इसमें अनुसन्धानात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्ध स्तरीय होते हैं। डा० विद्यानाथ गुप्ता, डा० जनक गुप्ता, पथिक, पिपासु आदि लेखकों की रचनाएं देखने को मिलती रहती हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन्हीं पत्रिकाओं से प्रोत्साहन प्राप्त करते हुए डा० ओमप्रकाश गुप्त, रमेश मेहता, निर्मल विनोद, जवाहर रैना, अशोक जेरथ, सुतीक्ष्ण कुमार आनंदम् आदि लेखकों ने अपना एक स्थान बनाया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। मुद्रण की आधुनिकतम सुविधाएं प्राप्त कर पत्रकार इसके स्तर को सुधारने संवारने में संलग्न हैं। युवावर्ग की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए पत्रकारिता का एक डिप्लोमा कोर्स यहाँ शुरू किया जाना चाहिए। हिन्दी का दैनिक पत्र भी जम्मू से निकले, इसकी हमें आशा करनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता उत्साहवर्धक है, इसमें संदेह नहीं।

कश्मीरी साहित्य का परिचय

अशोककुमार पंडित, एम० ए०
अनुसंधित्सु, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

कश्मीरी साहित्य के इतिहास का कहाँ से आरम्भ माना जाय, यह एक विवादास्पद विषय है। कश्मीर में आम धारणा यह थी कि ललदेद (जन्म १३४० के आस-पास) ही कश्मीरी की प्रथम साहित्यकार हैं। परन्तु यह धारणा सही नहीं है। शिति कण्ठ की 'महानव्य प्रकाश' नामक कश्मीरी में लिखी गई पुस्तक की उपलब्धि ने इस इतिहास को और पीछे धकेल दिया। कुछ विद्वान इस कृति को कश्मीरी साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखते हैं, जैसे शफी शोक आदि। उनके अनुसार इसकी भाषा संस्कृत निष्ठ है। यदि ऐसा किया जाय तो इसके फलस्वरूप हमें बाद के बहुत सारे सूफी काव्य को कश्मीरी साहित्य की परिधि से बहिष्कृत करना होगा क्योंकि इनकी भाषा फारसीनिष्ठ है। 'महानव्य प्रकाश' में लगभग एक सौ वाक्य हैं जिनमें हमें शैवदर्शन का पुट अधिक मिलता है। छुम्म सम्प्रदाय के ऋषियों के रचे कुछ श्लोकों की प्राप्ति कश्मीरी साहित्य के इतिहास को सातवीं-आठवीं शताब्दी तक ले जाती है। इनका समय सातवीं शती है। सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक कश्मीरी में बहुत कुछ लिखा गया, आचार्य अभिनव गुप्त और आचार्य क्षेमेन्द्र के संस्कृत ग्रंथों में ऐसे संकेत मिलते हैं। यह साहित्य बाद के मुस्लिम शासकों की विध्वंसात्मक नीति का शिकार हुआ। चौदहवीं शताब्दी में ललदेद और नुन्द ऋषि के आविर्भाव के साथ ही कश्मीरी में भक्ति का उदय हुआ। इनकी भक्ति ज्ञानमार्गी निर्गुण भक्ति थी। दूसरी तरफ भट्टावतार (समय १४४८ के आस पास) ने 'बाणासुर कथा' लिखकर सगुण कृष्ण भक्ति काव्य धारा का प्रतिपादन किया।

कश्मीरी साहित्य के इतिहास को कालबद्ध करने के बहुत से प्रयत्न हो चुके हैं। सामान्यतः इसको आदिकाल, प्रबन्धकाल, गीतकाल, प्रेमाख्यानकाल और आधुनिक काल, इन पाँच कालों में विभक्त किया जाता है। कश्मीरी भाषा के इतिहास को सबसे पहले क्रमबद्ध रूप प्रदान करने का प्रयत्न करने वाले श्री अवतारकृष्ण रहबर ने इसको आदिकाल अथवा निर्गुण भक्तिकाल, रोमांटिक युग अथवा पूर्व मध्यकाल,

उत्तर मध्यकाल और आधुनिककाल इन चार भागों में विभक्त किया है। लेकिन अभी तक कोई पूर्ण एवं वैज्ञानिक काल विभाजन सामने नहीं आया है।

मेरे मतानुसार कश्मीरी साहित्य के इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) आदिकाल सन् ६०० से १३५० ई० तक।
(२) मध्यकाल अथवा भक्तिकाल सन् १३५० से १६२५ ई० तक।
(३) आधुनिककाल सन् १६२५ से आज तक।

(१) आदिकाल—कश्मीरी का आदिकालीन साहित्य जिस को मैं सातवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ मानता हूँ, छुम्म सम्प्रदाय के श्लोकों से आरम्भ होता है। इस काल की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है शितिकण्ठ की 'महानव्य प्रकाश'।[1] इन दोनों पर कश्मीरी शैवमत का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसको त्रिक दर्शन भी कहा गया है, क्योंकि यह शिव, शक्ति और जीव इन तीन सत्ताओं पर आधारित है। यह शैवमत दक्षिणी शैवमत से किंचित भिन्न है। यहाँ पर मैं छुम्म सम्प्रदाय के एक चर्या पद को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करता हूँ जो 'वितस्ता' में प्रकाशित हुआ है :—

यि कथ बोवे वोदि कम खये।
नेरं गाश बंव पेयी वन्ते।
समसारस न बत्री अगम गये।
अगाद कथ नो ख्यन ख्रे पोन्ते।

(अर्थात्—तुम कभी इस भ्रम में न रहना कि शिव को पहचानने के लिए कोई निश्चित मार्ग है। सत्य यह है कि उसका प्रकाश तथा ज्ञान किसी क्रम के बिना अकस्मात् ही पहुँच जाता है। उसकी ज्योति एवं उसके रंग रूप को अपने में समाना तथा अपने में उसको पाना ही उसकी प्राप्ति है।)

'छुम्म सम्प्रदाय' के चर्यापदों की भाँति 'महानव्य प्रकाश' में भी शैवमत का प्रतिपादन इसी रूप में हुआ है, मात्र भाषात्मक अन्तर है जो कि स्वाभाविक ही है। उदाहरण देखिए :—

'परम शिवस प्रिस्योव तस शछी।
पथिम सम्पदा यूंगि गान्तो।
युगमा आदि त सवा शिव रछी।
सु विश्व बीज नादस उग गातो।'

शितिकण्ठ बहुत बड़े विद्वान थे। शैवमत का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था। 'माहानव्य प्रकाश' की भाषा में अपभ्रंश और संस्कृत के बहुत से शब्द मिलते हैं। शितिकण्ठ के 'महानव्य प्रकाश' का कश्मीरी साहित्य में ऐतिहासिक महत्व है। कहा

१. 'सुख-दुख चरित' को भी कश्मीरी-साहित्य के इतिहास में स्थान मिलना चाहिए। —सम्पादक

जाता है कि सिद्धमोल (श्रीकण्ठ) इनके ही पुत्र थे जिनको कि ललदेद का गुरु माना गया है। सिद्धमोल[1] का भी कश्मीरी साहित्य में अपना एक अलग महत्व है। कहा जाता है कि सिद्धमोल एक अच्छे कवि थे इनके बहुत से वाक्य ज्यों के त्यों ललदेद और नुन्द ऋषि के वाक्यों के साथ मिल गये हैं।

(२) **मध्यकाल**—मध्यकाल का बहुत सारा साहित्य निर्गुण और सगुण भक्ति से ओतप्रोत है इसी कारण यदि इसको भक्तिकाल भी कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। इस काल के भक्ति साहित्य को दो धाराओं में विभाजित किया जा सकता है :—(१) निर्गुण भक्ति और (२) सगुण भक्ति।

निर्गुण भक्ति के पुनः दो उपभेद किए जा सकते हैं :—

(क) ज्ञानाश्रयी शाखा, (ख) सूफी काव्य शाखा। सगुण भक्ति के तीन उपभेद हो सकते हैं---

(क) कृष्ण भक्ति शाखा, (ख) शिव भक्ति शाखा और (ग) राम भक्ति शाखा।

(१) **ज्ञानाश्रयी शाखा**—इस शाखा की सर्व प्रमुख कवयित्री ललदेद थीं।[2] ललदेद को इस शाखा की प्रवर्त्तक कवयित्री माना जा सकता है। इनके अतिरिक्त इस शाखा के अन्य कवि हैं शेख-उल-आलम नुन्द ऋषि तथा मेरज़ाकाक (काक जी)। ललदेव और नुन्द ऋषि को लगभग समकालीन ही माना जा सकता है। ललदेद का जन्म १३४० ई० के आसपास माना जाता है जबकि नुन्द ऋषि का जन्म १३७७ ई० माना जाता है।

ललदेव—ललदेद का जन्म पाम्पोर (प्राचीन पद्मपुर) श्रीनगर के पास पदमान पोरा गांव के एक हिन्दू घराने में हुआ। ललदेद के 'वाक्य' (जिन्हें वाख़ कहते हैं) कलापक्ष एवं भावपक्ष दोनों दृष्टियों से बहुत ही उच्च स्तर के हैं। आज तक उनके वाक्यों की लोक-प्रियता कम नहीं हुई है। ललदेद के वाक्यों पर कश्मीरी शैवमत, वेदान्त और हठयोग का प्रभाव है। सगुण भक्ति का उन्होंने खुलकर विरोध किया तथा निर्गुण, निराकार ब्रह्म की सार्थकता ही स्वीकार की है। वेदान्त के सूत्र 'अहं ब्रह्मास्मि' का इस वाक्य पर प्रभाव देखिए :—

'गोरन वोपनम कुनुय वचुन।
नेबरय दोपनम अन्दर अचुन।
सुय मे ललि गोम वाख त वचुन।
तवय ह्योतुम नंगय नचुन।'

(अर्थात्—अपने गुरु से मुझे यही एक वचन मिला कि तुम अन्तर्मुखी हो

---

१. मोल का अर्थ पिता है, आदर सूचक। —सम्पादक

२. इन्हें ललद्यद भी कहते हैं। द्यद का अर्थ है, बड़ी बूढ़ी, दादी, नानी। आदर सूचक।—सम्पादक

जाओ। इसी कारण मैंने इस शरीर की सत्ता को भूल कर तथा इसको निर्वस्त्र करके ब्रह्म की सत्ता का अनुभव किया।)

कबीर की भाँति उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध किया। धार्मिक भेदभाव का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा है—

शिव छुय थलि थलि रोज़ान।
मो ज़ान ह्योन्द मुसलमान।

(अर्थात्—शिव का वास हर स्थान पर है उसके लिए हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं है) याद रहे उनका शिव निराकार निर्गुण ब्रह्म है।

नुन्द ऋषि इनका जन्म ई० १३७७ के आस-पास माना गया है। अपनी छोटी सी आयु में ही वे ललदेद के सम्पर्क में आये और वहुत ही प्रभावित हुए। नुन्द ऋषि का वास्तविक नाम शेखनूरुद्दीन था। ऋषियों और संतों के सम्पर्क में आकर वे सब कुछ त्याग कर मुक्ति प्राप्ति का साधन ढूँढ़ने लगे, जो उनको ललदेद से मिला जिनके वे शिष्य माने गये हैं। यहाँ पर मैं नुन्द ऋषि और ललदेद का एक एक वाक्य प्रस्तुत करता हूँ :—

नुन्द ऋषि—क्या कर पांञ्चन दहन त काहन वुपान काहन विथय व्राव,
योदवई सारी अकि रज़ि लमहन अदं क्याज़ि राविहे काहन गाव।

(अर्थात्—मैं इन पाँच, दस और ग्यारह का क्या करूँ। अर्थात्—यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन मेरे वश में नहीं हैं। यदि ये सब मिलकर एक ही ब्रह्म की साधना में लग जाते तो यह सब मिल कर उस ब्रह्म को आसानी से प्राप्त कर सकते।)

ललदेद—'क्या कर पांञ्चन दहन त काहन।
वक्षुन येथ लेजि करिथ यिम गय।
सारी समहन अकसई रज़ि लमहन।
अदं क्याज़ि राविहे काहन गाव।'

इन दोनों 'वाखों' का अर्थ लगभग एक जैसा ही है आगे चल कर वे परम ज्ञान की बातें करते हैं। उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के हेतु वाक्यों के अतिरिक्त कुछ गीत भी लिखे तथा ललदेद की भाँति सांसारिक बन्धनों को तोड़कर अन्तर्मुखी होकर अपने में ईश्वर को ढूँढ़ने की बात कही।

इन दोनों संतों के पश्चात् यह निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा लुप्त सी हो जाती है। इस परम्परा में आने वाले एक और संत कवि हैं जिनका नाम है श्री मेरज़ाकाक (मिर्ज़ाकाक)। इनका जन्म अठारहवीं शती ई० के मध्य में अनन्तनाग के हांगलगुण्ड गाँव में हुआ। वेदान्त द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद से वे विशेष प्रभावित थे, वे कहते हैं :—

'यस चलि हुई तय ईश्वर जानी।
ह्युवुय मानी पर तय पान।
अन्दरी नेबर कुनुई जानी।
राम राम रब प्रभ जी।'

(अर्थात्—जो द्वैत भाव को छोड़कर ईश्वर को जाने तथा अपने में और दूसरे में अन्तर को मिटा दे, शरीर के भीतर और बाहर उसी प्रभु की सत्ता को पहचाने वह राम, प्रभु और रब सब को पाता है।)

ललदेद और नुन्द ऋषि के बाद सोलहवीं शताब्दी ई० के मध्य तक कश्मीरी में विशेष साहित्य रचना नहीं हुई। भट्ट नायक की 'बाणासुर कथा' ही मात्र उल्लेखनीय रचना थी। सन् १५५५ ई० से कश्मीरी में विरह गीत लिखे गये। हब्बा खातून और अरण्यमाल ने इस युग के सर्वश्रेष्ठ विरह गीत लिखे। इनका समय क्रमशः सन् १५५५-१६०५ ई० तथा सन् १७३८-१७७८ ई० माना जाता है। इन दोनों कवियत्रियों के विरह-वर्णन की मार्मिकता, सजीवता, भाव विह्वलता प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती। हब्बा-खातून बादशाह यूसुफ शाह चक की प्रेयसी अथवा पत्नी थी। किन्ही राजनैतिक कारणों से यूसुफ शाह चक हब्बा खातून को छोड़कर चला गया।[1] इस पीड़ा से उसका हृदय चीख उठा :—

त्रे कम्यू सोनि म्यानि भ्रम दिथ नियूनखो त्रे किहोज़ि गययो म्यानि वई।
चरन त्राव दय मलाल वोन्दं छुय नो यिवान त्रे किहोज़ि गययो म्यानि वई।

(अर्थात्—हे मेरे प्रियतम तुम को मेरी किस सौतिन ने भ्रम देकर अपने वश में कर रखा है तुम्हें मुझसे नफरत क्यों हो गई। तुम मेरे प्रति विमुखता, मान और नफरत को त्याग मेरे पास क्यों नहीं आते।)

हब्बा खातून की कविता भाषागत एवं कलात्मक प्रौढ़ता का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

अरण्यमाल (आरनिमाल) अपने पति भवानीदास से बहुत प्रेम करती थी। भवानीदास उस समय के एक पठान शासक के दरबारी थे। राज-कार्य में व्यस्त होने के कारण भवानीदास आरनिमाल को नेत्र सुख तक प्रदान नहीं कर पाये। कुछ समय तक आरनिमाल अपने पति के वियोग में पीड़ित हो उठी। विरह व्याकुल आरनिमाल लिखती है :—

लालं गोमय बाग मन्ज़ नीरिथ पोश लागस गोन्दरे गोन्दरे।
केंह नय मन्गस यियमग फीरिथ ज़ोलं छम नय सोन्दरे सोन्दरे।

(अर्थात्—वह मेरा लाल मुझे सुन्दर कल्पनाओं से भरे फूलों की बगिया में छोड़कर चला गया। मैं अपनी कल्पनाओं के फूलों से उसकी पूजा करूँगी। यदि वे

1. उसे अकबर ने पराजित किया और बिहार में बन्दी बनाकर रखा था। —सम्पादक

लौटेंगे तो मैं उनसे कुछ नहीं मागूँगी, वही मेरे सब कुछ हैं। उनके विरह में मैं रातों में सो नहीं पाती हूँ।)

(२) सूफी काव्य धारा—कश्मीरी साहित्य में सूफी कवियों द्वारा प्रवाहित काव्य धारा अपना एक विशेष स्थान रखती है। कश्मीरी का लगभग सारा सूफी काव्य सन् १७७५ से सन् १९०० ई० तक रचा गया।[1] सूफी मत की झलक नुन्द ऋषि के काव्य में भी मिलती है। सूफी कवि परम ब्रह्म के किसी विशेष रंग अथवा रूप को नहीं मानते। वे ईश्वर की सत्ता को प्रकाश रूप में स्वीकारते हैं, जो कहीं भी छिपा नहीं है। ईश्वर की सत्ता आकाश-मण्डल से पृथ्वी-मण्डल तक हर स्थान पर एक जैसी है। अपने प्रिय (ईश्वर) को वे अपने हृदय में हर समय विद्यमान पाते हैं। सूफी काव्य के प्रमुख रचयिता हैं :—

शमस फकीर—इनका जन्म सन् १८४० के आस-पास श्रीनगर में हुआ। सन् १९०३ ई० में इन्होंने प्राण त्यागे। अनपढ़ होने पर भी इनका साहित्य आत्मा की गहराई को छू जाता है। देखिए : -

मे वुछ हर शायि सु यार छुनो कान्ह मोई ति खाली।

अर्थात—मैंने हर जगह अपने प्रिय को देखा कोई भी प्याला उसके जाम से खाली न मिला।

सोछि क्राल[2]—इनका जन्म अठारहवीं शती के अन्तिम दो दशकों में हुआ माना जा सकता है, इनका देहान्त सन् १८५७ ई० में हुआ था। सोछि क्राल ने प्रेम-मार्गी भक्ति साहित्य को नवीनता प्रदान की। वे अपने और परमात्मा के बीच किसी भी अन्तर को नहीं स्वीकारते हैं।

शाह गफूर—इनका जन्म बड़गाम में कब हुआ यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है। इसको सोछि क्राल का समकालीन भी कहा जाता है। इनके ऊपर ललदेद के ज्ञान-मार्ग का प्रभाव दिखता है। उदाहरण स्वरूप इस पद को लेते हैं जिसमें आत्मा और परमात्मा के मिलन के मार्ग में शरीर को बाधा माना गया है :—

'बशर त्राविथ ईशर न्न गारुन इशरस सोत रोज सपवखसु।
ईशर सपवुन शरीर गोव मारुन वरनय गारुन सू तम सू।'

रहमान डार—कश्मीरी सूफी साहित्य में रहमान डार का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने कश्मीरी में 'शश रंग' नाम की नज्म लिख कर बहुत लोक-प्रियता प्राप्त की। 'शश रंग' जैसी रचना कश्मीरी साहित्य में दूसरी नहीं मिलती है। इस में संगीत का विशेष ध्यान रखा गया है।

---

१. कश्मीर में प्रचलित सूफी मत शेष भारत में प्रचलित सूफीमत से किंचित भिन्नता रखता है।
—सम्पादक

२. क्राल का अर्थ है कुम्हार। —सम्पादक

इनके अतिरिक्त सूफी साहित्य के अन्य रचयिता हैं न्याम सॉब (समय सन् १८०५–१८८०) इन्होंने सरल जनजीवन की भाषा में कुछ मार्मिक गीत लिखे।

रहीब सॉब—इनका जन्म सोपोर में कब हुआ यह विवादास्पद है। ये आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत थे। इनकी भाषा में संस्कृत और फारसी दोनों भाषाओं के शब्द मिलते हैं—

बड़ मनं सर यार छुस गारन माह ईशर यथ मंज छुये।
काम क्रूद लूब मुह (काम क्रोध लोभ मोह) छुस थारन बे आरन आरनो छुये।

इसी धारा के अन्तर्गत आने वाले कुछ अन्य कवि हैं—**असद परे** (समय सन् १८६२ से सन् १९२०) **वाज महमूद** (जन्म १८३० के आस-पास) तथा **अहमद बटवार** (१८४५-१९१८ ई०)।

(३) **कृष्ण-भक्ति काव्य धारा**—कश्मीरी साहित्य में कृष्ण-भक्ति धारा का प्रवाह भट्ट-अवतार द्वारा रचित 'वाणासुर कथा' से आरम्भ होता है। इससे पहले कश्मीरी साहित्य पर शैव-दर्शन और वेदान्त दर्शन का प्रभाव अधिक था। 'बाणासुर कथा' का लिखा जाना एक प्रकार से शैव-दर्शन पर कृष्ण भक्ति की विजय है। कृष्ण भक्ति की धारा के कुछ मुख्य कवि इस प्रकार हैं।

भट्ट अवतार—इन्होंने कश्मीरी में सबसे पहले कृष्ण-भक्ति से युक्त काव्य लिखा। इन्होंने ही 'बाणासुर कथा' खण्ड-काव्य की रचना की। इनका समय सन् १४८४ के आस-पास ठहरता है। 'वाणासुर कथा' में बाण की कन्या उषा और अनिरुद्ध की प्रणय गाथा, कृष्ण का बाण पर आक्रमण और बाण का निधन तथा अपने भक्त की पराजय पर शिव द्वारा कृष्ण की स्तुति के प्रसंग मुख्य हैं।

साहब कौल—इनका जन्म सन् १६२९ में श्रीनगर में हुआ। ये ललदेद से बहुत प्रभावित थे। संस्कृत और फारसी दोनों भाषाओं के ये पण्डित थे। कश्मीरी में उनकी रचनाएँ हैं—(१) कल्पवृक्ष, (२) जन्म चरित, (३) श्रीकृष्णावतार। 'कल्पवृक्ष' में कला का चमत्कार दर्शनीय है। 'जन्म चरित' मानव जीवन के रहस्यों से भरी एक लम्बी कविता है। 'श्रीकृष्णावतार' में श्रीकृष्ण के दर्शन और उनकी लीलाओं का बहुत ही सुन्दर वर्णन है।

अलक्ष्येश्वरी रूपभवानी—इनका जन्म सन् १६२५ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम माधवराम था जो श्रीनगर में रहते थे। कश्मीरी के साथ-साथ इन्होंने संस्कृत, फारसी और उर्दू-हिन्दी में भी काव्य-रचना की। इन्होंने 'वाख़' (वाक्य) और गीत भी लिखे। कश्मीर के हिन्दू और मुसलमान आज तक इनके गीत गाते आये हैं। रूपभवानी अपने समय की उच्चकोटि की योगिनी तथा शैव और वेदान्त दर्शनों की ज्ञाता थीं। श्रीकृष्ण की रास-लीला का वर्णन भी उन्होंने किया है।

परमानन्द—परमानन्द का कृष्ण-भक्ति काव्य धारा में ही नहीं अपितु समस्त कश्मीरी साहित्य में श्रेष्ठ स्थान है। कृष्ण-काव्य धारा के वे सबसे महत्त्वपूर्ण

कवि हैं। कश्मीरी के अतिरिक्त वे हिन्दी में भी लिखते थे। परमानन्द का जन्म सीर (मटन) में सन् १७६१ ई० में हुआ। ये एक उच्चकोटि के ज्ञानी थे तथा कृष्ण और शिव की भक्ति में लीन रहते थे।

इनकी तीन प्रमुख रचनाएँ हैं—(१) शिवलग्न, (२) राधा स्वयंवर और सुदामाचरित। 'शिवलग्न' में शिव और पार्वती का विवाह-वर्णन, शिव पुराण के आधार पर किया गया है। 'राधा स्वयंवर' में श्रीकृष्ण और राधा की प्रणय एवं विवाह गाथा है। कृष्ण की राधा तथा अन्य गोपियों, के साथ रासलीला कवि को उनके पूर्ण ब्रह्म होने का आभास देती है। रास को वे मात्र एक क्रीड़ा नहीं मानते। वे कहते हैं :—

रास गोव सम्‍ रसं यति समुदुर रास गोव जि ज्ञमि यति ट्योठ त मदुर।
रास गोव रूदमुत आसिनं केन्ह अपराधा राधा राधा राधाराध कृष्ण ज्ञय।

(अर्थात्—रास का अर्थ है समरसता का सागर जिसमें हर प्रकार की विषमता एवं माधुर्य समान रूप में रहता है। रास की अवस्था वह है जिसमें मन में किसी भी प्रकार का अपराध भाव नहीं रहता।)

'सुदामा चरित' में सुदामा की कथा का वर्णन है। इस कथा में दार्शनिकता भी झलकती है क्योंकि कृष्ण को परमात्मा और सुदामा को आत्मा के रूप में देखा गया है। आत्मा परमात्मा से बिछुड़ जाती है और पुनः मिलने के लिए तरसती है। सांसारिक बन्धनों में बद्ध यह आत्मा कुछ समय के लिए उसको भूल भी जाती है परन्तु कालान्तर में आत्मा चेतना तत्त्व के मिलने से परमात्मा की प्राप्ति के आनन्द को प्राप्त करती है। इस प्रकार वह सत्-चित् आनन्दमय बन जाती है।

'कासि यम बय चोन प्रेयम त लोलो।
रयोन मरुन युन गछुन छु ब्रम त लोलो।'

(अर्थात्—तुम्हारा प्रेम महाकाल के भय का विनाशक है। जीना मरना तथा इस संसार में आना-जाना सब भ्रम है।)

कृष्ण जू राज़दान—इनका जन्म २० नवम्बर १८५० को वनपुह, अनन्तनाग में हुआ। इन्होंने भगवान कृष्ण और भगवान शंकर की सुन्दर लीलाएँ गाई हैं, योग लीलाएँ (वे गीत जिनमें योग का महात्म्य मिलता हो) तथा रास लीलाएँ लिखीं। इनका निधन १९२७ में हुआ। भगवान कृष्ण के प्रेम को सर्वोच्च स्थान देते हुए वे कहते हैं :—

अस कमि बापथ करव त्याग असिगछि आसुन कृष्ण राग।
सुय गोव तप जप योग अभ्यास पकिव रास गिन्दानी।

(अर्थात्—हम त्याग क्यों करेंगे हमें भगवान कृष्ण का प्रेम चाहिए। वही हमारी तपस्या, वही हमारे लिए योग अभ्यास है, यही भाव रास-क्रीड़ा करतीं गोपियों में भी था।)

कृष्ण काव्य परम्परा के अन्य कवि हैं :---

ठाकुर जी मनवटी—श्रीनगर में जन्मे, वेदान्त के ज्ञानी थे। कृष्ण की लीलाएँ भी इन्होंने लिखीं।

लक्ष्मण जू बुलबुल—श्रीनगर में इनका जन्म सन् १८१२ ई० और निधन सन् १८८४ ई० में हुआ। ये परमानन्द के शिष्य थे। इनकी रचनाएँ हैं - (१) सामनामा, (२) नल दमन, (३) ओमनामा, (४) चायनामा, (५) भजनोस्तुतियां, (६) राधा स्वयंवर।

मानजुव—१९०२ में इनका जन्म रैणावारी (श्रीनगर) में हुआ। इन्होंने कश्मीरी में 'कृष्णावतार' लिखा, जिसकी कथा श्रीमद्भागवत पर आधारित है। १९७१ में इनका निधन हुआ।

(४) **राम-भक्ति धारा**—कश्मीरी में राम-काव्य की परम्परा उतनी प्राचीन नहीं है जितनी कृष्ण-काव्य परम्परा। ललदेद और शेख नूरुद्दीन (नुन्द ऋषि) के बाद कश्मीर का शासन ज़ैनुलाब्दीन (बड़शाह) के हाथों में आया, उन्होंने कश्मीरी तथा फारसी दोनों के साहित्यकारों को प्रोत्साहन दिया। इस युग में बहुत कुछ लिखा गया परन्तु बाद के शासकों ने कश्मीरी साहित्य को प्रश्रय देने में किसी भी प्रकार का उत्साह नहीं दिखाया। इन्होंने फारसी पर अधिक जोर दिया, जिसके फलस्वरूप यहाँ फारसीनिष्ठ कश्मीरी में रचनाएँ होने लगीं। इसका परिणाम यह हुआ कि कश्मीरी में भक्ति-काव्य का लिखा जाना कठिन लगने लगा, फिर भी कृष्ण तथा राम-भक्ति काव्य-धारा की गति रुकी नहीं, मन्द अवश्य हो गई। कश्मीरी में सबसे पहला राम काव्य लिखने का श्रेय प्रकाश भट्ट को जाता है। इन्होंने कश्मीरी में राम-काव्य की परम्परा की नींव डाली। इसका कारण यह था कि कश्मीर पर पठानों का शासन समाप्त हो चुका था तथा सिक्ख और डोगरा शासकों द्वारा हिन्दुओ की भक्ति-भावना को प्रोत्साहन मिला। डोगरा शासक स्वयं राम-भक्त थे इस कारण उस समय कश्मीरी में राम-काव्य पर्याप्त मात्रा में लिखा गया। कश्मीरी में राम-काव्य-परम्परा को हम इस प्रकार क्रम दे सकते हैं :—

प्रकाश भट्ट और उनकी प्रकाश रामायण—प्रकाश भट्ट का जन्म सन् १८०० ई० के आस-पास कुरीगाम काज़ीगुण्ड में हुआ, उनका निधन सन् १८७५ और ८५ ई० के बीच हुआ। 'प्रकाश रामायण' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'कृष्णावतार', 'शिव लग्न', 'अकनन्दुन' आदि काव्यों की रचना की। 'प्रकाश रामायण' में राम-कथा के अतिरिक्त कुछ प्रासंगिक कथाएँ भी हैं, परन्तु ये कहीं पर भी शिथिल नहीं लगतीं। विषय एवं भाषा दोनों दृष्टियों से यह एक मौलिक रचना है। देशकाल वातावरण का विशेष ध्यान रखा गया है। फारसी मसनवी शैली का भी इन पर प्रभाव है। उनकी शैली बहुत ही आकर्षक है। रावण और सीता का एक संवादांश प्रस्तुत है--

वोपुन तस रावनस लानथ त्रे लारी, ब मारय पान परथा स्योन मारी।
दोपुस तम तोर तमसुन्द बीम कम हाव, दोपुस तम अवय लसनंच शेंखवन त्राव।

(अर्थात्—सीताजी रावण से कहती हैं तुझ पर लानत है। मैं आत्महत्या करूँगी और मेरे पति तेरा वध करेंगे। रावण कहता है, कि मुझे उसका भय मत दिलाओ। सीता कहती है. तभी तो कहती हूँ कि जीवित रहने की आशा छोड़ दो।)

शंकर और 'शंकर रामायण'—शंकर का जन्म उन्नसवीं शताब्दी के दूसरे या तीसरे दशक में हुआ। 'शंकर रामायण' की रचना इन्होंने १८७० ई० में की। इस रामायण में भी राम कथा से लेकर राम वैकुण्ठ गमन तक का सारा वृतान्त है। 'प्रकाश रामायण' के सात खण्डों की तुलना में इसमें पांच ही खण्ड हैं। राम-कथा का जहाँ तक प्रश्न है इन पर 'वाल्मीकि रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' दोनों का प्रभाव है। गीति शैली का उन्होंने सुन्दर प्रयोग किया।

आनन्दराम और उनकी 'आनन्द रामायण'—'आनन्द रामायण' की रचना आनन्दराम राज़दान ने १८८८ ई० में की। प्रस्तुत कृति का कश्मीरी राम-काव्य परम्परा में एक श्रेष्ठ स्थान है। इन्होंने दो प्रमुख शैलियों—इतिवृत्तात्मक और गीतात्मक को विशेष रूप से अपनाया है। भाषा का जहाँ तक प्रश्न है, संस्कृत शब्दों के साथ-साथ फ़ारसी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, फिर भी वह सजीत एवं स्वाभाविक है।

विष्णु कौल और उनकी विष्णु प्रताप रामायण[1]—पं० विष्णु कौल का जन्म सन् १८७५ ई० में विसु, अनन्तनाग में हुआ तथा निधन सन् १९१७ ई० में हुआ। सात काण्डों में विभक्त 'विष्णु प्रताप रामायण' का कथानक 'वाल्मीकि रामायण' पर आधारित है। इस रामायण में महाकाव्य के बहुत सारे गुण पाये जाते हैं। यह पहली रामायण है जिसमें भगवान राम की कश्मीर यात्रा का भी वर्णन है।

राम-काव्य परम्परा के अन्य कवि हैं—**पं० ताराचन्द** जिन्होंने 'ताराचन्द रामायण' लिखी। **श्री नीलकण्ठ शर्मा** जिन्होंने 'शर्मा रामायण' लिखी और **पं० अमर नाथ** जिन्होंने 'अमर रामायण' लिखी।

कश्मीरी काव्य में एक और छोटी सी धारा इन दो मुख्य धाराओं के समानांतर चलती है यह है शिव-भक्ति धारा। कश्मीरी में शिव-भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है। कश्मीर शैव-दर्शन का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। कश्मीरी शैव-दर्शन में शिव को पूर्ण ब्रह्म और पार्वती को शक्ति रूपा माना गया। इस शैव-दर्शन का प्रभाव ललदेद और नुन्द ऋषि पर भी था। उनके बाद शिव-भक्ति के पुट परमानन्द के काव्य में मिलने लगे, परन्तु उनके शिव साकार राम और कृष्ण की स्तुति करने वाले तथा पार्वती के साथ कैलाश पर वास करने वाले शिव हैं। परमानन्द ने 'शिवलग्न' नामक काव्य की रचना की। कृष्णजू राज़दान, प्रकाशराम भट्ट आदि कुछ अन्य

१. कवि ने अपने नाम के साथ महाराजा प्रतापसिंह का नाम भी आदर पूर्वक जोड़ा है।—सम्पादक

कवियों ने शिव-भक्ति से ओत-प्रोत लीलाएँ (गीत) लिखीं। इस सगुण भक्ति-धारा को हम कश्मीरी शैव (त्रिक) मत से विलग मान सकते हैं।

आधुनिक काल का आरम्भ करने से पहले यहाँ पर दो अन्य कवियों का मैं उल्लेख करूँगा जो किसी भी धारा में नहीं आते, परन्तु जिन्होंने बहुत ही अच्छे गीत लिखे। ये दो कवि हैं महमूद गामी और रसूलमीर। इन दोनों कवियों का जन्म डूरू, अनन्तनाग में हुआ। महमूद गामी मसनवीकार (आख्यान लिखने वाले) थे जबकि रसूल मीर ने लौकिक प्रेम रस से भरे गीत लिखे।

आधुनिक काल—(१९२५ ई० से आज तक) महजूर और अब्दुल अहद आज़ाद के आविर्भाव के साथ ही कश्मीरी साहित्य का आधुनिक काल आरम्भ होता है। आधुनिक काल को दो भागों में बाँट सकते हैं :—(१) कविता, (२) गद्य।

कविता—आधुनिक काल में अन्य भाषाओं की भाँति कश्मीरी कविता में कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इसका श्रेय **गुलाम मुहम्मद महजूर** और **अब्दुल अहद आज़ाद** को जाता है। महजूर आज़ाद से १८ वर्ष पहले आये हैं। पहले ये उर्दू और फारसी में लिखते थे फिर १९१८ में इन्होंने सबसे पहली कश्मीरी गज़ल लिखी परन्तु यह रसूल मीर का अनुकरण मात्र था। पहले इन्होंने पारम्परिक प्रेम-रस से भरे गीत लिखे परन्तु बाद में इनकी लेखनी में कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। १८८५ में इनका जन्म मित्रगाम पुलवामा में हुआ। १९३१ के बाद महजूर ने एक नये कवि के रूप में जन्म लिया जो क्रान्ति चाहने वाला था तथा आम लोगों की आवाज़ से अपनी आवाज मिलाने वाला था। उर्दू साहित्य की प्रगतिवादी चेतना का भी उन पर प्रभाव पड़ा। वे हिन्दू और मुसलमानों के भारत में होने वाले दंगों से चिन्तित थे, इसी कारण उन्होंने अपनी कविता में हिन्दु-मुस्लिम एकता के नारे बुलन्द किये—

बोद छु मुस्लिम ह्योन्द छु शकर साफ साफ।
बोद त बेयि शकर रलाविव पान वोन।

(अर्थात्—मुसलाम दूध है और हिन्दू शक्कर। दूध और शक्कर को मिलाओ तो एक अनोखी मिठास पैदा होती है)

१९४७ के बाद उनकी कविता व्यंग्यात्मक हो गई। १९५२ में उनका देहान्त हो गया।

महजूर के समकालीन आज़ाद का जन्म सन् १९०३ ई० में संगर (बड़गाम) में हुआ। आज़ाद इकबाल की शैली में लिखते थे। उन्होंने भी महजूर की भाँति कुछ क्रान्तिकारी कविताएँ लिखीं। उनका ४५ वर्ष की आयु में सन् १९४८ में निधन हो गया। उनके बाद इस धारा में आने वाले अन्य कवि हैं :- **मास्टर जिन्दकौल** और **गुलाम नबी आरिफ**। मास्टरजी का जन्म १८८६ में श्रीनगर में हुआ ये कवीन्द्र रवीन्द्र से प्रभावित थे। मास्टरजी का १९६६ ई० में निधन हो गया। आरिफ

आज़ाद के साथ चलने वाले कवि थे, १९१९ में इनका जन्म तथा १९६५ में निधन हुआ।

महजूर और आज़ाद के बाद कश्मीरी कविता में एक और परिवर्तन आता है, जब यहाँ के कवियों ने उर्दू कवियों से प्रभावित होकर प्रगतिशील आंदोलन चलाया। इन कवियों ने 'कल्चरल महाज़' (बाद में 'कल्चरल कांग्रेस') नाम की एक साहित्यिक संस्था स्थापित की। मीर गुलाम रसूल नाज़की, फाज़िल कश्मीरी, दीनानाथ नादिम, रहमान राही, नूर मुहम्मद रोशन, अमीन कामिल, गुलाम नबीफिराक, मुज़फ्फर आज़िम, गुलाम नबी ख़याल आदि इसके सदस्य बने। इनकी कविता में सैद्धान्तिक प्रचारात्मक का पुट मिलने लगा। ये किसानों और मजदूरों को जागीरदारों और पूंजीपतियों के विरुद्ध आंदोलन छेड़ने के लिए प्रेरित करते तथा उनको खुशियों से भरे भविष्य के सपने दिखलाते।

कुछ समय के बाद जब ये कवि समझने लगे कि स्वतंत्रता वास्तव में वरदान न होकर अभिशाप सिद्ध हुई है तो इनमें से कुछ कवियों की विचार धारा मार्क्सवादी हो गई, जैसे नादिम और रहमान राही।

इसके बाद कश्मीरी की नई कविता आरम्भ होती है और इसमें हिन्दी की नई कविता की सभी विशेषताएँ मिलने लगीं। इधर कुछ नये कवि भी आधुनिकता से युक्त कविताएँ लिखने लगे इनमें प्रमुख हैं :—

नाजी मुनव्वर, मरगूब बानहाली, काज़ी गुलाम मुहम्मद, रशीद नाज़की, अरजन देव मजबूर, मोतीलाल साकी, गुलाम मुहम्मद शाह, मुहम्मद अयूब बेताब, मोतीलाल नाज़, वासुदेव रेह, गुलाम नबी गौहर, शम्भूनाथ भट्ट हलीम, मही-उद्दीन गौहर, राधेनाथ मसरंत, फारुक नाज़की, मक्खनलाल बेकस, सजूद सेलानी, सत्तार अहमद शाहिद और प्रेमनाथ प्रेमी आदि। इन सब पर हिन्दी कविता की 'आधुनिकता' का प्रभाव है।

कश्मीरी गद्य—कश्मीरी गद्य का आरम्भ १८२१ में हुआ, जब बाइबल के एक भाग का कश्मीरी में अनुवाद हुआ। इसके बाद १९४७ तक कश्मीरी में कुछ एक नाटकों के अतिरिक्त गद्य-साहित्य नहीं लिखा गया। स्वतंत्रता के बाद कश्मीरी गद्य-साहित्य की तीन मुख्य विधाओं (कहानी, उपन्यास और नाटक) ने जन्म लिया। कश्मीरी में इससे पहले पारम्परिक नाटक खेले जाते थे, और उनकी भाषा काव्यात्मक होती थी।

कहानी—कश्मीर की सबसे पहली कहानी 'येलिफोल गाश' २५ फरवरी १९५१ को 'कल्चरल कांग्रेस' की एक बैठक में पढ़ी गई। इसके लेखक थे सोमनाथ जुत्शी। इसी के साथ दीनानाथ नादिम की कहानी 'जवाबीकार्ड' भी प्रकाशित हुई। यहीं से कश्मीरी कहानी की यात्रा आरम्भ होती। कश्मीरी की पहली कहानियाँ उस समय की कविता की भाँति प्रगतिशील चेतना से प्रभावित थीं। इन कहानियों में केवल दो प्रकार के पात्र मिलते हैं अच्छे और बुरे। अच्छे पात्रों में गरीब किसान और मजदूर

होते थे तथा बुरे पात्रों में जागीरदार और पूंजीपति। दोनों में संघर्ष शुरू होता था तथा किसान या मज़दूर की जीत के साथ ही कहानी समाप्त होती थी। इन दो कहानीकारों के अतिरिक्त ऐसी कहानियाँ लिखने वाले अन्य कहानीकार हैं :—**अमीन कामिल, सोफी गुलाम मुहम्मद, ताज बेगम रोंज़ू** आदि। सन् १९५५ ई० में **अख़्तर महीउद्दीन** का एक कहानी संग्रह 'सत् संगर' प्रकाशित हुआ। यह कहानी संग्रह परम्परा से बिल्कुल हटकर था। 'दरियाग्नि हुन्द येज़ार' और 'दन्दवज़ुन' जैसी कहानियों ने नई पीढ़ी के कहानीकारों के लिए एक स्वस्थ (आधुनिकतावादी) परम्परा प्रदान की। **हृदयकौल भारती, अलीमुहम्मद लोन, अवतार कृष्ण रहबर, गुलाम रसूल संतोष** आदि कहानीकारों ने इनसे प्रेरणा ग्रहण की। **डा० शंकर रैणा, बंसी निर्दोष और उमेश कौल** के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

सन् १९६० के बाद कश्मीरी कहानी में शिल्पगत और विषयगत परिवर्त्तन देखने को मिले इन कहानियों में प्लाट का महत्त्व घट गया। कहानियों के पात्र धर्म-गत नहीं रहे। इस संदर्भ में **फारूक मसूदी** का नाम विशेष रूप में लिया जा सकता है। अख़्तर महीउद्दीन और शंकर रैणा ने भी सन् साठ के बाद कुछ नई कहानियाँ पाठकों के समक्ष रखीं। **हरीकृष्ण कौल, बशीर अख़्तर** और **गुलशन मजीद** जैसे कहानीकारों के उभरने से आज कश्मीरी कहानी में बहुमुखी परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं।

उपन्यास—कश्मीरी में उपन्यास-साहित्य बहुत ही कम लिखा गया है। अभी तक कश्मीरी में जो भी उपन्यास लिखे गये हैं उनमें प्रगतिशील चेतना ही दृष्टि-गोचर होती है। अख़्तर महीउद्दीन द्वारा लिखित 'दोद त दग' कश्मीरी का सबसे पहला उपन्यास माना जाता है जो कि १९५८ में प्रकाशित हुआ। उससे पूर्व १९२२ में प्रो० श्रीकण्ठ तोषखानी का एक कथित उपन्यास धारावाहिक रूप में लाहौर के एक अख़बार में छपा था। उपन्यास का नाम था 'लीला'। अधिकांश विद्वान इसे उपन्यास नहीं मानते हैं।

'दोद त दग' के बाद **अमीन कामिल** का उपन्यास 'गटि मंज़ गाश' हमारे सामने आता है। कुछ आलोचक इस को लम्बी कहानी मानते हैं। अली मुहम्मद लोन ने भी 'असति छि इनसान' नामक उपन्यास लिखा जिसमें अमरनाथ यात्रा पर जाने वाले मज़दूरों की झाँकी प्रस्तुत की गई है। लेकिन ये तीनों उपन्यास लोकप्रिय नहीं हो सके जिसके कारण सन् १९७२ तक कोई नया उपन्यास नहीं लिखा गया। १९७२ में गुलाम नबी गौहर के दो उपन्यास 'मुजरिम' और 'म्युल' प्रकाश में आये। इन दोनों उपन्यासों में रोमानियत के पुट थे। 'अख दोर' बंसी निर्दोष द्वारा लिखित उपन्यास १९७५ में प्रकाशित हुआ इसमें भी प्रगतिशील चेतना थी। अमर मालमोही ने भी 'त्रेश त तरपन' नामक उपन्यास लिखा जो १९७६ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद कुछ अनुवादों के सिवा कोई भी नया उपन्यास देखने को नहीं मिला। कश्मीरी की पाठक संख्या कम होने के कारण उपन्यास का विकास नहीं हो पा रहा है।

नाटक—कश्मीरी में नाटक बहुत पहले से खेले जाते हैं। सन् १९२९ में कश्मीरी में सबसे पहला नाटक 'सतच कहवट' लिखा गया जिसके लेखक थे नन्दलाल कौल (१८७७-१९४०)। कुछ लोग कश्मीरी गद्य की शुरूआत भी यहीं से मानते हैं। इससे पहले कश्मीर में नाटक खेलने मात्र की परम्परा थी। इनको 'पाथर' (किसी विशेष व्यक्ति की नकल) कहते हैं। इनको खेलने के लिए कश्मीर में एक विशेष वर्ग होता था जिन को 'बांड' (भाँड़) कहते थे।[1] आज भी ऐसे नाटक इन 'बांडों' द्वारा खेले जा रहे हैं परन्तु ये अब लोकप्रियता खो चुके हैं। आधुनिक नाटक का जो रूप होना चाहिए वह हमें सबसे पहले 'सतच कहवट' में ही दिखता है। इसके पश्चात् गुलाम नबी 'दिलसोज़' (१९१९-१९४७) ने 'शीरीन खसरो' नामक नाटक लिखा। इसके बाद पं० ताराचन्द बिस्मिल (१९०४-१९४८) तथा पं० नीलकण्ठ शर्मा (१८८८) ने कुछ धार्मिक नाटक लिखे। प्रगतिशील लेखकों के नाटक भी सामने आने लगे। प्रेमनाथ परदेसी ने 'शहीद शेरवानी' नाटक लिखा। सन् ४७ के बाद जगन्नाथ वली ने हब्बा खातून के जीवन पर आधारित 'ज़ून' नाम से एक नाटक लिखा। इन्हीं के समानान्तर चलने वाले अन्य स्टेज ड्रामा लेखक थे नूर मुहम्मद रोशन, पुष्कर भान, सोमनाथ जुत्शी और अली मुहम्मद लोन। अमीन कामिल ने भी 'हब खातून' और 'जिन मज़ूर' दो लोकप्रिय नाटक लिखे। अख़्तर मही़उद्दीन ने 'नरित्त हुन्द सवाल' और 'शीश त संगिस्तान' दो नाटक लिखे। पुष्कर भान ने 'हीरो मचाम' के साथ ही कश्मीरी में हास्य नाटक का आरम्भ किया। सोमनाथ साधु ने भी 'ग्रैंड रिहर्सल' नाम से एक नाटक लिखा।

१९५३ के राजनीतिक परिवर्तनों के साथ ही कश्मीरी नाटक एक नया रूप लेकर हमारे समक्ष आता है। यह रूप मुक्त नाटक का था। इससे पहले के लगभग सभी नाटकों में सिद्धान्त-प्रचार का उद्देश्य ही देखने को मिला।

अख़्तर मही़उद्दीन के 'आपन हूर जंग' के साथ नये नाटक का आरम्भ हो गया। दूरदर्शन तथा रेडियो की लोकप्रियता के कारण इधर नाटक लिखने को प्रोत्साहन मिला है। अलीमुहम्मद लोन, जुत्शी, भान, 'साधू' शंकर रैणा, बंसी निर्दोश, अमीन कामिल, सज़ूद सैलानी, रहबर आदि रूपककारों ने रेडियो-दूरदर्शन के लिए बहुत अच्छे रूपक लिखे हैं। अली मुहम्मद लोन का 'सुया'; मोतीलाल क्यमू के 'ललबो द्रायस लोलरे' और 'छाय'; हरीकृष्ण कौल के 'नाटक करिवबन्द' और 'दस्तार' कुछ उल्लेखनीय रंगमचीय नाटक हैं। मोतीलाल क्यमू ने कुछ 'एब्सर्ड' नाटक भी लिखे हैं, उनका एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

कश्मीरी भाषा लगभग ३० लाख लोगों द्वारा आज बोली जाती है। सदियों तक बोली के रूप में रहने के बाद इसे शारदा लिपि में लिखा जाने लगा। शारदा लिपि कश्मीरी ध्वनियों को यथा-तथ्य रूप में लिपिबद्ध करने में समर्थ नहीं है। मुनीमों

---

१. कश्मीरी में 'भ' का 'ब' हो जाता है। —सम्पादक

की 'मुड़िया' के समान 'जो लिखे सो पढ़े' वाली बात थी। शारदा लिपि का प्रचलन हिन्दू-काल तक तो रहा ही उसके बाद भी रहा, परन्तु आज इस लिपि से परिचित केवल कश्मीरी पण्डितों का पुरोहित वर्ग है। आजकल कश्मीरी को फारसी लिपि में लिखा जाता है, जोकि कश्मीरी की ध्वनियों को लिपिबद्ध करने में पूर्णरूपेण असमर्थ है। देवनागरी लिपि भी कश्मीरी ध्वनियों को बिना विशेष-चिह्नों के लिपिबद्ध नहीं कर सकती। हाल में कश्मीरी के लिए फारसी लिपि में कुछ संशोधन करके एक विशेष लिपि बनाने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु उससे भी काम नहीं चलता।

यही कारण है कि आज तक कश्मीरी भाषा में कोई पत्रिका या समाचार पत्र नहीं है और कश्मीरी भाषा की (फारसी लिपिबद्ध) पुस्तकें न बिकती हैं न पढ़ी जाती हैं। आश्चर्य की बात है कि कश्मीर में, कश्मीरी भाषा, शिक्षा का माध्यम अभी नहीं बन सकी है। यही कारण है कि कश्मीरी भाषा के गद्य-साहित्य का (लिखित) विकास सन्तोषजनक रूप में नहीं हो पा रहा है।

कश्मीरी भाषा में दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक काव्य

डा० भूषणलाल कौल
रीडर, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

(रहस्यवादी काव्य प्रवृत्ति)

कश्मीरी काव्य का उपलब्ध प्राचीन रूप स्वस्थ एवं उच्चकोटि की दार्शनिक विचार-धारा से ओतप्रोत है। साहित्य में इन भावनाओं को लाने का श्रेय सर्व प्रथम श्री शितिकण्ठ को है, जिन्होंने १३वीं शताब्दी में "महानय प्रकाश" लिखा। इस विचार-धारा को आगे ले जाने में ललद्यद एवं शेख नूरूद्दीन का विशेष योगदान रहा है। इस रहस्यवादी काव्य-धारा में कई दार्शनिक सिद्धान्तों का सम्मिश्रण मिलता है। शैवमत, ब्रह्मवाद, अद्वैतवाद्, सूफी-मत एवं गीता के निष्काम कर्मयोग के सदोपदेश को इन सन्त कवियों ने अपने काव्य में स्थान दिया। कश्मीर का शैव दर्शन "त्रिक दर्शन" या "त्रिक सिद्धान्त" के नाम से भी प्रसिद्ध है और १२वीं शताब्दी के अन्त तक, अर्थात् हिन्दू राज्यकाल में, इस दर्शन ने कश्मीरियों के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया था। इस मत की व्याख्या यहाँ के संस्कृत विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में विशद् रूप से की है जिन में अभिनव गुप्त का 'तंत्रालोक' उल्लेखनीय है। यह दर्शन प्रधानत: तीन तत्त्वों पर आधारित है—शिव तत्व, शक्ति तत्व और नर तत्व। वेदान्तियों के कथनानुसार जिसे "ब्रह्म" कहा जाता है, शैवमत वालों ने उसे ही "शिव" की संज्ञा दी है।

कश्मीरी साहित्य के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक काव्य का विवेचन करते समय सर्वप्रथम हमारा ध्यान ललद्यद की ओर आकृष्ट होता है। "महानय-प्रकाश" के विषय में अभी भी स्थिति भ्रम-पूर्ण है यद्यपि प्रमुख रूप से उसका विषय त्रिक सिद्धान्त ही है। लल्लेश्वरी कश्मीरी-साहित्य की प्रथम प्रसिद्ध कवयित्री हैं जिन्होंने अपनी काव्य-वाणी से १४वीं शताब्दी में जन-मानस को आप्लावित किया। उन्होंने पहली बार अपने "वाख्यों" में तत्कालीन सामाजिक धार्मिक एवं दार्शनिक भावनाओं का समावेश किया। हिन्दू और मुसलमान दोनों उनका समान रूप से आदर करते थे। वे सदा ईश्वर भजन में ही लीन रहती थीं। उन्होंने बहुत ही सुन्दर तथा गम्भीर

"वाख" कहे हैं जो कि "ललवाक्य" के नाम से प्रसिद्ध हैं। अपनी विद्वत्ता के कारण उन्होंने संसार के श्रेष्ठ ज्ञानियों में अपना स्थान बना लिया है। उच्चकोटि की विदुषी होने के साथ-साथ उन्हें जीवन का बड़ा ही कटु अनुभव था। विषाद-ग्रस्त परिस्थितियों से विवश होकर वे ऐसे जीवन से पलायन चाहती थीं।

लल्लेश्वरी के काव्य में शिव परमतत्त्व है, जिसको उन्होंने निर्गुण निराकार माना है। शिव ही सर्वत्र व्याप्त है और शिव ही सर्वस्व है :—

—"शिव, प्रत्येक अणु में व्याप्त है। हिन्दू एवं मुसलमान का भेदभाव भूल कर उसकी शरण में जाओ, यदि बुद्धिमान हो तो मेरी बात समझ लो। यही वास्तव में ईश्वर की पहचान है।"[1]

अज्ञान वश जीव स्वयं अपने आपको नहीं पहचान पाता है। भौतिक सुख उसे सदा अन्धकार में डाल देते हैं और वास्ताविकता से वह अनभिज्ञ रहता है। स्वयं अपने आपको वह पहिचान नहीं पाता, परिणामस्वरूप वह जगत् की वास्तविकता एवं जीवन-लक्ष्य से कोसों दूर रहता है :—

"कौन मरेगा, किस को मारेंगे, कौन मारेगा और कौन मारा जाएगा। जो शिव को छोड़ कर जगत् के दाव-पेंच में फँस जाएगा, वही मरेगा और उसी को मारेंगे।"[2]

परमतत्त्व में लीन होने के लिए गुरु-उपदेश आवश्यक है। स्वयं ललद्यद ने भी स्यिद्‌बोयुई से गुरु शिक्षा ली थी। गुरु ही वास्तविक अर्थों में पथ-प्रदर्शक है। सूफी मत में भी गुरु के महत्व को स्वीकार किया गया है। अतः लल्लेश्वरी कहती हैं :—

"मेरे गुरु ने मुझे केवल एक ही उपदेश दिया—संसार के मोह-बन्धन को छोड़ कर आत्मा को पहचानना। इसी कथन को मैंने अपने लिए उपदेश समझा और इस कारण में निर्वसन नाचने लगी।"[3]

लल्लेश्वरी योगाभ्यास में सिद्ध थीं। आत्म-ज्ञान की प्राप्ती के हेतु वे नित्य

---

१. शिव छुई थ्‌लि थ्‌लि रोजान
मो जान ह्युन्द त मुसलमान
त्रुक अ्यि छुक ति पान परजिनाव
सोय्‌ छ्यि साहिबस जानी जान।

२. कुस म्‌रि ति कुस मारन
मरि कुस ति मारन कस्
युस ह्‌रि ह्‌रि व्ांविथ ग्‌रि-ग्‌रि करे
अवि सुई मरे ति मारन तस्।

३. गोरन वनुनम कुनुई वछुन
न्यव्‌रि दोपतम् अन्दर अछुन
सुई ग्‌व ललि म्य वाक् ति वछुन
तवै म्य ह्‌योतुम नगै नछुन।

योग-साधना में रत रहती थीं। योग के दुष्कर मार्गों मे चलकर उन्होंने परमज्योति का साक्षात्कार किया था। मिथ्या 'कपट', असत्य एवं राग-द्वेष से वह मुक्ति थीं। उन्होंने दर्शन के सिद्धान्तों का व्यवहारिक रूप से पालन किया है—

—"मैंने मिथ्या, कपट एवं असत्य को छोड़ दिया और अपने मन को उपदेश कर तद्नुकूल बनाया। मुझे प्रत्येक जीव के भीतर वही परमज्योति दिखाई दी अतः खान-पान में कैसा परहेज़।"[1]

उसे सारा संसार ही शिवमय प्रतीत हो रहा है अतः क्या पूजन क्या अर्चन रे।

वास्तव में धार्मिक अन्धविश्वास, रूढ़ परम्पराओं एवं मूर्ति-पूजा के विरुद्ध लल्लेश्वरी आत्म-शुद्धि पर अधिक बल देती हैं :—

—"तुम ही आकाश हो, तुम ही पृथ्वी हो, तुम ही दिन, रात एवं वायु हो। पूजा के लिए चढ़ाने का अनाज, जल, फूल सब कुछ तुम ही हो। तुम ही सर्वत्र हो, अब मैं तुम्हें क्या अर्पण करूँ। बड़ी विचित्र दशा है।"[2]

योगाभ्यास में अनेकों कठिनाइयों को सहकर कांच रूपी शरीर कंचन बन जाता है। सहन-शीलता एवं सन्तोष मनुष्य के चरित्र को दृढ़, पवित्र एवं स्वच्छ बना देते हैं :—

—"बिजलियाँ कड़कती हैं, मनुष्य को सब कुछ सहन करना है। चाहे मध्याह्न हो या अन्धेरा हो इस सब को सहन करना है।
सहनशीलता का अभिप्रायः है अपने आपको चक्की के दो पाटों में चुपचाप पीस डालना। यदि तुम में सन्तोष है तो वह स्वयं मिल जाएगा।"[3]

लल्लेश्वरी ने सब से अधिक अद्वैतवाद पर ज़ोर दिया। वे मूढ़ जनता के प्रति उदासीन हैं जो ज्ञान से अनभिज्ञ है और जो सांसारिक बन्धन में एवं माया जाल में फँसी हुई है। उसे उपदेश देना व्यर्थ है। कवयित्री कलात्मक ढंग से इस तथ्य को जनता तक पहुँचाती हैं :—

---

१. मिथ्या कपट असत् त्रोवुम्
मनस् फरुम सुई यपदेश
जनस अन्दर कीवल ज़ोनुम्
अनस् ख्यनस कुछ छुम द्वेष।

२. गगन छई भूतल छई
छई छुक दयन पवन ति रात
अर्घ चन्दन पोश पोन्य छई
छई छुक सोरई ति लागँ ज़ि क्या।

३. छालुन छु वुज़मलि ति त्रटे
छालुन छु मन्दयन गटिकार
छालुन छु पाम पंनुन् फडुन प्रटै
ह्यति मालि सन्तोष वाती पानै।

"मूर्ख से ज्ञान की बातें नहीं कहनी चाहिये। गधे को गुड़ खिलाने से अपना ही अमूल्य समय नष्ट होगा। रेतीली भूमि में बीज बोना व्यर्थ है और भूसे की रोटियों पर तेल लगाना भी व्यर्थ है।"[1]

गीता पर उन्हें परम विश्वास था। गीता के निष्काम कर्म-योग को वे व्यावहारिक रूप में देखना चाहती थीं। ढोंग रचाने के लिए पण्डित एवं तथाकथित विद्वान् गीता पाठ करते हैं परन्तु वास्तविकता से सभी अपरिचित हैं :—

—"व्यभिचारी लोग पुस्तकें पढ़ते हैं, पोथियों का पाठ करते हैं, जैसे तोता पिंजरे में राम नाम की माला जपता है। दिखाने के लिए गीता का पाठ करते हैं। मैंने गीता पढ़ी है और उसके उपदेश दैनिक जीवन में प्रयोग में लाती हूँ।"[2]

पण्डितों के कृत्रिम जीवन से उन्हें घृणा है अतः रुष्ट होकर कहती हैं :—

—"उपदेशक ! तू जनता को सन्मार्ग पर चलने का नित उपदेश देता है। लेकिन स्वयं तुझ पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, जिस प्रकार कसाई मांस बेचता है परन्तु स्वयं उसके पास खाने के लिए सिर या कान भी नहीं रहते।"[3]

यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि हिन्दी साहित्य में कबीर दास ने जिस निर्गुण काव्य-धारा का नेतृत्व किया एवं मल्लिक मुहम्मद जायसी ने जिस सूफी सिद्धान्त का समावेश हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा में किया, उन दोनों सिद्धान्तों का सम्मिश्रित रूप पहले ही कश्मीर के सन्त काव्य में मिलता है।

इसी युग में कश्मीर में एक प्रसिद्ध सन्त शेख नुरुद्दीन हुए हैं। इन्हें "नुन्दर्योश" भी कहा जाता है। "ऋषिनामा" इनके जीवन और काव्य के विषय में प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इन्हें हम ललद्यद की शिष्य परम्परा में ले सकते हैं। बचपन में ही इनका विवाह हुआ था। परन्तु गार्हस्थ जीवन में निराश होकर वे एकान्त गुफा में ईश्वर साधना में लीन रहे और समय-समय पर दार्शनिक विचारों से ओत-प्रोत रचनाएँ करते रहे जो बाद में 'श्लोक' कहलाए। नुन्दर्योश के श्लोकों में जनता

---

१. मुडस ग्यान्‌िच कथ नो व्‌निचिहे खरस गोर दिन्‌ि रावियिवोह
सकि शाठस फल नो घ्‌विन्धे कोमयाजन रा्‌विर्‌ि्‌जिनि तील।

२. अधिचारी हा मालि छी पोथि परान्
यिथि तोति परान राम पिंजरस मंज्
गीता परान ही था लवान्
परिम् गीता ति परान छसि।

३. परिवुन्यो लुफन छुकि परान
पानस छुई नि गछान कनन्
यिथि् पठि पुज् छ्इ नार्टि्फिनान
पानस ्नि पोशान प्‌कि-मण्डि ्ति फ्‌लि्‌न।

के लिए आध्यात्मिक सन्देश निहित है। जीवन की सरलता एवं पवित्रता पर उन्होंने बल दिया है। मानव-प्रेम को श्रेष्ठता प्रदान की है। बाह्याडम्बर एवं पाखण्ड उनके लिए असहनीय था। संसार से विमुख होकर वे उस एक सत्ता में विलीन होने के लिए साधना करने लगे। अपने जीवनकाल में वे अनेक सूफी सन्तों एवं कवियों के सम्पर्क में आए अतः उनकी काव्य-वाणी पर सूफी मत की स्पष्ट छाप पड़ी। वे एक समन्वयकारी सन्त थे जिन्होंने धार्मिक सहिष्णुता एवं चारित्रिक पवित्रता पर अधिक बल दिया है। सूफी सन्तों में उनका नाम अग्रगण्य है। सांसारिक वस्तुओं के प्रति मोह उनके लिए असहनीय है :—

—"आह ! मुझको नफ़स (मोह) ने मार डाला, वह अन्धेरे में मुझसे छिपकर बैठा, न जाने कहाँ। यदि वह मेरे हाथ आता तो मैं उसका गला तलवार से काट लेता।"[1]

परम प्रिय से मिलन सम्भव है परन्तु राग और द्वेष की भावना को छोड़ना पड़ेगा। यही सन्देश हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए है :—

—"मैंने तीन भवनों एव दसों दिशाओं में उसे खोजा, परन्तु सब व्यर्थ। वे कहीं नहीं मिले। मैंने साधुओं एवं तपस्वियों से उनके विषय में पूछा, परन्तु मेरी बात सुन कर वे रोने लगे—अपने अज्ञान पर। अन्त में जब मैंने राग और द्वेष का दमन किया तो उसे अपने ही समीप पाया।"[2]

उन्होंने अपने श्लोकों में हिन्दू और मुसलमानों के परस्पर बैर की निन्दा की है। अपने और पराये का भेदभाव मानव मन की कालिमा का द्योतक है। जब मनुष्य के भीतर यह अन्धकार नहीं रहेगा तब वह स्वयमेव भवसागर के पार हो जाएगा।[3] शेख साहब के प्रत्येक श्लोक में दो पंक्तियाँ होती हैं। श्लोक अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र होता है। इसके अतिरिक्त शेख ने कुछ वर्णनात्मक कविताएँ भी लिखी हैं जिनका विषय आध्यात्मिक है। इन्होंने अपने श्लोकों में प्रश्नोत्तर शैली को भी अपनाया है। भाषा संस्कृत-गर्भित है और ठेठ कश्मीरी के प्रयोग भी मिलते हैं।

---

१. नफसो मोरूस ि्त वाय
   छ्टित क्तुम् गटै
   अ्यि ि्य यिहम ि्त वा्यि
   करतल िछ्न्हस हटै।
२. छांडाम त्रन भवनन् ि्तब्यि द्िस दीशन्
   नेव ि्त निशान लोबमस ि्न फुने
   प्रछाम सादन ि्त्र व्यि तपर्यशन
   ि्तम ति बूजिथ् लि्ग वदने।
   ववँथ्लि द्युतुम रागन ि्त देश्यन
   अ्वि सुई म्य लोबुम् पानस निशे।
३. पर ि्त पान युस ह्युवई क्यदे
   सुई भव स्यन्दे त्र्य आव।

रहस्यवादी काव्य-धारा को आगे ले जाने में अलकेश्वरी का नाम भी उल्लेखनीय है। १७वीं शताब्दी में इनका जन्म श्रीनगर में पण्डित माधव दर के घर में हुआ था। उन्हें कठिन तपस्या के पश्चात् आध्यात्मिक दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई और जीवन पर्यन्त वे योग-साधना में लीन रहीं। उनका स्थान भारतीय योगियों की परम्परा में विशिष्ट है। उन्होंने लोकहित एवं लोक-कल्याण के लिए व्यावहारिक शिक्षा भी दी। अपने पिता से उन्होंने गुरु-शिक्षा ग्रहण की और उस परम-ब्रह्म की खोज में कई वर्षों तक योगाभ्यास में लीन रहीं। उनके विचारानुसार ईश्वर ही सर्वत्र व्याप्त है। उन्होंने लिखा है :—

—"तुम कौन हो और मैं कौन हूँ, क्या इस बात का विचार कोई करता है? वास्तव में यह सब आपका ही रूप हैं। आपकी ही लीला है।"[१]

१९वीं शताब्दी में महमूद गामी कश्मीर के एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। उन्होंने फारसी और कश्मीरी दोनों भाषाओं में रचनाएँ लिखी हैं। उनके काव्य में विविधता है। सूफी-मत से प्रभावित होकर उन्होंने कई रचनाएँ कश्मीरी भाषा में लिखी हैं जिनका कोई विशेष महत्व नहीं। महमूद गामी के समकालीन सूफी कवि रहमान डार हुए हैं। ब्रह्म को प्रियतम मानकर उसके विरह में उन्होंने कई रचनाएँ लिखी हैं। अपने प्रियतम के साक्षात्कार हेतु वे व्याकुल हैं :—

—"ओ मेरे प्रिय! मेरे संगी साथी, मुझ पर कृपा करो, तनिक दर्शन तो दिखाओ। मुझे केवल तुम्हारी आशा है। मैं अपना शीष तुम्हारे चरण-कमलों पर अर्पण कर दूंगी। मेरी आँखों को भी कभी-कभी धोखा हो जाता है और मैं भ्रमवश दूसरों को पुकारने लगती हूँ।"[२]

शम्स फकीर कश्मीर के प्रसिद्ध सूफी कवि हुए हैं जिन्होंने सूफी काव्य-धारा को अपनी काव्य-वाणी द्वारा एक नवीन जीवन प्रदान किया। इन्होंने आध्यात्मिक भावनाओं को लौकिक प्रेम के आवरण में प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में यद्यपि प्रेम-वर्णन बड़ा मनोरंजक एवं हृदयग्राही है तथापि उसमें असीम के साथ एकाकार होने का आभास सर्वत्र मिलता है। आध्यात्मिक प्रेम की हाला पीकर वे मस्त हैं। वह हाला ही उनके लिए अमृत है।

वहाबखार एक अन्य सूफी कवि हुए हैं। वहाब उनका नाम था और जीविका-निर्वाह के लिए लोहार का काम करते थे। लोहार को ही कश्मीरी भाषा में "खार" कहते हैं। वे अशिक्षित थे और गुरु-शिक्षा उन्होंने अपने पिता से ग्रहण की थी। उन्होंने कई गजलें एवं गीत लिखे हैं परन्तु कहीं भी कोई संग्रह प्राप्य नहीं है। रहस्य-

---

१. छ़ि कुस ब्वह कुस् कांह् व्यछ़ारा
अक्षिन्न धारा सुई चोन् रूप।

२. आद्नि यिखना छ्‌मि लादन त्‌ सर हो वन्दै पादन
मद्नि आ्सिस चा्नि वदनित् अज़ वात तम् दादन
्यि दो्दि न्‌र्यन बयि मावन त्‌ ्छिमगछ़ान भ्रान्ति नादन।

वादी एवं दार्शनिक काव्य-धारा में प्रशंसनीय योगदान देने का श्रेय १९वीं शताब्दी में पण्डित नन्दराम को भी है। पण्डित नन्दराम परमानन्द के उपनाम से सारे देश में प्रसिद्ध हैं। कश्मीर के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान मट्टन (मार्तण्ड) के निकट सीर गाँव में उनका जन्म सन् १७९१ में हुआ। उनके पिता मट्टन में लेखपाल थे और पण्डित नन्दराम भी २५ वर्ष की आयु में लेखपाल नियुक्त हुए। ८८ वर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ। मृत्यु से कई वर्ष पूर्व उन्होंने लेखपाल की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था। जीवन के आरम्भिक वर्षों में ही उन्होंने भगवत्गीता, शैवमत, ब्रह्मवाद और पुराणों का विधिवत् अध्ययन आरम्भ कर दिया था। आत्मज्ञान की प्राप्ति मनुष्य का परम लक्ष्य है, इस विषय में स्वामीजी का कथन कितना मर्मस्पर्शी है :—

—"जीते जी मरना एक खेल है, इसी को सहज विचार कहते हैं। अपनत्व को भूल कर वास्तविक तथ्य से परिचित होना ही सहज-विचार है।"[1]

अहं की भावना जीवात्मा के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। स्वामीजी ने भक्ति-मार्ग को अपनाया और उपासक के रूप में अपने इष्ट के दर्शनार्थ सदा लालायित रहे। योग-साधना भी उन्होंने की, परन्तु उनके काव्य में भक्ति-भावना की प्रधानता मिलती है। उनकी प्रसिद्ध रचना है........"शिवलगन" जिसमें शिव और पार्वती के मिलन द्वारा आत्मा और परमात्मा के एकीभाव का रूपक बाँधा गया है। स्वामीजी ने माया की सत्ता को भी स्वीकार किया, यह जीव के सम्मुख भ्रम-पूर्ण स्थिति उत्पन्न करती है—

—"तू माया के साथ सर्वत्र व्याप्त है, शरीर से भी तेरी स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान रहती है। सूर्योदय के पश्चात् ही छाया दिखाई पड़ती है।"[2]

गीता के निष्काम कर्म-योग से वे अत्यन्त प्रभावित थे। जीवन को उन्होंने कर्म-क्षेत्र माना है जिसमें सदा सत्य की विजय होती है। सुन्दर कलात्मक ढंग से उन्होंने जनता को इस तथ्य से अवगत कराया :—

—"कर्म क्षेत्र को धर्म का बल प्रदान करना। उसमें सन्तोष रूपी बीज को देना। उसी से तुम्हें आनन्द रूपी फल प्राप्त होगा।"[3]

स्वामी परमानन्द की दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचार-धारा को आगे ले जाने वालों में श्रीकृष्णजू राजदान का नाम उल्लेखनीय है। उनके विचारानुसार शिव और कृष्ण में कोई भेद नहीं। वह सर्वाकार है, सम्पूर्ण सृष्टि ही उनका आकार है।

---

१. गिन्दुना छु जिन्दि मरुन् सहज-विछार करुण
पानि छ़ि पान सोरुन सहज विछार करुण।

२. मायायि सूत्यन छि शायि शायि आसानि कायाञ्चि मंज निभ्योनि रोज़ानो
सिरियिकि आसनि छायि छ़्यि बासनि च्युत वग्रमर्शि
विफि़त मानि भगवानो।

३. कर्म भमि कायि विजि धर्मु क बल् सन्तोषि व्यासि व्यविशानन्द फल।

वे शिव-रूप हैं। वे सर्वस्व शिव पर निछावर करते हैं और बदले में उन्हें दिव्य प्रेम की प्राप्ति होती है।

—"शिव कृष्ण है और कृष्ण शिव है। जैसे पहले मक्खन था तत्पश्चात् उसी का नाम घी पड़ा। निराकार ब्रह्म का रूप यह सारा त्रिभुवन है। सर्वाकार ने अपना विश्व रूप दिखाया।"[1]

अन्य अनेक ज्ञात एवं अज्ञात कवियों ने इस काव्य-परम्परा को आगे बढ़ाया। कविवर 'महजूर' को यह काव्य विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था और उन्होंने इसका गम्भीर अध्ययन किया था। आरम्भ में उन्होंने भी कुछ दार्शनिक कविताएँ लिखी हैं, परन्तु समय की माँग कुछ और थी अतः वे इस ओर अधिक ध्यान न दे सके। दार्शनिक तथ्यों का निरूपण उनके काव्य में यत्र-तत्र अवश्य मिलता है परन्तु कहीं भी उन्होंने जीवन और जगत् से विमुख होकर पलायन की बात नहीं कही है। जगत् को उन्होंने निस्सार नहीं बताया। जीवन में संघर्ष के महत्व को उन्होंने स्वीकार किया है। धार्मिक संकीर्णता एवं कट्टरता के विरुद्ध उन्होंने एक नवीन दृष्टिकोण से लिखा है:—

—"वहाँ मैंने हिन्दू और मुसलमान को एक ही शक्ति के सम्मुख नतमस्तक देखा। इस से अधिक मैं प्रेम-नगरी का क्या हाल बताऊँ।"[2]

'महजूर' के काव्य में किसी विशेष दार्शनिक सिद्धान्त या मत का विवेचन नहीं मिलता है और न ही वे स्वयं किसी विशेष मत के अनुयायी थे। सामान्य रूप से उन्होंने यत्र-तत्र दार्शनिक विचारों को काव्य-वाणी प्रदान की है। उनका विचार था:—

—"अपने को भूल जाना वास्तव में परमतत्व को पाना है। जब मैंने यह जान लिया तो मन शान्त हुआ।"[3]

---

१. शिव छुई केशव ति केशव छुई शिव
पॅनि ऑसि ऑवि प्योस ग्यवुई नाव
निराकार सुन्द् रूप त्रिभुवन ग्व
सर्वाकारन् होवि् विश्वरूप।
२. तॅति वुछ् म्य ऑकिसी सजदि करान हिन्द् यन्व ति मुसलमान
ऑमि खोतिम्बु क्या लोॅलिचे शहरिच खबर वनै।
३. रावुन छु लबुन् यामचोनुम् राम सपनुम दिल।

जयशंकर प्रसाद के काव्य-दर्शन पर कश्मीरी शैव दर्शन का प्रभाव

डा० मुहम्मद अयूब खाँ

रीडर, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर ।

प्रत्येक महान् कवि का काव्य-दर्शन उसकी काव्य सम्बन्धी धारणा पर आधारित होता है । जयशंकर प्रसाद मूलतः आदर्शवादी कवि हैं, अतः उनका काव्यदर्शन भी आदर्श मूलक है । उनके मतानुसार काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है । "वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है ।"[१] यह वह अनुभूति हैं जो श्रेय सत्य को उसके मूल सौन्दर्य में आत्मसात् करती है । अतः सृजनात्मक ज्ञानधारा सत्य की सजीव, रूपात्मक, बिम्बात्मक, और कल्पनात्मक अनुभूति द्वारा सहज गृहीत होती है । काव्य-दर्शन सत्य का सुन्दर और सजीव रूप होने के कारण प्रभावात्मक होता है जिसमें जीवन को नीरस ज्ञान नहीं मिलता अपितु उसके सुन्दर और सजीव समन्वित रूप की झाँकी प्रस्तुत की जाती है । इसी सत्यं शिवं सुन्दरं के समन्वय को कवि अपने जीवन में जाग्रत करना चाहता है—

इस स्वप्नमयी संसृति के, सच्चे जीवन तुम जागो ।
मंगल किरणों से रंजित, मेरे सुन्दरतम जागो ॥[२]

इस काव्य-दर्शन की आधार-शिला दार्शनिक सत्य का अनुभूति परक रूप है । प्रसादजी मूलतः एक दार्शनिक रहस्यवादी कवि हैं अतः उनकी धारणा कि काव्य के कला-पक्ष के भीतर जो जीवन का सत्य रहस्य बनकर अन्तर्निहित है सबसे महत्वशाली है । यही रसमय रूप सर्वोपरि है क्योंकि उसमें कला और सत्य की अद्वैतता स्थापित है । इस दृष्टि से प्रसाद का काव्य-दर्शन शुद्ध ध्वनिवादी है ।

---

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ७ ।
२. आंसू ।

ध्वनि-सिद्धांत कश्मीर शैव-दर्शन की अद्वैत-भूमि पर विकसित हुआ है क्योंकि दार्शनिक रहस्य तथा ध्वनि में बहुत घनिष्ठ संबंध है। काव्य का अखण्ड तथा सात्विक आनंद ही रस है जिसे रस-ध्वनि के रूप में काव्य की आत्मा भी घोषित किया गया है। रस की स्थिति में सभी प्रकार की ध्वनि उसी में पर्यवसित होती है। अभिनव गुप्त के अनुसार वस्तु और अलंकार ध्वनियाँ भी अन्ततः रस रूप ले लेती हैं।[1] यही रस प्रकृत आनन्द है जो उपनिषदों में आत्मतत्व कहलाया गया है।[2] यह शुद्ध आनन्द अद्वैत भावना द्वारा संवेदित होता है। शैवाद्वैत की दार्शनिक अनुभूति को आनन्दवादी रहस्यवाद की संज्ञा दी जा सकती है। प्रसादजी का काव्य इसी आनन्दवाद से अनुप्राणित है। उनके काव्य का मूलभूत सर्वश्रेष्ठ स्वरूप आनन्दवादी है जिसका आधार विशेष रूप से कश्मीरी शैवाद्वैत है। शैवाद्वैत के अनुसार मायावाद को स्वीकृति नहीं मिली है क्योंकि वहाँ जगत् स्वप्न न होकर यथार्थ है। यह दर्शन जीवन और जगत् को शाश्वत मानता है। जीवन और जगत् चिति के ही स्वरूप हैं चाहे उनमें संकुचित रूप ही क्यों न हो। प्रसादजी संसार को छोड़कर अरूप सौन्दर्य के अन्वेषक नहीं रहे हैं। उन्होंने जीवन और जगत् को महत्व देते हुए चिति के विराट सत्यं शिवं और सुन्दरं रूप का शैवदर्शन के अनुसार ही संदर्शन किया है—

अपने दुःख-सुख से पुलकित
यह मूत विश्व सचराचर।
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर।।

शैवाद्वैत के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि के आदि-तत्त्व शिव हैं। यह संसृति शिव का ही आभास है—

अनपेक्षस्य वशिनो देश काल कृति क्रमाः
नियतानेति सा विभुर्विभो विश्व कृति शिवः।[3]

प्रसादजी ने इसी सत् रूप जगत् का चित्र अपनी प्रसिद्ध कविता 'प्रेम राज्य' में खींचा है—

अहो लखो यह विश्वेश्वर की सृष्टि अनूप
शिव स्वरूप तिन माँहि विराजत लखि सब ही सम
यह विराट संसार तासु अव्यक्त रूप है।[4]

---

१. "तेन रस एवं वस्तुतः आत्मा, वस्त्वलंकार ध्वनिस्तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तावित्याभिप्रायेण 'ध्वनिः काव्यस्यात्मा' इति सामान्येनोक्तम्।" —ध्वन्यालोक-लोचन १/५

२. यद वै तत् सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।—तैत्तिरीय उपनिषद् २/७/१

३. तंत्रालोक, १/९८/९९।

४. चित्राधार, प्रेमराज्य।

प्रसादजी जगत् को कर्म-स्थल मानते हैं। शिव तत्त्व से आभासित दृश्य-जगत् अद्वैत अवस्था की ही अभिव्यक्ति है। इस जगत् में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को ही आत्मसात् किया गया है जबकि शंकर का मायावाद केवल निवृत्ति पर आधारित है। आनन्दवाद प्रसाद के काव्य का आंतरिक पक्ष है तथा आनन्दवाद का लक्ष्य विश्व को कर्मस्थल मानने से सिद्ध होता है। काम ने मनु को स्वप्न में यही शिक्षा दी है—

यह नीड़ मनोहर कृतियों का
यह विश्व कर्म रंगस्थल है॥
है परम्परा लग रही यहाँ
ठहरा जिसमें जितना बल है॥[1]

परम शिव की दो शक्तियाँ शिव और शक्ति हैं। शक्ति के ज्ञान, इच्छा और क्रिया ये तीन रूप हैं। मनुष्य आनन्द की सिद्धि के लिए उत्पन्न होता है। इस आनन्द के लिए संघर्ष करना आवश्यक है। वचन, कर्म और भाव की एकता से ही संघर्ष सफल होता है। निष्क्रिय ज्ञान विडम्बना का कारण होता है तथा ज्ञान समन्वित क्रिया का रूप आनन्द की सृष्टि करता है। लेकिन संकुचित जीव (ज्ञान, इच्छा, क्रिया रहित अणु) को विडम्बना का सामना करना पड़ता है—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।[2]

प्रसाद के भाव-पक्ष के अनुसार कामायनी में द्वैत भावना ही दुःख का मूल है, इसीलिए वे आनन्दवाद से अनुप्राणित अद्वैत पर बल देते हैं—

हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं।
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।[3]

शिव के दोनों रूपों में से उपर्युक्त उद्धरण में विश्वमय शिव की ही विशेषता संलक्षित है क्योंकि विश्वोत्तीर्ण परम शिव को महाचिति कहा गया है जो अपने ही आनन्द स्वरूप से उच्छलित शक्ति (विश्वमय शिव) द्वारा अपने आप ही उन्मीलित है—"आनन्दोच्छलिता शक्तिः सृजत्यात्मात्मना" इस शक्ति को विमर्श कहा गया है।

१. कामायनी, कामसर्ग।
२. कामायनी रहस्य सर्ग।
३. वही।

विश्व या जगत् का वास्तविक उन्मीलन एवं निमीलन इसी विमर्श शक्ति से होता है। यह शक्ति स्वतन्त्र रूप में विश्व का उन्मीलन करती है।[1] उन्मीलनावस्था का वर्णन प्रसाद ने इस प्रकार किया है—

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन।
निज शक्ति तरंगायित था
आनन्द - अम्बु - निधि - शोभन।[2]

शिव प्रकाश रूप है और शक्ति विमर्शरूपिणी है। विमर्श का अर्थ है अकृत्रिम अहं की स्फूर्ति। शिव शक्ति का आंतरिक उन्मेष सदाशिव की संज्ञा पाता है। सदाशिव में प्रमा का 'अहं' इदं को आवृत्त कर लेता है। शिव शक्ति का बाह्य-उन्मेष ईश्वर तत्त्व कहलाता है। इस दशा में 'अहं इदम्' (जगत्) का अनुभव आत्मा के अभिन्न रूप में करता है। सद्विद्या ज्ञान की उस दशा को कहते हैं जहाँ अहं और इदं का पूर्ण समानाधिकरण्य रहता है।[3] सद्विद्या में "मैं ही सब कुछ हूँ" की प्रतीति होती है तभी माया तत्त्व अपना कार्य आरम्भ कर देता है। माया अहं और इदं को अलग कर देती है। अहमंश पुरुष हो जाता है और इदमंश प्रकृति हो जाता है। प्रसाद ने सदाशिव, ईश्वर तथा सद्विद्या तीनों विद्या-तत्त्वों का रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. सदा शिव—

मैं की मेरी चेतनता
सब को स्पर्श किये सी।[4]

२. ईश्वर—

सब भेदभाव भुलवाकर
दुःख सुख को दृश्य बनाता।
मानव कह रे यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता॥[5]

---

१. चितिः स्वतंत्रा विश्वसिद्धि हेतुः
स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।
—प्रत्यभिज्ञा, हृदयम् सूत्र १/२

२. कामायनी, आनन्द सर्ग।

३. ईश्वरो बहिरुन्मेषो निमेषोऽन्तः सदाशिवः।
समानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदं धियोः।

४. कामायनी, आनन्द सर्ग।

५. वही।

३. सद्विद्या—

अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।[1]

परम शिव की पाँच शक्तियाँ सर्वकर्तृत्व सर्वज्ञत्व पूर्णत्व, नित्यत्व और व्यापकत्व पुरुष और प्रकृति तत्त्वों की पृथकता में संकुचित होकर अणु को पाँच कंचुकों से आवृत्त कर लेती हैं। यही कंचुक संकुचित करने वाली पाँच शक्तियाँ कला, विद्या, राग, काल और नियति हैं।[2] परमशिव अपनी इच्छा से संकुचित होकर इन्हीं कंचुकों के रूप में अभिव्यक्त होता है—

संकुचित असीम, अमोघ शक्ति।
जीवन को बाधामय पथ पर ले चले भेद से भरी भक्ति।
या कभी अपूर्ण अहंता में हो राग मयी सी महासक्ति।
व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बन्द।
सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बनकर कुछ रचे छंद।
कर्तृत्व सफल बनकर आवे नश्वर छाया सी ललित कला।
नित्यता विभाजित हो पल पल में काल निरन्तर चले ढला।[3]

इसके पश्चात् संकोच आगे चलता है। प्रकृति सत, रज, तम का साम्यात्मक अथवा अक्षुब्ध रूप है। चैतन्य की इच्छा पर ही इसमें क्षोभ उत्पन्न होता है। इसी प्रकृति तत्त्व के संयोग से पुरुष को जागृति होती है। यह जगत् उसकी शक्ति का ही विस्तृत रूप है जिसे स्वेच्छा से अभिव्यक्त किया है। पुरुष और प्रकृति का यही रूप देखिए—

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन।
निज शक्ति तरंगायित था
आनन्द - अम्बु - निधि - शोभन।[4]

पुरुष में जो चेतना प्रस्फुटित होती है वही सत्व गुण मय बुद्धि है। बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है जहाँ रजोगुण के कारण पृथक् सत्ता की प्रतीति होती है। अहंकार से मन की उत्पत्ति होती है जहाँ तमोगुण प्रधान होने के कारण क्रियाशीलता आती है। इस प्रकार महाचिति की ज्ञान, क्रिया और इच्छा रूपी शक्तियाँ क्रमशः बुद्धि अहंकार और मन में संकुचित होकर निहित रहती हैं। इन शक्तियों की पृथकता से

१. कामायनी, आनन्द सर्ग।
२. सर्व कर्तृत्व-सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व-नित्यत्व-व्यापकत्व-शक्तयः संकोचं गृह्वाना यथाक्रमं कला विद्या राग काल—नियतिरूप तयाभान्ति। —प्रत्यभिज्ञा-हृदयम १/३
३. कामायनी, इड़ा सर्ग।
४. कामायनी, आनन्द सर्ग।

ही वैषम्य होता है।[१] इससे आगे संकोच होते-होते पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नासिका, जिह्वा चक्षु, त्वक् और श्रवण), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक् पाणि, पाद, पायु और उपस्थ), पाँच तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) तथा पंच महाभूत (आकाश वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी)—इन तत्त्वों की सृष्टि होती है। इस प्रकार ३६ तत्त्वों में आत्मन् का विश्वात्मक रूप प्रस्फुटित होता है।

कामायनी में उत्तरोत्तर संकोच के सोपान मिलते हैं। इच्छा ज्ञान और क्रिया तीनों शक्तियों में असामंजस्य होने के कारण भेदमय संसार और अज्ञान को अवसर मिलता है। इन शक्तियों के बिखरे हुए कोणों से त्रिकोण बनता है। यही त्रिपुर का रूप है।[२] यह स्थिति अशुद्ध विद्या की है लेकिन जब कोण एक दूसरे से मिलते हैं अर्थात् त्रिकोण बनता है तभी शक्ति श्रद्धा के मध्य में (चतुष्कलमयो विन्दु शक्तेरुदरगः प्रभु[३]) मनु चतुष्कल बिन्दु के रूप में दिखाई देते हैं।

जब मनु तुरीयावस्था में पहुँचते हैं तो इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीनों शक्तियाँ यहाँ परस्पर संबद्ध होकर इच्छा-शक्ति के रूप में अवशिष्ट रह जाती हैं। तंत्रालोक में भी इच्छा शक्ति का रूप वर्णित है। अनुत्तर आनंद शक्ति के रूप में तीनों शक्तियाँ पूर्ण रूपेण अव्यक्तावस्था में होती हैं—

अनुत्तरस्य पूर्वोक्तनीत्या रौद्र् आदि शक्ति त्रयमयत्वेत
आनन्दस्यापि तत्सकार मात्र सारत्वेन त्रिकोण रूपत्वात्।
अनुत्तरानन्द चितौ इच्छा शक्तौ नियोजिते।[४]

आनन्द की स्थिति में शिव और शक्ति के परस्पर संघट्ट से नाद पैदा होता है। यह अनाहतोत्तीर्ण होता है। इस स्थिति में चिति की गति पहले महाविषम होती है फिर दिव्य नाद के रूप में परिवर्तित होती है—

अनाहतोत्तीर्णा महा विषम चिद गतिः
वीर हृद् घट्टनोद्युक्तो रावो देव्या विजृम्भते।[५]

---

१. इच्छा ज्ञान क्रिया चेति यत्पृथक् पृथगंज्यते।
सवेव शक्तिमत्स्वैः स्वैरिल्य माणाविर्क स्फुटम। —तंत्रालोक, ३/१०६

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा हो पूरी क्यों मन की।
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की॥ —कामायनी, रहस्य सर्ग

२. यही त्रिपुर है, देखा तुमने तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने।
अपने केन्द्र बने दुख सुख में भिन्न हुए हैं ये सब कितने॥
—कामायनी, रहस्य २०८

३. तंत्रालोक भाग २, विवेक, पृ० ७६।
४. तंत्रालोक भाग २, विवेक, पृ० १०५।
५. तंत्रालोक भाग २, विवेक पृ० ७६।

प्रसाद ने तंत्रालोक के इसी रूप को मनु तथा श्रद्धा की तन्मय स्थिति में— चिति, की चिता के धधकने और महाकाल के विषम नृत्य और अनाहत पर दिव्य नाद के रूप में संदर्शित किया है—

चितिमय चिता धधकती अविरल महाकाल का विषम नृत्य था ;
विश्वरन्ध्र ज्वाला से भर कर करता अपना विषम कृत्य था ।
स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो इच्छा ज्ञान क्रिया मिल लय थे ;
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुतमनु बस तन्मय थे ।[१]

इसके पश्चात् ही अद्वैत की स्थिति समरसता की संज्ञा पाती है जिसमें साधक को अनुभूति होती है कि न तो 'मैं' हूँ और न कोई अन्य है—

नाहमस्मि न चान्योऽस्तिध्येयं चात्र न विद्यते
आनन्द पद संलीनं मनः समरसीगतम् ।[२]

इस समरसता की स्थिति में न तो दुःख रहता है । और न सुख, न ग्राह्य और न ग्राहक—केवल परमार्थ ही रहता है ।[३] इसी अवस्था में मनु को चिदानन्द की उपलब्धि होती है । चिन्मय शिव तत्त्व में वे भी चिन्मय हो जाते हैं । सामरस्य की इसी अवस्था में कामायनी का अंत किया गया है—

प्रतिफलित हुईं सब आँखें उस प्रेम ज्योति विमला से ;
सब पहचाने से लगते अपनी ही एक कला से ।
समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था ;
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था ।[४]

इस प्रकार सामरस्य के इस आदर्श का संदेश देते हुए प्रसाद कश्मीरी शैव-दर्शन की व्यापकता तथा उसके व्यावहारिक पक्ष की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं । विश्व में मानवतावादी सिद्धांत का ठोस आधार शैवदर्शन में शताब्दियों पूर्व स्थापित हो चुका था । प्रसाद इस आध्यात्मिक आधार को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करते हैं । यह जगत् संघर्ष का रंगमंच है जहाँ शुद्ध भाव से इच्छा द्वारा परिचालित व्यक्ति ही कर्मठ हो सकता है । शैवदर्शन स्वतन्त्रता का समर्थक है लेकिन उच्छृंखलता को मान्यता नहीं देता । यह दर्शन ब्रह्माण्ड (Universe) में जीवन की एकता

---

१. कामायनी रहस्य सर्ग ।
२. नेत्र तंत्र भाग १, पृ० १९८ ।
३. न दुःखं न सुखं यत्र न ग्राह्यं ग्राहको न च ।
न चास्ति मूढ़ भावोऽपि तदस्ति परमार्थतः । —स्पन्द कारिका १/५
४. कामायनी, आनन्द सर्ग ।

(अद्वैत), समस्त जीवों को ऐक्य तथा समस्त मानवता के अद्वैत सम्बन्ध का संदेश देता है। जगत् में रहते हुए ही साधारण से साधारण व्यक्ति इस दर्शन से प्रेरणा प्राप्त करके विकास के विभिन्न सोपानों को पार करते हुए समरसता की स्थिति में श्रेय और प्रेय रूप को प्राप्त कर सकता है। समरसता की स्थिति और काव्य की संकल्पात्मक अनुभूति में आदर्श सम्बन्धी समानता है। प्रसाद ने इसी समानता के आधार पर अपना काव्य-दर्शन प्रतिपादित किया है।

प्रसाद के काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्य-वाद है। रहस्य सदैव र..-रूप में होता है और आनंद प्रदान करता है। काव्य के इस आत्मपक्ष में समस्त चेत ..ा विशुद्ध आनन्दानुभूति में विलीन हो जाती है। कामायनी की अंतिम पंक्तियाँ शांत रस में पर्यवसित हैं अतः कवि के मतानुसार शांत रस सर्वोपरि है अथवा वही श्रेय और प्रेय है। कश्मीरी शैवदर्शन के माध्यम से इस महान कवि ने अमरता का यही संदेश दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रसाद के इस काव्य को पढ़कर पाठकों के चित्त की स्थिति शांत एवं तरंगहीन सागर की भाँति हो जाती है। इस प्रकार शैव-दर्शन ने प्रसादजी को एक सशक्त काव्य-दर्शन का आधार प्रदान किया है।

मिर्ज़काक—एक खोज रिपोर्ट

डा० कृष्ण रैणा
हिन्दी विभाग, हि० प्र० विश्वविद्यालय, शिमला।

जीवन—मिर्जकाक ने स्वयं अपने जीवन के विषय में कुछ नहीं लिखा है। श्री सर्वानन्द कौल प्रेमी ने एक पुस्तिका मिर्ज़काक पर प्रकाशित की है और मिर्ज़काक के जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इसमें मिर्ज़काक की केवल तीन-चार कविताओं का ही संग्रह किया गया है। मूल पाण्डुलिपियां देखने पर ज्ञात होता है कि श्री सर्वानन्दजी ने बीच-बीच में कहीं-कहीं दो-दो चार-चार पंक्तियां लेकर अपनी इस पुस्तिका का संग्रह किया है।

मिर्ज़काक के वंशज हांग्लगुण्ड ग्राम में निवास करते हैं जो अनन्तनाग से १३ मील दूर तथा कुकरनाग के निकट है। वहां जाने का मुझे स्वयं अवसर प्राप्त हुआ है और मिर्ज़काक के वंशजों से जो कुछ मुझे मौखिक रूप में उपलब्ध हुआ है उसका मैंने यहां उपयोग किया है, वहां तीन पाण्डुलिपियां मैंने देखीं।

मिर्ज़काक का जन्म संवत् १८०५ अर्थात् १७४८ में हुआ है।[1] यही मत मिर्ज़काक के वंशजों में प्रचलित है और इस मत की पुष्टि वहां उनके कुल-गुरू से भी हुई है।

हांग्लगुण्ड से ही मुझे श्री शिवजी रैणा से मिर्ज़काक की शिष्य-परम्परा और वंश-वृक्ष प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है :

शिष्य परम्परा—मिर्ज़काक → निदानकाक → जयकाक → परकाक → दीनानाथ। इस शिष्य परम्परा का समय ज्ञात नहीं हो सका।

मिर्ज़काक का जन्म लस पंडित के घर में हुआ था। मिर्ज़काक के माता-पिता की मृत्यु बाल्यकाल में ही हुई थी। अछन से इनका सम्बन्ध इस कारण है क्योंकि अछन में रहने वाली मौसी ने मिर्ज़काक को गोद लिया था, जहां उन्होंने जीवन का आरम्भिक समय व्यतीत किया है। पंडित रघुनाथ दर का मत इससे भिन्न है। उनका विचार है कि मिर्ज़काक का बड़ा भाई मौन पंडित अपनी मौसी के यहां मुतबन्ना हुआ था, इस बिना पर आप भी इसी के साथ रहने लगे।[2] यह संगत नहीं बैठता क्योंकि अछन में इनकी मौसी की मृत्यु पर ये हांग्लगुण्ड अपने ज्येष्ठ भ्राता के पास आते हैं।

---

१. वाख मिर्ज़काक, सर्वानन्द कौल प्रेमी कश्मीरी (उर्दू में) प्र० सं० १९६१, पृ० ५।
२. संतमाला, पं० रघुनाथ दर (उर्दू में) प्र० सं० १९६२, पृ० ७९।

मिर्ज़काक पढ़े-लिखे नहीं थे। प्रातः से सायं तक कृषि करते थे, कड़ी धूप में और कठिन शीत में। इनका मन आध्यात्मिक तत्वों की ओर ही लगता था। परिणाम यह हुआ है कि अछन में अपना कोई न रहने पर ये हांग्लगुण्ड वापस आये जहां ये आध्यात्मिक विचारों में रत रहने लगे। इनके भ्राता ने भी घर-गृहस्थी के उत्तरदायित्व से इनको मुक्त ही रखा।

मिर्ज़काक का युग—मिर्ज़काक का आविर्भाव पठानों के अंतिम राज्यकाल में हुआ था जो सन् १७५३ से आरम्भ होता है। शासक जनता से अमानवीय व्यवहार करते थे। दुर्रानी वंश के २६ गवर्नरों ने इस काल में शासन किया, इनमें भी अब्दुल-शाह जैसे गवर्नरों का शासन अत्याचार का शासन था। हिंदू जनता ने तब शांति की सांस ली जब राजा सुखजीवन सन् १७५४ में कश्मीर के गवर्नर बने।[1] पं० महानंद दर उनका पेशकार था, परंतु सन् १७६२ में ही पठान सरदार नूरद्दीन खां ने राजा सुख जीवन को परास्त किया और वह स्वयं यहां का गवर्नर बन गया। सन् १७६५ में नूरद्दीन खां ने पं० कैलास दर को अपना पेशकार और मीरमुकीम कण्ठ को न्यायाधीश बनाया। द्वितीय बार सन् १७६६ में यहां फिर से राजनीतिक वातावरण पर अन्धकार छाया जब लाल मुहम्मद खां यहां का गवर्नर बना। उसने हिंदुओं पर अत्यधिक अत्याचार किये परंतु सन् १७६६ में हीं खुर्रम खां और कैलास दर ने कश्मीर में प्रवेश किया जिनको जनता ने लाल मोहम्मद की क्रूरता से बचाने का एकमात्र रक्षक मान लिया।[2] खुर्रम खां के समय यहां हिंदुओं की दशा में कुछ सुधार हुआ था परंतु एक वर्ष के अनंतर ही मीर फकीरुल्ला कण्ठ यहां का स्वतंत्र शासक बन गया। उसने अपने पिता मीर मुकीम कण्ठ का प्रतिशोध लेने के लिए हिंदुओं को अत्यधिक सताया और सहस्रों हिंदुओं को इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर विवश किया।[3] फकीरुल्ला खां ने अपने व्यक्तिगत प्रतिशोध के लिए तुच्छ 'बोम्बा' सरदारों से सहायता ली और कश्मीरी पंडितों के नाश की योजना बनाई। असंख्य पंडितों की हत्या करवाई गई। इन्हीं परिस्थितियों में नूरुद्दीन खां भी बोम्बा सेना को लेकर आक्रमणकारी का सामना करने के लिए निकला। जब फकीरुल्ला खां को विजय की आशा नहीं रही तो वह रणक्षेत्र छोड़कर भाग गया और नुरुद्दीन खां ने कश्मीर का शासन संभाला और शांति से काम लेना आरंभ किया परंतु स्वतंत्र रहने की कामना से उसने अफगान शासन को वार्षिक कर देना अस्वीकार किया, परिणामस्वरूप मोहम्मद खां को कश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया गया, परंतु नुरुद्दीन खां ने उसे यह कार्य सौंपने की अस्वीकृति दी। अतः संघर्ष पुनः आरम्भ हो गया।

चामत्कारिक घटनाएं—इसी पठान शासन में मिर्ज़काक का आविर्भाव हुआ था। पठान कृषि पर कड़ा नियंत्रण रखते थे, बेगार का प्रचलन था। एक बार मिर्ज़-

---

1. A History of Kashmiri Pandits, Jia Lal Kilam, Page 145.
2. Ibid, Page 164.
3. Ibid, Page 176.

काक को भी पठानों ने बेगार के लिए बुलाया और लगभग डेढ़ मन चावल गांव से श्रीनगर तक लाने की आज्ञा दी। इसी से संबंधित एक चामत्कारिक घटना भी प्रचलित है कि देवी के रूप में एक कन्या मिर्ज़ाकाक के निकट आई और उसने चावलों की रसीद दी और वह कन्या अदृश्य हो गई। जब पठानों ने यह दृश्य देखा तो वे चकित हो गए। उस समय से वे मिर्ज़ाकाक की आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित हुए। ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाएं प्रत्येक संत के साथ संबंधित होती हैं जिनसे तथ्य निकालना कठिन है। यह बात स्पष्ट है कि मिर्ज़ाकाक को भी पठानों के राज्यकाल में बेगार करनी पड़ी।

मिर्ज़ाकाक एक सिद्ध संत थे जिनकी प्रसिद्धि इनके जीवन-काल में ही फैल चुकी थी, अनेक शिष्य इनके पास आकर रहने लगे थे। श्रीनगर के संत लछकाक के परम गुरु भी यहीं रहे हैं। इन्होंने ८६ वर्ष की आयु, अर्थात् १६६१ वि० (सन् १८३४), में इस संसार से प्रयाण किया। इनकी समाधि हांलगुण्ड में विद्यमान है।

मिर्ज़ाकाक ने कश्मीरी भाषा में 'वाखों' की रचना करके लल्लद्यद और नुंदर्योश के वाखों की परम्परा का ही विकास किया है। इन वाख्यों का कोई संपूर्ण प्रकाशित संग्रह उपलब्ध नहीं है। इस बात की ओर निर्देश किया गया है कि सर्वानन्द कौल के संकलन में केवल चार ही कविताएं हैं और उनमें भी क्रम का अभाव है।

मिर्ज़ाकाक का काव्य अभी पाण्डुलिपियों में ही सुरक्षित है। मुझे हांगलगुण्ड ग्राम में तीन पांडुलिपियां देखने का अवसर मिला। एक पं० दीनानाथ के पास थी और दो पंडित जियालाल के पास। तीनों पांडुलिपियां फारसी लिपि में हैं। पं० दीनानाथ के पास की पांडुलिपि के विषय में बताया गया है कि वह मिर्ज़ाकाक के हाथ की लिखी हुई है अर्थात् १८वीं शताब्दी की है। इस प्रकार यह पांडुलिपि लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व की प्रतीत होती है। ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होता है कि यह पांडुलिपि दो हाथों से लिखी हुई है जिसमें छः सौ छियानवें पृष्ठ मिर्ज़ाकाक के हैं और चौअन पृष्ठ मिर्ज़ाकाक के शिष्य पं० परकाक के हैं, क्योंकि कागज भी दो रंग का है—कश्मीरी सफेद और कश्मीरी पीला। काली मसि का प्रयोग किया गया है इस पांडुलिपि की पंक्तियों में साम्य नहीं है, कहीं-कहीं दस या बारह और कहीं तेरह पंक्तियां एक पृष्ठ पर हैं। एक पद दो पंक्तियों वाला है और पद के चार भाग हैं। लिखाई कहीं मोटी है कहीं पतली। इस पांडुलिपि की लम्बाई साढ़े छः इंच, चौड़ाई पांच इंच, मोटाई पौने दो इंच है।

दो पांडुलिपियां पं० जियालाल के पास हैं जिनमें एक परकाक की और दूसरी कण्ठकाक की लिखी हुई है। परकाक की लिखी हुई प्रति में कुल तीन सौ चौअन पृष्ठ हैं, इसकी स्याही काली है, पंक्तियां दस से सोलह तक हैं। यह भी कश्मीरी कागज पर लिखी हुई प्रति है। इसकी लम्बाई साढ़े ग्यारह इंच, चौड़ाई छः इंच और मोटाई सवा इंच है। इस प्रति में मिर्ज़ाकाक की कविताओं के साथ-साथ लल्लद्यद के पदों का संकलन भी किया गया है। यह प्रति बुरी दशा में है और कागज के कीड़ों ने इसे जर्जर बना दिया है।

द्वितीय पांडुलिपि जो पं० कण्ठकाक की लिखी है उसमें कुल एक सौ अट्ठावन पृष्ठ हैं जिनमें एक सौ छियालीस पृष्ठ कश्मीरी कागज पर काली स्याही से लिखे हुए हैं और बारह पृष्ठ साधारण कागज पर, कहीं फारसी और कहीं शारदा लिपि में लिखे हुए हैं। मुख्य कृति के साथ इन बारह पृष्ठों का संबंध नहीं है, यह बाद में इसके साथ जोड़े गए हैं। इन जुड़े हुए पृष्ठों में एक स्थान पर लाल स्याही का प्रयोग भी किया गया है। इस पांडुलिपि की लम्बाई पौने आठ इंच, चौड़ाई छः इंच, और मोटाई आधा इंच है। प्रति के देखने से प्रतीत होता है कि यह प्राचीन नहीं है। इसको सुरक्षित रखा गया है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ में दस पंक्तियां हैं।

मिर्जकाक की विचारधारा—मिर्जकाक के अनुसार ब्रह्म निर्गुण है, गुणातीत है। इन्होंने उसे सगुण स्वीकार नहीं किया है। इसी कारण वे ब्रह्म के नाम को महत्व देते हैं।[1] जीव का लक्ष्य ब्रह्म है ओंकार-रूपी कमान से जीवन-रूपी तीर का निशाना ब्रह्म है।[2] ब्रह्म भी भक्त का अन्वेषण करता है और सहस्रों में से किसी एक को ही अपनी साधना के लिए चुनता है।[3] मिर्जकाक ने उस निर्गुण ब्रह्म को राम भी कहा है और श्यामसुन्दर भी, उसका निवास-स्थान समस्त ब्रह्माण्ड को माना है और भीतर और बाहर उसी की सत्ता का आभास पाया है।[4] ब्रह्म की अखण्ड सता ही ब्रह्माण्ड है, जीव की कल्पना से भी उसका साम्राज्य विस्तृत है। जो इस रहस्य को जान लेता है वही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।[5] ब्रह्म और जीव भिन्न नहीं हैं। जीवात्मा

---

१. परुण गव अन्य सु गोन,
गुण सोय रूव न मंजूर,
अतीत गुण ओं पोख्य,
भजन नाम राम रामै। —मिर्जकाक, सर्वानन्द कौल प्रेमी १९६३, कविता सं० १, पद १

२. ओं गव कमानय,
जीवन ज्ञान तीरय,
निशान ब्रह्मय,
भजन नाम राम रामै। —वही, पद २, कविता १

३. भकत्यस वय छु छारान,
वल्लिथ तौर पत लारान,
लछि मंज तस छु चारान,
भजन नाम राम रामै। —वही, पद ५, कविता १

४. तस नाव श्याम सोन्दर,
घर छुस जगि अन्दर,
न्यबर नाव बुछि जि अन्दर,
भजन नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद ९

५. वयो सोख्य चोनुय,
व्यचारय यूत स्योनुय,
येमि जोन तमि मोनुय,
भजन नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद १४

में परमात्मा व्याप्त है, वही जीव के हृदय की ध्वनि है, जिसका अन्वेषण किया जाता है वह अपने ही अन्दर विद्यमान है।[१]

मिर्ज़ाकाक ने शब्द ब्रह्म की सत्ता को ही माना है।[२] उसका स्थान आकाश है और वह प्रकाश स्वरूप है, वही जीव के शरीर का निर्माता है।[३] समस्त संसार ब्रह्म का देवालय है, यह ब्रह्माण्ड शिवमय है, जीव के प्राण में भी वही व्याप्त है।[४] ब्रह्म एक है उसी के भिन्न रूप और मुख हैं।[५] जैसे रहस्य आवरण के पीछे छिपा रहता है वैसे ही प्रभु भी जीव की आत्मा में गुप्त रूप से रहता है।[६] जिसके शरीर से द्वैत भाव का नाश हो गया हो, जो 'स्व' और 'पर' में कोई भिन्नता न रखता हो जिसने अन्तर और बाह्य को एक में लय कर लिया हो, वही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।[७] जैसे सूर्य के प्रकाश से किरणें विकीर्ण होती हैं वैसे ही ब्रह्म से जीवों का निर्माण होता है, ज्ञान-रूपी प्रकाश से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म जीवात्मा के समीप ही है,

---

१. आसवुन यथ छु लरे।
बोलवुन पान हरे।
युस छाडहन सुय गरे।
भजन नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद १८

२. शब्द ब्रह्म पान ईश्वर।
तवय बालिका परमीश्वर।
लक्षनन दीप सु ईश्वर।
सत कथ राम रामै। —वही, कविता १, पद २३

३. ब्रह्म जान परम आकाश।
तथ नांव सु प्रकाश।
वुशत करि गर सुन्द पि नकाश।
शरीरय राम रामै। —वही, कविता १, पद २७

४. छुम्ये सोरूप, शिवमयै।
गछि नय भव दिवलयै।
छुमप्राण वय पान आय।
रब साहब प्रभु जी॥ —वही, कविता २, पद १

५. सु छु कुनुय मोख छ्योनुय।
वन क्याह वन रबमय।
सुय न्यथ अनिय चरिय।
रब साहब प्रभु जी॥ —वही, कविता २, पद ३

६. छांजामय औस गरि वय।
सिर छु परवय सारिनय।
नाव ब नाव रोजि हुवय।
रब साहब प्रभु जी॥ —वही, कविता २, पद ४

७. यस चलि वुय त ईश्वर जानि।
हयुवुय मानि पर त पान।
अन्दर न्यबर युस कुनुय जानि।
रब साहब प्रभु जी॥ —वही, कविता २, पद १३

वह स्वयं जीव का प्रियतम है और जीव अपने को उसका दास मानता है।[१] जिस प्रकार पुष्पों में सुगंधि वास करती है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म भी गुणों से पूर्ण होता है। शिव के साथ नाद-बिंदु और प्रकाश के साथ अंधकार होता है।[२] सरिता से ही समुद्र की शोभा है। चार वेदों का सार ओंकार शिव और शक्ति एक है, ब्रह्म एक है।[३] परंतु जीव अज्ञान के कारण उसे नहीं पहचानता, वह द्वैतभाव से पूर्ण रहता है परंतु ज्ञान से यह भिन्नता मिट जाती है और सोहम् पद की प्राप्ति होती है।[४] मिर्जाकाक ने प्राण को ही ब्रह्म माना है, वही प्राण ब्रह्मा के रूप में सृष्टिकर्ता है, विष्णु रूप में पालन करता है और रुद्र रूप में वही संहारकर्ता भी है।[५] सबों के रहस्यों को जानने वाला प्राण ही है, वह चर और अचर के साथ मिला हुआ है, प्राण ही नारायण से उत्पन्न हुआ है और यही जीवों के नेत्रों का प्रकाश है, यही प्राण स्वयं राम है, इसी प्राण का रहस्य जानना चाहिए।[६] जीव प्राण है अतः वह स्वयं ब्रह्म है, इसका कोई नाम क्यों न हो ; सब पर इसी का अधिकार है।[७] प्राण

---

१. सु प्रकाशे द्रायि जुचाह सु छु सिरियस गाश।
लिशि पानस बूज़ म्ये भाषा निर्णय ज्ञान छु गाश।
खोव घ खोवय यार छु पानय खास तमुन्दुय' यवास।
तोरी ह्यम अकि ध्यन पोशे सोन पोशे सुय॥ —वही, कविता ४, पद १

२. द्राव सत ग्वोन रोशन,
विन्दु शिव समरण द्राय रोशन।
गटि निशि गाश गव रोशन।
पोशन बोय चे सूत्य सूत्यी। —मिर्जाकाक की पाण्डुलिपि

३. नदी निशि द्राव सोदुर रोशन, ओं निशि चोर वोर गयि रोश।
शक्ति कोदरय शिव गव रोशन, जानि जानानस सूत्य सूत्यी। —वही, पाण्डुलिपि

४. अकुय आसिथ दोन हुन्द सम गोम,
फुनुय वम गोव जाति सफात।
तहकीक फरिथ फुनुय शम गोव।
निराण ज़ोनुम सूहंम् सूं॥ —वही, पाण्डुलिपि

५. प्राण ब्रह्म लागिय पैंद छुम सुय करान।
प्राण विष्णु लागिथ रछान वम व दम राम राम।
प्राणय लोवर लागिथ सोरूप छुम गालान।
प्राण हस्तोनेस्त प्राण वूद नावूद दम ब वम रामै॥ —वही, पाण्डुलिपि

६. सारिकुय पय छु प्राण मीलिथ राम राम।
प्राणय द्राव निशि नारायण प्रेकाश पर अछिव आराम
प्राण जानय प्राण दम व दम रामय॥ —वही, पाण्डुलिपि

७. चय छुख पानय वय छुस प्राणय।
प्राण प्राणय थव नाव कॅह।
सोख्य हख छुय नाहक शख छुय।
राधा कृष्ण गूविन्द गू॥ —वही, पाण्डुलिपि

ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव है, वही अग्नि और मृत्यु-रूप है, वही साधारण जनता है और वही देवता है ।[1]

जीव—मिर्जकाक जीव और ब्रह्म को एक मानते हैं परंतु उनकी सत्ता भिन्न मानते हैं । ब्रह्म स्थिर और जीव अस्थिर है । ब्रह्म निर्माण करता है और जीव की उत्पत्ति होती है । जीव का शरीर पंच भौतिक है ।[2] जीव का शरीर कच्चा होता है जबकि ब्रह्म पक्की अवस्था में होता है, जब आत्मा भी उसी अवस्था में पहुँच जाती है तो आत्मा परमात्मा एक हो जाते हैं । उनमें द्वैतभाव नहीं रह जाता । ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है ।[3] जीव जब विद्या प्राप्त करता है तो उसे अहंकार आता है, जब वह धनवान बनता है तो अज्ञान रूपी अंधकार के कारण उसे कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता परंतु ब्रह्म इन दोनों अवस्थाओं से जीव को तार देता है ।[4] जीव और ब्रह्म एक थे, फिर जीव उससे अलग हुआ और संसार में आया । ब्रह्म उसका प्रियतम कहलाया और जैसे पुष्पों में सुगंधि का वास होता है वैसे ही ब्रह्म जीव की आत्मा में व्याप्त है ।[5] संसार से प्रयाण करने के समय वह पुनः ब्रह्म में लीन हो जाता है ।[6] मानव शरीर कुसम है परंतु उसकी सुगंधि और वर्ण परमात्मा है, जीव यदि ज्योति है तो ब्रह्म परम ज्योति

---

१. प्राणय ब्रह्म प्राणय विष्णु प्राणय अगन् रूफ कालय सुय ।
प्राणय वस्ती सन्मोख दिवता, राधाकृष्ण गोविन्द गू । —वही, पाण्डुलिपि

२. आव गाहे आदम हवा,
आत्मा शक्त शिव चय,
छुंस पंचन भूतन हुथ जामे,
रब साहब प्रभु जी । —मिर्जकाक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, कविता ३, पद २

३. शरीर खाम पोखत सुये ।
बुजुम पुथ जायि सुये ।
पोखतकार सय चलि दुये ।
भजन नाम राम रामै । —वही, कविता १, पद ३०

४. अलिमस अहंकारय,
लक्ष्मी अंधकारय,
अभि गछिथ छुय तारय ।
भजन नाम राम रामै ।। —वही, कविता १, पद ३२

५. इकवट आय ब स्योन वय,
वय जीव तय सु जानि जानान,
जानस पथ जानान रोशन,
पोशन बोय चे सूत्य सूत्यी ।। —मूल पाण्डुलिपि

६. तोर गच्छब इकवटन जानि जानानस सूत्य सूत्यी । —मूल पाण्डुलिपि

है ।[१] जीव तेज से ही उत्पन्न होता है और अग्नि से ही नष्ट होता है ।[२] सोहम् शब्द ही केवल सत्य है । जीव का प्राण ही ज्ञान-विज्ञान और अज्ञान है, वह मस्त रहने वाला है । वही साक्षात्कार का साधन है और वह स्वयं ही ब्रह्म है ।[3] मनुष्य के मन में शिव व्याप्त है । अतः जीव को सदैव शिवनाम का स्मरण करना चाहिए । धर्म का विचार करना ही जीव का स्वभाव है यही विचार ब्रह्म है जो आत्मा में वास करता है ।[४] ब्रह्म और जीव सदैव परस्पर एक-दूसरे को देख सकते हैं परंतु जीव के ज्ञान-नेत्र खुले होने चाहिए तभी वह परमानंद प्राप्त कर सकता है ।[५] जीव की आत्मा सत्य है उसमें शब्द-ब्रह्म को पाना चाहिए ।[६] यही वास्तविक ज्ञान है जीव का लक्ष्य ब्रह्म है, उसको प्रणय-रूपी कमान से स्वयं तीर बनकर ब्रह्म को लक्ष्य करना चाहिए ।[७]

जगत—मिर्ज़काक जगत की सत्ता मानते हैं, परंतु इसको मिथ्या कहते हैं ।[८] यहाँ मिर्ज़काक ने शंकर के 'ब्रह्म सत्यं जगतमिथ्या' सिद्धांत को अपनाया है । इस जगत की उत्पत्ति ब्रह्म करता है । बीज पर ही यह समस्त संसार आधारित है ।[९] ब्रह्म जीव

---

१. तन गुल खर जीव आत्मन,
मुशक तय रंग गव परमात्मा,
ज्योति जीव परम ज्योत न्यथ आजीव,
जानि जानानस सूत्य सूत्यी । —मूल पाण्डुलिपि

२. ओगनुय जेवान ओगनुय छ्येवान,
म जान निराण सूहंम् सु । —वही, पाण्डुलिपि

३. प्राण छुम अज्ञान प्राण छुम ज्ञान ।
प्राणय छुम विज्ञान दम ववम रामै ।
प्राण छुम मस्तानय, प्राण छुम परजानै ।
प्राण छुम पान्य पानय, खोदाये राम रामै ।। —वही, पाण्डुलिप

४. मनस शिव छुत व मनि शिव नाव छुय ।
मनुष्य भाव छुय धर्म व्यचार ।
गव व्यचार हुरे त सुय जान गरे ।। —वही, पाण्डुलिपि

५. चय स्ये वुछान व वय चे वुछान,
वीफ आसि वीफ दर्शुन आनन्द तय । —वही, पाण्डुलिपि

६. वीप आत्म सथ है, तोत च कथय वय, शब्द गथ जाजुन आव । —वही, पाण्डुलिपि

७. ओं गव कमानय,
जीवय जान तीरय,
निशान ब्रह्मय,
भजन नाम राम रामै ।। —वही, कविता १, पद २

८. सत्यम ब्रह्म जगथ मिथ्या
वयान छुय राम रामै । —वही, कविता १, पद २८

९. विना बीज वोयि न जगय,
वोपवी नाम राम रामै । —वही, कविता १, पद ३३

और जगत् दोनों में विद्यमान है, यह संसार देवालय है, ब्रह्माण्ड ही शिवमय है।[१] जगत् में ब्रह्म स्वयं ही शोभायमान है।[२] ब्रह्म सृष्टिकर्ता है। अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से अन्न उसने स्वयं उत्पन्न किया।[३] जगत् का स्वभाव क्षण प्रतिक्षण शनैः-शनैः समाप्त होना है।[४]

माया—मिर्जकाक की जितनी कविताएं मुझे उपलब्ध हो सकीं उनमें माया का संकेत एक ही स्थान पर आया है। माया के बल से सांसारिक सुख-वैभव की प्राप्ति होती है, परंतु वह क्षणिक है, उससे अलक्ष्य निरंजन ब्रह्म को प्राप्त करने में बाधा पड़ती है।[५]

इसका अर्थ यह नहीं कि मिर्जकाक के काव्य में माया का अस्पष्ट और धुंधला वर्णन है। यह संभव है, उन्होंने अन्य कविताओं में माया के विषय में अपने विचार प्रकट किए हों, परंतु अभी तक उनकी सारी पांडुलिपियां ठीक तरह से पढ़ी नहीं गईं। वे फारसी लिपि में हैं जो कई स्थलों पर अस्पष्ट हैं।

साधना पक्ष—मिर्जकाक ने साधना में गुरु, प्रणव और योग को अत्यधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार गुरु ब्रह्म का ही अवतार है और वह उपदेश से अज्ञान का नाश करके ज्ञान का प्रकाश दिखाता है।[६] जिस प्रकार बिना बीज के उत्पत्ति असंभव है इसी प्रकार बिना गुरु के ज्ञान असंभव है।[७] जीव को गुरु का ध्यान करना

---

१. छुम्ये सोरूप शिवमये,
गछि नय मव विवलये। —वही, कविता ३, पद १

२. जगि निशि पानय वय रोशन,
पोशन वोय चे सूत्य सूत्यो। —मूल पाण्डुलिपि

३. अन्न निशि प्राव जल सु रोशन,
जल निशि प्रावि जमीन रोशन,
जमीन निशि प्राव अन्न वय रोशन,
जानि जानानस सूत्य सूत्यो। —वही, पाण्डुलिपि

४. जगतुक स्वभाव छ्यन छ्यन सोरूप।
तवय व तय शरीर छुम ठहरिथ। —वही, पाण्डुलिपि

५. महामाया परम सोख पाया,
अलख निरंजन सुय परिज्यन। —वही, पाण्डुलिपि

६. ग्वोर आम रूप अवतार,
फोरनम वोपवोशिय,
गौलुन अज्ञान वोबुन ज्ञान,
मुफतस नाम राम रामैं। —वही, कविता १, पद २१

७. विना ग्वोर मेलि न ज्ञानय,
बिना तफ बनि न राज्य,
विना बीज बोय न जगय,
घोपवी नाम राम रामैं। —वही, कविता १, पद ३३

चाहिए। सतगुरु आचार-विचार की शिक्षा देता है। शिष्य गुरु की कृपा से ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।[१] गुरु-शब्द मधुर फल और मिश्री की भाँति है। यदि किसी को इस बात पर विश्वास नहीं है तो गुरु से गन्ना-रूपी 'सोहम्' शब्द मांगाना चाहिए।[२] गुरु पथ-प्रदर्शक है वह ज्ञान की ज्योति लेकर जीवों का मार्ग दर्शन करता है।[३] यदि जीव गुरु का कथन माने और उसी के अनुसार कार्य करे तो वह अपनी इंद्रियों को वश में कर सकता है और इस संसार-सागर से बिना मल्लाह और पतवार के पार हो सकता है।[४]

ओंकार—मिर्ज़काक ने अपने काव्य में ओंकार को अत्यधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार ओंकार ही आदि पुरुष है जो देवताओं का देवता है।[५] ओंकार ही प्रकाश है जिससे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है।[६] ओं ही भूत, भविष्य और वर्तमान है। यही प्रमाण है यही उपदेश है।[७] जो क्षण-क्षण ओंकार का स्मरण करता है उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहता।[८] जीव तीर के समान है, वह ओंकार-रूपी कमान से ब्रह्म रूपी लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।[९] जिस प्रकार नदी से उसके स्रोत समुद्र

---

१. ग्वौर ध्यान पजि करून च्यत मय।
खसवुन गव आचार सथ ग्यौरय,
फीरिथ चाठ गछि तस कुन कर सरय। —पाण्डुलिपि

२. ग्वौर कथ छय नावद त टंगय,
योद ने रांची त प्रयि प्रये,
गछिथ ग्वोरस मंगि नयशक्कर हम सू। —पाण्डुलिपि

३. पंडिथ गव मशालची, बेयिस गाश पान दुगाश,
वाख वनिथ गव सु शुरू, पोज्य पाठ्य सु राम रामै। —वही, कविता ३, पद ३४

४. ग्वौंर सुन्द दवुन पालुन छु जानय,
पननु पान राम मारूण जान।
अद जोरि रोस्तुय तरहम पानय ॥ —पाण्डुलिपि

५. ओं गव आदि पौरूष,
नायन हुन्द सु वायय। —वही, कविता १, पद ३

६. ओं चौंग अर्थ बूजुम,
दफ जोगुम स्ये पुरुष। —वही, कविता १, पद ११

७. ओं गव भूथ भविष्यत।
ओं गव वर्तमानय।
ओं रूद प्रमाणय।
वपदेश राम रामै। —वही, कविता १, पद १०

८. तस नौ बीम जामैय,
युस दमा दम सरि ओमय। —वही, पद १२

९. ओं गव कमानय,
जींवय जान तीरय,
निशान ब्रह्मय,
भजन नाम राम रामै। —वही, पद २

की शोभा है उसी प्रकार प्रणव से चारों वेदों का महत्व बढ़ जाता है।[1] ओंकार ही ब्रह्म वर्णन का सार है।[2]

सत्संग—मिर्ज़ाकाक सत्संगति को भी महत्व देते हैं, उनके अनुसार क्षण-क्षण सत्संगति में ही व्यतीत करना चाहिए।[3] आदि पुरुष ब्रह्म को जो देवताओं का देवता है, संत जन ही जान सकते हैं।[4] भक्त का महत्व इतना होता है कि ब्रह्म स्वयं सच्चे भक्तों का अन्वेषण करता है। लाखों में किसी एक को ब्रह्म भक्त बना देता है।[5]

योगमार्ग—मिर्ज़ाकाक साधना में ज्ञान और योग को महत्व देते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म-प्राप्ति के लिए ज्ञान और ध्यान आवश्यक है। गुरु के उपदेश से अज्ञान का नाश होकर ज्ञान-प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। यही ज्ञान जीवन और ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है। ब्रह्म-ध्यान करना जीव के लिए आवश्यक है, जीव को सत्य तत्त्व का प्रकाश कर रहस्य को प्रकट करने का प्रयत्न करना चाहिए, यह बिना ध्यान के असंभव है।[6] योग-मार्गों में राजयोग उत्तम माना गया है। इसी का शब्द मेरे कानों में भी पड़ गया है। इसमें मन को केंद्रित किया जाता है और ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।[7] कर्म-रूपी दूध से योग-रूपी दही और साधुसंग रूपी मक्खन निकलता है,

---

१. नदी निशि नाव सोदुर रोशन,
ओं निशि चोर वोद गयि रोशन। —वही, पाण्डुलिपि

२. ओं निशि ब्राव वखुन सु रोशन,
जानि जानानस सूत्य सूत्यी। —पाण्डुलिपि

३ दम दम सत संग गछि करुन।
सु गव सुव पाठ थ्यापी जान पानय। —पाण्डुलिपि

४. ओं गव आदि पोरुष,
नयन हुन्द सु नायय,
तस जानि कुस जानि संतय,
भजन नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद ३

५. भक्त्यस दय छु छारान,
ठलकिय तौर पत लारान,
लछि मंज तस छु चारान,
भजन नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद ५

६. वनह पजि पोजुय,
पाश मा गछि सीरस,
ध्यान रौस ध्यान छु व्यचुन।
भजन नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद २५

७. राजयूग छुम्य वनान,
शब्द पउय पाठय गवम्ये कनन,
और योर निशि मन अन,
सोता स्यद नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद २२

इसी से ज्ञान-रूपी घी और विज्ञान-रूपी सुगंधि विकीर्ण होती है ।[1]

मिर्जकाक के 'वाख्य' या पद पूरे उपलब्ध नहीं हैं । यद्यपि उनके हाथ की पांडुलिपि हांग्लगुण्ड में विद्यमान है परंतु उसको पढ़ने वाला कोई नहीं है, वह फारसी लिपि में कश्मीरी लिखी हुई है, परंतु मात्राओं के बिना है । उसमें जेर, ज़बर आदि जो उर्दू की मात्राएं होती हैं उनका प्रयोग नहीं किया गया है, अतः उनका सारा साहित्य जनता क्या शोध विद्यार्थियों के लिए भी रहस्य ही है। उनके काव्य का भाव-पक्ष अति प्रबल है, शंकर के अद्वैत की उस पर स्पष्ट झलक मिलती है ।

मुसलमानों के प्रभाव स्वरूप उन्होंने शहर, मौजूद, वजूद, शरारत, हकीकत, तरीकत, हरकत, बरकत आदि शब्दावली का प्रयोग भी किया है। पाठालोचन के सिद्धांतों के आधार पर मिर्जकाक की कविता का पाठ भी शोध के लिए एक विषय बन सकता है।

---

1. फमंशीर तय यूग जगराय,
साध संग पन्य मवंसय,
ज्ञान ग्यवय मुशाक विज्ञान,
रब साहब प्रभु जी । —वही, कविता २, पद ६

श्री अब्दुल अहद 'आज़ाद'—एक परिचय

डॉ० अमरनाथ 'शान्ति'
हिन्दी शिक्षक, केन्द्रीय गृह मंत्रालय, श्रीनगर।

समय-समय पर कश्मीरी साहित्य के प्रांगण में महान एवं प्रतिभाशाली कलाकारों का पदार्पण हुआ है, जिन्होंने कश्मीरी साहित्य की अनमोल सेवा करके अपने कौशल एवं प्रतिभा का परिचय दिया। स्वर्गीय अब्दुल अहद 'आज़ाद' इस क्षेत्र में उस समय प्रादुर्भूत हुए जबकि देश अंग्रेजों के अत्याचार में ग्रस्त, गुलामी की जंजीरों में पूर्णरूपेण जकड़ा हुआ था। भारतीय जनता शोषण की चक्की में पिसी जा रही थी। स्वयं 'आज़ाद' जिस वर्ग से सम्बन्धित थे, वह जागीरदारी और नौकरशाही के चंगुल में दबोचा हुआ था।

'आज़ाद' का जन्म तहसील चाडूरा के रांगर नामक गाँव में, जो कि प्रचीन काल में 'रानीगढ़'[1] के नाम से प्रसिद्ध था, एक मध्यवर्गीय किसान घर में विक्रम संवत् १९६० के चैत्रमास तदनुसार सन् १९०३ में हुआ। आपके पिता श्री सुलतान डार एक सूफी संत थे। धार्मिक विषयों में प्रवीण होने से साथ-साथ उन्हें अरबी और फरसी का भी अच्छा ज्ञान था। घर में दारिद्र्य का अंधकार छा जाने के कारण 'अहद' को बाल्यकाल के सुखों से वंचित ही रहना पड़ा। माता-पिता ने अपना पेट-तन काट कर पुत्र का पालन-पोषण किया। बड़े-बूढ़ों का कहना है कि अहद दस वर्ष की आयु तक अपने हाथ से कुछ नहीं खाते थे, उनकी माता पर ही इस का भार था।[2]

बचपन से ही शिक्षा में रुचि रखने के कारण 'अहद' ने अपने पिता के पास और तत्पश्चात् अपने बड़े भाई की पाठशाला में शिक्षा ग्रहण की। इस विषय में स्वयं 'आज़ाद' लिखते हैं—"वालिद बुज़ुर्गवार (माननीय पिता) सूफी मुन्श थे। आप दरवेशाना इस्तिगना (उदासीनता) की वजह से मुझे कुरान-मजीद और दो-तीन फ़ारसी की किताबों के आगे कुछ पढ़ा न सके। आप मुझ को भी सूफी बनाना चाहते थे। लेकिन यह कैसे हो सकता था। ....सन् १९१६ में मेरे बड़े भाई साहब गुलाम

---

१. 'राजतरंगिणी' के अनुसार।
२. रांगर गांव के कुछ वृद्ध पुरुषों से प्रत्यक्ष भेंट से ज्ञात।

अली ने प्राइवेट मक्तब (पाठशाला) खोला। मैंने उसी मक्तब (पाठशाला) में इबतिदाई (आरम्भिक) उर्दू, फारसी तालीम पाई। चूँकि मुतालबा (अध्ययन) का शौक था, रफ्ता-रफ्ता (धीरे-धीरे) नविश्त-व-खाँद (लेखन कला) में थोड़ी बहुत महारत हासिल की। अदबियात (साहित्य) का मुताला हमेशा मेरा मरग़ूबखातिर (प्रिय विषय) मशग़ला था।[1]

आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आपका विवाह अज़ीज़ी नाम की एक लड़की से हुआ। अज़ीज़ी सादा तबीयत की होने के कारण आप को अपनी ओर आकर्षित न कर सकी और परिणामस्वरूप केवल सुहाग की सात रातों के लिए ही आपके घर में ठहरी। तत्पश्चात् उसे तलाक देकर आपका दूसरा विवाह सन् १६१८ में सुरसयार नामक गाँव की मुखती नाम की एक लड़की से हुआ। विवाह के समय आपकी आयु सोहल वर्ष की थी, जबकि मुखती केवल आठ वर्ष की थी।[2] विवाह के पाँच-छः मास पश्चात् सन् १६१८ में ही आप समीप के एक गाँव ज़ूहामा के सरकारी प्राइमरी स्कूल में १३ रुपये मासिक वेतन पर शिक्षक के पद पर नियुक्त हुए। सरकारी नौकरी मिलते ही आपने विधिवत् अध्ययन आरम्भ किया। अल्प समय में ही आपको उर्दू भाषा और साहित्य पर विशेष अधिकार प्राप्त हुआ। जहाँ पहले आपको केवल फारसी पढ़ाने का कार्य सौंपा गया था, वहाँ अब आप अरबी, गणित, भूगोल और इतिहास भी विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे। विद्यार्थियों को आप हर समय सहानुभूति एवं लगन से पढ़ाते थे। अपनी अल्प आय में से छात्रों की आर्थिक सहायता भी करते थे। आप 'नै'[3] की कलमें छात्रों में मुफ्त बाँटते थे। आप की जेब में सदा 'नै' की कलमें और इनको बनाने के लिए चाकू रहता था।[4] आप सरल स्वभाव के थे। कद दरमियाना, चेहरा संजीदा और रंग कुछ-कुछ काला था। आँखें बहुत कुछ गहराइयों का पता देती थीं। दाड़ी मुँड़वाते थे, केवल छोटी-छोटी मूँछें रखवाते थे।[5] आपकी वेश-भूषा साधारण थी। सदा साफ और सुथरे वस्त्र पहनने के आदी थे। श्री दीनानाथ पारिमू ने (जब उन्होंने 'आज़ाद' को उनके स्कूल में पहलीबार देखा था) लिखा है—"कश्मीरी पट्टू का एक ढीला-सा कोट लगाए हुए थे। सिर पर साफ-शफाफ (बिल्कुल सफेद) पगड़ी उनके सियाहफाम चेहरे पर खूब सजती थी। पाँव में कश्मीरी तरज़ का जूता पहना हुआ था।"[6]

'आज़ाद' पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में ही कविता के क्षेत्र में कूद पड़े। उन्होंने स्वयं लिखा है—"मेरे वालिद बुज़ुर्गवार (माननीय पिता) शेर-व-सुखन

---

१. अब्दुल अहद 'आज़ाद'—डा० पद्मनाथ गंजू, तामीर 'आज़ाद' नम्बर, १६५८, पृ० ८।
२. 'आज़ाद' साहब की धर्मपत्नी श्रीमती मुखती से २१ नवम्बर, १६६७ की प्रत्यक्ष भेंट से ज्ञात।
३. कलम बनाने के लिए विशेष प्रकार की लड़की, जो अन्दर से खोखली होती है।
४, ५, ६. 'आज़ाद'—एक दोस्त की नजर में—श्री दीनानाथ पारिमू, तामीर 'आज़ाद, नम्बर १६५८, पृ० ६७।

(कविता) के शेदाई (रुचि रखने वाले) थे। खासकर कश्मीरीगीत, मसनवियाँ (प्रबन्ध) पढ़ने और सुनने का उन्हें बहुत शौक था। बारहा (प्रायः) मुझसे पढ़वाते थे, जिसका मेरी तबीयत पर यह असर हुआ कि मैंने पन्द्रह-सोलह साल की उम्र में कश्मीरी शेर कहना शुरू किया। अव्वल-अव्वल गज़लें लिखीं। बाद में और-और इसनाफि-सुखन (विवेच्य-विषय) की ओर रजू (आकर्षित) किया।" 'आज़ाद' को कविता की प्रेरणा कहाँ से मिली, इस विषय में श्री दीनानाथ पारिमू लिखते हैं—"मैंने 'आज़ाद' साहब से पूछा, हज़रत (श्रीमान्)! आप कब से शायर बने हैं? जिसके जवाब में उन्होंने फरमाया कि उनकी असली शाइरी की इबतिदा (आरम्भ) एक दिन के इश्किया हादिसे (प्रेम घटना) से हुई है। उनके गाँव[1] में एक लड़की थी, बहुत हसीन और सलीका (सभ्य) वाली, गरीब माँ-बाप की। वह लड़की 'आजाद' साहब से मुहब्बत करती थी। चूंकि लड़की गैर मुस्लिम थी, 'आज़ाद' साहब इस लड़की को अपना न बना सके। लड़की सिलकी बीमारी (क्षय-रोग) में मुबतिला (ग्रस्त) हुई। 'आज़ाद' साहब ने राज़ि-इश्क (प्रेम-रहस्य) की इफशा (संकेत) किये बगैर ही अपनी महबूबा (प्रेमिका) की तीमारदारी (सेवा-सुश्रूषा) की। बीमारी ने लड़की को मौत के हवाले किया। इसी दौरान में 'आज़ाद' साहब बहालति मायूसी (निराश अवस्था) शेर कहने पर रागब हुए।"[2]

आरम्भ में 'आज़ाद' ने काव्य के क्षेत्र में 'महजूर' को ही अपना पथ-प्रदर्शक माना और उन्हीं की लीक पर चल कर एक रोमानी कवि की भाँति इश्किया-गज़लें लिखते रहे। आरम्भिक रचनाओं में अपना उपनाम 'अहद' ही रखा और तत्पश्चात् 'जान्बाज़' हो गए। आप स्वयं लिखते हैं—"मैं इबतिदाई अयाम (आरम्भिक युग) में शेरों में अपना नाम 'अहद' ही तखल्लुस (उपनाम) की जगह लिखता था। थोड़े अरसे (समय) के बाद 'जान्बाज़' तखल्लुस (उपनाम) इख्तियार किया।"[3] कुछ समय तक अध्यापन कार्य के साथ-साथ आप दुकान भी चलाते रहे। पर इस कार्य में आपकी रुचि न थी, अपितु अध्ययन के कार्य में विशेष रुचि रखते थे। इसी के फल-स्वरूप सन् १९२५-२६ में मुन्शी की परीक्षा पास की और इसके पश्चात् मुन्शी-फाजिल की परीक्षा के लिए तैयारी की; पर दुर्भाग्य से ठीक परीक्षा के ही समय पर आपको निमोनिया रोग का सामना करना पड़ा; इस कारण से परीक्षा में सम्मिलित न हो सके।[4]

प्राकृतिक सौंदर्य में आपको विशेष रुचि थी। कई बार अपने छात्रों को सुरसयार नामक गाँव, जो कि घने जंगलों में स्थित है, भ्रमण के लिए ले गए और

---

१. 'आज़ाद' की प्रेमिका उनके अपने गाँव में न रहकर जूहामा नामक गाँव में रहती थी, जहाँ के स्कूल में 'आजाद' अध्यापन कार्य करते थे। —(निजी खोज से ज्ञात)
२. आजाद—एक दोस्त की नजर में—श्री पारिमू, पृ० ६५।
३. अब्दुल अहद 'आजाद'—पद्मनाथ गंजू, तामीर 'आजाद' नम्बर १९५८, पृ० ८।
४. वही।

वहीं पर 'वनचियार' (काइरू वृक्ष) नामक अपनी एक प्रसिद्ध कविता की रचना की।[१] सैर-सपाटे के साथ-साथ आप संगीत में भी विशेष रुचि रखते थे। दिन-भर की थकान के पश्चात् सायं काल में कोई-न-कोई संगीत की महफिल (सभा) सजाने के अभ्यस्त थे।[२] इसके अतिरिक्त आप में निर्भीकता का एक विशेष गुण था। निश्चिन्त होकर आप अपना काम सफलता एवं दृढ़ता से निभाते थे। यहाँ तक कि अपने अफसरों की भी परवाह नहीं करते थे। एक बार आपके स्कूल में इन्सपेक्टर साहब अचानक आ गये। आप उस समय बच्चों को ब्लैक-बोर्ड पर लिखे हुए कुछ शब्दों का अर्थ समझा रहे थे। इन्सपेक्टर को देखकर मुख्य अध्यापक कुछ भयभीत हो उठे और जल्दी से अपना 'फिरन'[३] उतार दिया। पर 'आज़ाद' सहाब को किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ और न ही आप में कोई झिझक उत्पन्न हुई। उनकी ओर कोई ध्यान दिए बिना ही आप बच्चों को पढ़ाते रहे।[४]

'आज़ाद' साहब को पत्नी से चार सन्तान उत्पन्न हुईं। इनमें तीन लड़के थे और एक लड़की थी। पहला लड़का हुआ, जो चार वर्ष की आयु में मर गया। दूसरी लड़की हुई, जो केवल तीन दिन इस संसार में जीवित रही। तीसरा लड़का हुआ और वह भी दो वर्ष की आयु पाकर स्वर्गवासी हुआ। चौथा लड़का गर्भ में ही सात मास का मर गया।[५] सन् १९३१ तक 'आज़ाद' जूहामा से स्कूल में ही अध्यापन कार्य करते रहे; परन्तु आपके पहले लड़के की मृत्यु के लगभग दो मास पश्चात् ९ अगस्त सन् १९३१ को इनका त्राल के मिडिलस्कूल में स्थानान्तरण किया गया। इसका कारण सन् १९३१ का राजनीतिक विप्लव था। शासकों को यह संदेह हुआ कि इस आन्दोलन के पीछे 'आज़ाद' (जो कि अभी तक 'आज़ाद' न हुए थे, अपितु 'जान्बाज' के नाम से प्रसिद्ध थे) और उनके परम मित्र गुलाम मुहम्मद डार का हाथ है। इस कारण दंड के रूप में 'आज़ाद' का स्थानान्तरण त्राल में हुआ और गुलाम मुहम्मद डार (जो कि उस समय गाँव के नम्बरदार थे) को नम्बरदारी से पृथक् किया गया। 'आज़ाद' ने स्वयं लिखा है—"सन् १९३१ में इलज़ाम लगाया गया कि मैं संयासी (राजनीतिक) मामलों में हिस्सा ले रहा हूँ।...............मैं त्राल मिडिल स्कूल में तबदील किया गया। मेरे घर की तलाशी ली गई। वहाँ क्या था? शाइरी के मुसवदे (कविता की हस्तलिखित प्रतियाँ) और कई अदबी किताबें (साहित्यिक पुस्तकें) और रिसाले (पत्रिकायें)।" जिस प्रकार एक अभियोगी को दण्डित करके काले पानी भेजा जाता था, 'आज़ाद' के लिए त्राल जाना भी मानो उसी के बराबर था। त्राल में आज़ाद पर कड़ी दृष्टि रखी गई, यहाँ तक कि उन्हें घर जाने के लिए एक या

१. 'आज़ाद'—एक जाती तासर—गुलाम अहमद, तामीर 'आज़ाद' नम्बर १९५८, पृ० ६२।
२. 'आज़ाद'—एक दोस्त की नज़र में—श्री पारिमू, तामीर 'आज़ाद' नम्बर १९५८, पृ० ६५।
३. एक लम्बा और ढीला चोगा, जिसे कश्मीरी 'फिरन' कहते हैं।
४. 'आज़ाद'—एक दोस्त की नज़र में—श्री पारिमू, पृ० ६५।
५. 'आज़ाद' साहब की पत्नी से २१-११-६७ को प्रत्यक्ष इन्टरव्यू में ज्ञात।

दो दिन का अवकाश भी प्राप्त नहीं होता था। घर को देख-रेख से भी अब उन्हें वंचित किया गया। त्राल में एक दिन वे शाह हमदान के 'अस्थापन' में बैठे थे तो एक विचार मन में आया और सोचते-सोचते अन्त पर अपना उपनाम 'जान्वाज़' के बदले 'आज़ाद' रखा। स्वयं उन्हीं के शब्दों में—

"एक दिन त्राल में शाह हमदान साहाब की खानकाह फैज़ (धर्म स्थान) में बैठे-बैठे 'आज़ाद' तखल्लुस (उपनाम) का ख्याल आया और मुस्तकिलतोर (स्थायी रूप) पर यही तखल्लुस (उपनाम) इख्तियार किया।"[1] चार वर्षीय पुत्र के निधन पर उनके हृदय को भारी चोट लगी। अब भगवान् में विश्वास न रहा, धर्म में कोई रुचि नहीं रही। निमाज़ और रोज़ा आदि धार्मिक रीतियों से दूर रहते थे।[2] श्री शमीम अहमद 'शमीम' के अनुसार—"आज़ाद मज़हब से मायूस (निराश) होकर बेज़ार (क्रोधित) हो गए थे और जैसा कि मैंने कहा है, उनकी यह मायूसी (निराशा) जहालत (अज्ञान) या लाइल्मी (अशिक्षा) का नतीजा नहीं थी, बल्कि उनकी गहरी इल्मियत (परिपक्व ज्ञान) और अकलियत (बुद्धि) की पैदावार (उपज) थी।"

सन् १९३५ में समस्त कश्मीर में 'कालरा रोग' फैल गया था। माल विभाग के कर्मचारी के नाते 'महजूर' को 'आज़ाद' साहब के गाँव में लगे हुए कैम्प में आना पड़ा। यहाँ 'अज़ाद' से 'महजूर' की भेंट हुई। दोनों की मैत्री बढ़ गई। आगे चलकर दोनों एक दूसरे के परम मित्र बने। 'आज़ाद' सहाब 'महजूर' से प्रभावित होकर उनकी जीवनी लिखने लगे और तत्पश्चात् उनके काव्य की समालोचना पर अपनी लेखनी उठाई। पर इस कार्य के लिए उनको समस्त कश्मीरी काव्य का अध्ययन करना पड़ा, अतः 'महजूर' की जीवनी लिखने के स्थान पर 'कश्मीरी भाषा और कविता का इतिहास' लिखने की प्रबल इच्छा मन में जाग पड़ी। 'कश्मीरी भाषा और कविता का इतिहास' लिखने वाले प्रथम लेखक 'आज़ाद' सहाब ही हैं, जिन्होंने अपना समस्त जीवन इस कठिन और असम्भव कार्य में व्यतीत किया। इस महान् ग्रंथ की रचना के लिए लेखक को कठिन तप-साधना करनी पड़ी और अपनी अल्पआय का अधिकांश भाग इस कार्य में व्यय भी करना पड़ा। यह सब कुछ झेलते हुए भी उन्होंने अपने इस कार्य से मुँह नहीं मोड़ा। जीवन के अन्तिम दिनों तक कठिन परिश्रम के पश्चात् अन्त में ग्रंथ तैयार कर ही डाला, परन्तु अपने जीवनकाल में आर्थिक विषमता के कारण अपने ग्रंथ का प्रकाशन न कर सके। 'कश्मीरी भाषा और कविता का इतिहास', जिसे हम 'आज़ाद' के प्रिय शिशु से कम नहीं समझते हैं, अब जम्मू-कश्मीर साहित्य एवं कला अकादमी ने तीन भागों में प्रकाशित करके लेखक की अन्तिम इच्छा को पूर्ण किया है। लेखक का यह ग्रंथ, जिसे हम ब्राउन की 'हिस्ट्री आफ परशियन लिट्रे[illegible]' के समकक्ष मानते हैं, उनकी मृत्यु के समय उनके सिरहाने के नीचे से निकाला गया [illegible]।

---

१. अब्दुल अहद 'आज़ाद'—डा० पद्मनाथ गंजू, तामीर 'आज़ाद' नम्बर १९५८, पृ० ८।

२. 'आज़ाद' के दत्तक पुत्र जावेद आज़ाद से प्रत्यक्ष भेंट में ज्ञात।

'आज़ाद' जीवन भर कभी निरोग न रहे। उनका समस्त जीवन रोगग्रस्त ही रहा। सन् १९४८ में सुरसयार में, जहाँ सरकारी कर्मचारी के नाते आपका अन्तिम स्थानान्तरण किया गया था, बीमार हुए। बुखार और पेट के रोग में निरन्तर पीड़ित रहे। तेरह दिन तक सुरसयार में ही देसी इलाज होता रहा। और फिर श्रीनगर के रत्नरानी अस्पाताल में लाये गए। यहाँ छः-सात दिन तक रहे। रोग का अनुमान 'अपिण्डिसाइटिस' लगाया गया, जिसके लिए आप्रेशन आवश्यक था। इस कारण आपको श्रीनगर के बड़े अस्पताल में लाया गया। यहाँ बड़ी सफलता से आपका आप्रेशन हुआ पर आपके प्राण न बच सके। अन्त में ४५ वर्ष की आयु पाकर ४ अप्रैल अन् १९४८ को शाम के साढ़े सात बजे आप इस असार संसार से उठ गए। आपके शव को रांगर लाया गया, जहाँ आप अपने 'खानदानी मज़ार' में दफनाए गए।

आपके निधन पर जनता आपके वियोग में विह्वल हो उठी और आप के द्वारा लिखित काव्य पंक्तियों से दिशाएँ गूँज उठीं—

आलम हा क॑रि याद 'आज़ाद' 'आज़ाद',
अ॒कि सा॒ति वुछ्॒ति याद पावै मर्दनो।

संक्षिप्त साहित्य-परिचय

कश्मीरी साहित्य को 'आज़ाद' का सर्वाधिक एवं महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनका साहित्य हमें गद्य एवं पद्य दोनों रूपों में मिलता है। गद्य के रूप में मुख्य रूप से इनका एक महान् ग्रंथ 'कश्मीरी भाषा और कविता का इतिहास' तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। इस दिशा में इनका यह योगदान प्रथम कश्मीरी लेखक के नाते अधिक मूल्यवान है। हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि इस ग्रंथ का महत्त्व ब्रावुन की 'हिस्ट्री आफ परशियन लिट्रेचर' से कम नहीं है। हम इसे निस्संकोच शिबली के 'शेर-उल-अजम' की कोटि में रख सकते हैं। एक अल्पशिक्षित व्यक्ति से ऐसे महान् ग्रंथ की आशा असम्भव है। परन्तु यहाँ पर हम इसे लेखक की लगन, बुद्धिशीलता एवं दृढ़ निश्चय ही मानेंगे। इस ग्रंथ में हमें कुछ त्रुटि भी दिखाई देती है; परन्तु 'आज़ाद' जैसे व्यक्ति के लिए वह क्षम्य है, क्योंकि लेखक का जीवन दारिद्र्य एवं संकट के जिस वातावरण में व्यतीत हुआ, उसको ध्यान में रखकर उन्होंने इस ग्रंथ के साथ पूर्णतः न्याय किया है।

इसके अतिरिक्त हमें 'आज़ाद'-साहित्य का पद्य रूप मिलता है, जो कि अत्यंत ही विशाल एवं समृद्ध है। चूंकि लेखक अपनी रचनाओं को अर्थाभाव के कारण समय-समय पर प्रकाशित न कर सके, इस कारण इनके साहित्य का अधिक भाग अप्रकाशित ही रहा, अतः अप्राप्य भी है। काव्य के क्षेत्र में आपने शृङ्गारिक एवं राष्ट्रीय कविताएँ लिखी हैं, पर मुख्य रूप से राष्टीय काव्य की रचना की है। क्रान्तिकारी एवं प्रगतिवादी कविताएँ आपकी बहुत प्रसिद्ध हैं। आरम्भिक युग में आप शृङ्गारिक कविता लिखते थे :—

प्रेमिका, जबकि वह अपने यौवन के मद में चूर और मस्ती की नींद में थी; उसी समय बुलबुल रूपी उसका प्रेमी उसे जगा देता है। प्रेमी के स्पर्श से प्रेमिका जाग पड़ती है और अब प्रेमी के संग में अपने यौवन की आग को बुझाना चाहती है, पर प्रेमी निर्दयी एवं कठोर बनकर उसे छोड़कर चला जाता है—

मसवल ब्वु कॉरनस् ज़ाथ्यि बुलबुल माथ्यि वॅलिथ गोम् ।
खुम्मारहन्ज़ आरहॖकन्ज़ॅ न्यन्द्रि वुलिथ् गोम् ॥[1]

अब प्रेमिका विरह की अग्नि में जल रही है। प्रेमी से आने के लिए कह रही है। रूठे हुए प्रेमी से कह रही है कि तुम्हारे प्रेम के स्पर्श से मेरे यौवन की अग्नि भड़क उठी है। मैं अब तुम्हारे बिना रह नहीं सकती, यदि तुम न आओगे तो मैं आत्महत्या कर लूंगी। तुम मेरी लाज एवं रहस्यों के आवरण हो—

अमारै चान्यि गोंडुनम् जोश, वलो मा रोश ब्वु मारै पान ।
ज़्यि छुखम्यान्यन् सिरन् सरपोश, वलो मा रोशब्वु मारै पान ॥[2]

प्रेमी अपनी प्रेमिका को ढूंढ़ रहा है, परन्तु प्रेमिका कहीं दीख नहीं पड़ती। विरह-अग्नि में दग्धप्रेमी विलाप करता है कि कहीं उसकी प्रेमिका पाताल में तो नहीं चली गई—

वॅानि म्यु विथ्तमय दारिथ्ति ब्रियिये लो ।
पाताल मा ग्यख शाहपरिये लो ॥[3]

शोषण की चक्की में पिसा हुआ कृषक सब अत्याचारों को मूक रूप में सहता जाता है। बेचारा कृषक वर्षभर खेती करता है और जब फसल पक कर तैयार हो जाती है तो कोई दूसरा ही व्यक्ति आकर बेचारे कृषक को एक ओर धकेल कर स्वयं इस फसल (उपज) को काटता है और फिर कोई और ही इस अन्न के खाने वाले होते हैं। बेचारे कृषक को एक दाना भी नहीं दिया जाता है। उसका कुटुम्ब दाने-दाने को तरसता है—

अखा ज़िरात् ववान वुछुमि,
ब्यथ्यिस् अथ्यि थ्यि लोथ्निनावान्
यिवान ब्याखा ख्यॅवान थ्ति खपावान्,
हुमिस थ्नि थावान शबुक गुज़ारा ॥[4]

भगवान् से प्रार्थना करते हुए आज़ाद कह रहा है—ऐ भगवान ! मैंने आप से न कभी ऐश्वर्य माँगा और न कभी आगे माँगूंगा। शराब और कबाब मैंने कभी आप

१, २, ३. संगरमाल—'आज़ाद', गीत ६७।
४. 'शिकवयकश्मीर'—'आज़ाद', तामीर 'आज़ाद' नम्बर १९५८, पृ० ७५।

से नहीं माँगी। परन्तु मैं केवल इतना आप से माँग रहा हूँ कि मेरे निर्धन और असहाय कश्मीरियों को कोई गुज़ारा मिले, जिससे इनका भरण-पोषण हो—

मंगै न्ति सोंगिमै न्ति ऐश-इशरत, 'शराब', 'कबाब' या सुनाज़ न्यामत।
क्यु गोछ़ गरीबन त्ति बेकसन वयुत, बनुन गुज़ारा त्ति इख्तियारा।।[१]

विदेशी शासकों के अत्याचारों के प्रति जनता को सचेत करते हुए कवि कह रहे हैं, कि हे सहनशील मनुष्य! आपके चमन में आकर पांञ्चाल कउओं ने तेरे बुलबुलों के घोंसले उड़ा दिए। तेरे चमन के बुलबुलों को अब रहने के लिए घोंसले नहीं हैं। वे बेचारे अब क्या करेंगे, कहाँ जायेंगे? इनका कोई उपाय न सोचकर तूने इस के विपरीत इन पांञ्चाल कउओं के साथ मैत्री की; इन में तूने अपना प्रेम बाँट दिया। हाय मूर्ख! तूने यह क्या किया? विदेश से आये हुए इन कउओं का साथ देकर तूने अपने देश के बुलबुलों का सत्यानाश करवा दिया—

बुलबुलन चान्यन हा कोर पांञ्ज़लिकावव अ्लिनाश।
लोलथिमनइ लोलरस्त्यिन बंगरोवुथ तीथ्ज्या।।[२]

धर्म के विषय में कवि कह रहा है कि यदि धर्म का अर्थ भिन्नता है, यदि धर्म यही कहता है कि हिन्दू अलग है और मुसलमान अलग है; तो मुझे ऐसे धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं फिर इसे (धर्म को) डलिया में भर कर भेंट के रूप में खुदा के पास वापस भेज दूँगा—

दोग्यन्यार योद् छु मतलब पूज़ाथि, न्यमाज़न ह्युंद।
सोज़सबि यि बखशंथिश ब्यथि तूरि लंदिथ् ड़ाले।।[३]

'आज़ाद' प्रेम लेकर आया है और अपने देश को प्रेम बाँट रहा है और उसकी बातों पर चमन के फूल भी, जोकि कवि की इन बातों को सुन रहे हैं; बधाई दे रहे हैं—

'आज़ाद' लोलबोला, वतनस बरान लोला।
य्मि लोलंगुल हरान क्या, तहंज़न कथन मुबारक।।[४]

वास्तव में 'आज़ाद' को नौजवानों का देश की समस्याओं से मुँह फेरना बुरी तरह से खटकता था। इस पर वे बार-बार उन्हें ललकार कर पुकारते हैं कि ऐ नवजवान! तुझे अपने देश के प्रति उत्तरदायित्व का बोझ क्यों भारी लग रहा है?

---

१. 'शिकवयकश्मीर'—'आज़ाद', तामीर 'आज़ाद' नम्बर, १९५८, पृ० ७५।
२. संगरमाल, गज़ल ८१।
३. 'शिकवइ इबलीस'।
४. सोन वतन—'आज़ाद', वही, पृ० ७।

इस समय तो परिस्थितियाँ तेरी परीक्षा ले रही हैं। तुझे इस समय हिम्मत नहीं हारनी चाहिए—

गोर कर ऐ नवजवान ! बोर पनुत छुइ गोबान ।
दो्रि ज़मान छुइ ह्यवान, सख्त कुडुर इम्तिहान ॥

आगे चलकर इसी नवजवान को चेतावनी देते हुए कवि कह रहा है कि ऐ नवजवान ! तू अपने आप में विश्वास उत्पन्न कर, तुझ पर जो भ्रम का जादू छाया हुआ है, उसे तोड़ दे। इस समय को गनीमत समझ कर तू पथ पर अग्रसर हो जा। तुम्हारी यात्रा बहुत लम्बी है। अतः समय को व्यर्थ मत जाने दो—

यकीन प्दि कर इन्कलाबुक कदम तुल,
तिलिस्मात् वंहमुक फुटर नौजवानो।
कमर गंड कदमतुल यि दम छुइ गनीमत,
सफर ज्यूठ छुइ वुथ सखर नौजवानो ॥[1]

वास्तव में 'आज़ाद' की दृष्टि बड़ी तीव्र थी। उन्हें भली प्रकार यह ज्ञात था कि मानवता का प्रभात अवश्य आयेगा और तूफान और घने अन्धकार के बीच, जो दीपक उन्होंने जलाया है, वह समस्त संसार को अवश्य प्रकाशित करेगा, इस बात का उन्हें पूरा विश्वास था।

---

१. 'संगरमाल', भाग ३।

'विष्णु प्रताप रामायण' में प्रकृति-चित्रण

डा० विजयमोहिनी कौल
सिंधिया स्कूल, ग्वालियर ।

रामकथा के बीज हमें बहुत प्राचीन काल से प्रणीत साहित्य में मिलते हैं। समय की बदलती गति के साथ-साथ विभिन्न लेखकों ने उन बीज रूपों को कथा का बाना पहनाकर विकसित करने में योग दिया। वाल्मीकि रामायण में ही इस पावन पुनीत कथा का एक विकसित एवं परिवर्द्धित रूप हमें मिलता है जिसे बाद में तुलसीदासजी ने अपनी अमूल्य कृति—"रामचरितमानस" में और सुगठित एवं प्राँजल रूप प्रदान किया। विषय चाहे एक हो, परन्तु विभिन्न लेखकों द्वारा उसकी अभिव्यक्ति में बहुत ही अन्तर रहता है। यही कारण है कि राम-कथा के प्रचलित आख्यान में भावों एवं भाषा की दृष्टि से ही नहीं, कथा की दृष्टि से भी काफी अन्तर आ गया है। प्रस्तुत रामायण लगभग तीन सहस्र चरणों में वर्णित महाकाव्य है। इसके कथा-क्रम का मुख्याधार वाल्मीकि रामायण है, जिसमें कवि ने अपनी चिन्तना के फलस्वरूप विभिन्न मौलिक प्रसंगों का चित्रण एवं कुछ नवीन उद्भावनाएँ भी की हैं। प्रस्तुत रामायण के प्रणेता व्योस नामक ग्राम के निवासी श्री विशम्भर नाथ कौल हैं। अधिकतर लोग इन्हें पंडित विष्णु कौल के नाम से ही जानते थे। कश्मीर के तत्कालीन धर्म-प्रिय डोगरा शासक महाराजा प्रतापसिंह कवियों, विद्वानों एवं ज्योतिष-पण्डितों के आदर एवं सम्मान के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। पण्डितजी पर उनका विशेष स्नेह था और इसीलिए उन्होंने अपनी यह प्रौढतम रचना उन्हें सश्रद्धा समर्पित करके इसका नाम "विष्णु प्रताप रामायण" रखा है। अपनी इस कृति द्वारा पण्डितजी कदापि काव्योत्कर्ष न दिखाना चाहते थे। वह भक्त पहले थे और बाद में कवि। लिखते-लिखते कभी वे भक्तिरस में इतने मग्न हो जाते थे कि उन्हें चेत ही नहीं रहता था कि वह क्या लिख रहे हैं, और वे कुछ और ही लिख बैठते थे। इस विषय में आजाद साहब लिखते हैं,[१] —"हासिलकलाम यह है कि पण्डित साहब की शायरी मजहबी है, जिसका लाज़िम

---

१. कश्मीरी ज़बान और शायरी, लेखक श्री अब्दुल अहद आज़ाद, पृ० ४१२, भाग २।

नतीजा ये है कि अक्सर औकात वे शायरी से दूर जा पड़ते हैं, लेकिन अमूमियत और सलासत उनके यहाँ बहुत शाज़ नजर आती है।" परन्तु इतना सब होते हुए भी उनकी इस कृति में स्वतः ही ऐसा प्रवाह, ऐसी गति, और ऐसी विशेषताएँ आ गई हैं, जो अपने में अद्वितीय हैं, बेजोड़ हैं।

प्रकृति और काव्य का निकटस्थ सम्बन्ध सर्वमान्य है। काव्य की मूल-चेतना प्रकृतिमयी है। यही कारण है कि काव्य में प्रकृति का सन्निवेश विभिन्न रूपों में होता रहा है। प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से ही कवि मनोहारी रूप में सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में सफल रहता है। प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये प्रकृति का किसी न किसी रूप में सहारा लिया है।

प्रस्तुत कृति में हमें प्रकृति-विषयक ऐसे सौन्दर्य पूर्ण चित्र मिलते हैं, जिनसे कवि की प्रकृति पर्यवेक्षण एवं चित्रण कला की आपार क्षमता का यथेष्ट परिचय मिलता है। प्रकृति को उन्होंने विभिन्न रूपों में देखा और चित्रित किया है। रामायण में अधिकांश स्थल प्रकृति की सौन्दर्यमयी छटा के प्रतिरूप बनकर उपस्थित हुए हैं। आलम्बन स्वरूप प्रकृति का सुन्दर एवं सजीव चित्रण कवि ने जनकपुर के वसन्त-कालीन प्राकृतिक सौन्दर्य के अन्तर्गत इस प्रकार किया है—

बहारस नव बहारस ताज़ तर बेल
गुलाबस सब्जज़ारस सअत्य रुत मेल
यम्बरज़ल प्यालअ हयथ गुलिआनरस
हवादारी छि मट्टि बरगे चिनारस
खुशी सर्वन त शमशादन छि बासान
ज़न्दन कुल्य देवदारन सीअत हमशान
तरातर अमृतुक जल जायक दार
बहरसो आबि ज़मज़म खास फव्वार
स्यठा नदियन त नहरन हंज नज़ाकत
हिये पोशन त अछि पोशन तराफत
मुअतर आरवल मसवल मुशिकदार
स्थावरजंगमस प्रथ तरफ गुलजार।[1]

"नव वसंत की मधुर आभा ! गुलाब और स्वच्छ हरियाली की समन्वित शोभा विलसित है। "नर्गिस" मानो "गुलिअनार" के समक्ष मदिरा का प्याला लेकर खड़ी है। चिनार के पत्ते पंखा झुला रहे हैं। "सर्ववृक्ष" और "शमशाद" की निगाहों में हर्षोल्लास दीप्त है। चन्दन और देवदारु पास-पास खड़े हैं। चारों ओर ताजा अमृत सरीखा जल फव्वारों से प्रवाहित है। नदी-नहरों के सौन्दर्य की तो बात ही क्या ? "हिय" और "अछिपोश" पूर्णरूपेण प्रफुल्लित हैं। "आरबल" तथा "मसवल" की

---

१. विष्णु प्रताप रामायण श्री० ह०, पृ० ६८।

मनमोहक महक इत्र के सदृश चारों ओर फैली हुई है। जड़ और चेतन सभी में वसन्त की मधुर आभा प्रस्फुटित हो रही है।

अयोध्यापुरी का आलम्बनगत प्राकृतिक दृश्य-वर्णन अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है—

इन्द्रलोकस सोअन्दर कम पोश बागिअ
वुजान तअति अमृतस हिइव की अति नागिअ
सरन पम्पोश फोलिमअति जाय जाये
परम ब्रह्मस करान आराधनाये
सोअन्दर गन्धर्व हिइव बोलान पंखी
वुछान जंगल ब जंगल तिअम असंखी
कुल्यन हिंअद बरग जन गजगाह त चामर
करान प्रथ तरफ श्री रामस बराबर।[1]

"इन्द्रलोक रूपी अयोध्यापुरी में मनमोहक पुष्प वाटिकाएँ हैं। वहाँ के कितने ही चश्मे अमृत सदृश जल से आपूरित हैं। सौन्दर्यमय गन्धर्वों की संगतीमय तानों की तरह वहाँ के पक्षी बोलते हैं। प्रत्येक वन-कानन में असंख्यों ही ऐसे पक्षी विचरण करते रहते हैं। हर तरफ से वृक्ष अपने पत्ते रूप चंवर श्री रामजी को डुलाते हुए से प्रतीत होते हैं।"

आलम्बन स्वरूप प्रकृति-चित्रण रामायण में दंडकवन के प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन के अन्तर्गत कवि ने अपार कौशल से इस प्रकार चित्रित किया है—

दंडक वनसीअ अन्दर कम बाग तअ राग
थवान इन्द्रलोकस तिअम बरजिगर दाग
मुअतर सब्जजारन ताज मुखमल
न बातो कंद हिइव बागन अन्दर फल
फलन फूलन अन्दर बरजसत बुसतां
गुलिस्ताना अजायब सोये नयीस्तां[2]

—"दंडक वन विभिन्न प्रेमापूरित पुष्प वाटिकाओं से सुशोभित है। ये पुष्प वाटिकायें इन्द्रलोक के लिए दाग के सदृश हैं अर्थात् इन्द्रलोक की आभा उनके आगे मलिन पड़ जाती है। मखमली ताज के सदृश, इत्र सी सुगन्धि विकीर्ण करते वहाँ के हरियाली से पूरित बागों में खिले फल फूल कंद के समान रसपूर्ण तथा स्वादिष्ट हैं। फल, फूल पूर्णरूपेण विकसित होकर मुस्करा रहे हैं, उनकी शोभा अवर्णनीय है।"

अलंकरण रूप में प्रकृति चित्रण का अत्यन्त उत्कृष्ट रूप हमें इस रामायण में मिलता है। राम और सीता के रूप-सौन्दर्य वर्णन में कवि ने प्रादेशिक पुष्पलताओं से

---

१. विष्णु प्रताप रामायण श्री० ह०, पृ० ३४।
२. विष्णु प्रताप रामायण श्री० ह०, पृ० ४३।

ही उपमान ढूँढे हैं। कवि को प्राकृतिक उपमानों के चयन एवं प्रयोग में अद्भुत सफलता मिली है। एक ही प्रसंग में विशिष्ट उपमेय के लिए एक साथ कई उपमानों का सकुशल प्रयोग उक्त रामायण की काव्य-शैली की एक प्रमुख विशेषता है। कवि ने राम के लिए अधिकतर "सूर्य", "कमल", "सोम्बुल", और सीता के लिए "चंद्रमा", "गुलाब", "मसवल", नर्गिस, तथा रावण के लिए "राहु", "केतु", "ग्रहण", आदि प्राकृतिक प्रतीक प्रयुक्त किये हैं।

सीताजी का रूप-वर्णन अति ही सुन्दर कोमल एवं कमनीय रूप में चित्रित हुआ है—

जनक राजस छ निरमल अख कुमारि
यिवान छि दरशनस नित दीव सअरि
ज्ञानिव दीप्त त्रेअन लूकून अन्दर चाँद
गछान तारामण्डल तसकुन वुछित भाँद
नटान तसिंदिस मुखस यानि सिरिय डेशान
खटान बुअथ चंद्रमअ क्या वुअट छ फेशान।

"महाराजा जनक की एक अत्यन्त सुन्दर एवं कमनीय कन्या है जिसके दर्शन हेतु नित्य प्रति देवतागण आते हैं। वह तीनों लोकों में पूर्णिमा के शुभचन्द्र के समान कान्तिपूर्ण है। उसकी शुभ्रकान्ति से सम्पूर्ण तारामण्डल फीका पड़ जाता है। सूर्य उसके मुख की एक झलक देखकर ही थरथर काँपने लगता है तभी चन्द्रमा उसके अपार सौन्दर्य के आगे न टिक सकने के कारण लज्जित होकर मुँह छुपा लेता है।"[1]

प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोप तथा पात्रों के सुख-दुःख के साथ प्रकृति के समरस होने का वर्णन भारतीय साहित्य की आदिम प्रवृत्ति है। प्रस्तुत रामायण में ऐसे कई स्थल मिलते हैं जिनमें कवि ने प्रकृति की संवेदना का अद्भुत एवं प्रभावात्मक चित्रण किया है। सीताहरण के समय सीता के दुख में आकाश के तारे और पशु-पक्षी संवेदना प्रकट करके दुःख विह्वल हो उठते हैं। राम और लक्ष्मण सीता को वन-वन खोजते हुए प्रकृति को दुःख विह्वल पाते हैं—

कुकिल ब्रजमन्न पंजर त्राविथ गमन्नहअर
वरज वावस अंदर तोतन चि हज्य कअर
न कुनि कस्तूर न कुनि पोशिनूलइ
हजिथ ग्योमुत बहर सो फलत फूलइ
दरिथ गामित कुल्यन हँदि मूल सअरि
तिमौ वैरागचइ करमच्न तैयारी
वदान बुतराथ कुअलि कअटि कअनि त आकाश
स्थावर - जंगमस छ गोमुत जअन नाश

---

१. विष्णु प्रताप रामायण श्री० ह०, पृ० ६९।

वदान कुटिया वदान सामान हन हन
मअशिथ आब्रह्म परियनतस छु खअनवन ।[1]

"कोयल और मैना पिंजड़ा खाली छोड़कर भाग गई हैं । विरह-वेदना से तोते गर्दन झुकाए पड़े हैं । नित्य गाने वाले "कस्तूर" और "पोशिनूल" कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे हैं तथा फल फूल सब मुरझा कर झड़े पड़े हैं, वृक्षों की जड़ें तक जल गई हैं, जैसे समस्त प्रकृति ने वैराग्य धारण करने की ठान ली हो । पृथ्वी, आकाश, पेड़-पौधे सभी रो रहे हैं, ऐसा लगता है मानो सम्पूर्ण सृष्टि (जड़ और चेतन) इस अपार दुःख से नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी । सीता के विरह में कुटिया और कुटिया का सम्पूर्ण सामान रो रहा है । ब्रह्मा से लेकर चींटी तक सभी खाना-पीना भूल गये हैं ।

सीता हरण के समय सीता का करुण रुदन एवं प्रलाप सुनकर समस्त प्रकृति शोकमग्न हो जाती है—

वदान सीता वदान आकाश पाताल
नतै त्रैलूकी आमुत छु भूँचाल
हरान ओश दारि जानावार बराबर
परान सारिअ हरे श्रीराम रघुवर ।[2]

"सीता रो रही हैं, उनके साथ-साथ आकाश-पृथ्वी दोनों रो रहे हैं । जैसे तीनों लोकों में भयंकर भूकम्प आ रहा हो । समस्त पशु-पक्षी "श्रीराम रघुवीर" का नाम ले ले कर नेत्रों से अश्रुओं की वर्षा कर रहे हैं ।"

सीताजी को राम के विरह में निरन्तर दग्ध एवं अश्रुवर्षा करते देख रावण की सुन्दर अशोक-वाटिका कुम्हला जाती है, उसमें पतझड़ का पीलापन छा जाता है । वह भी सती सीता के दुःख में साझीदार हो जाती है । इसका चित्र कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है—

वहारस सब्जजारस डोठ वोलुन
खुशी हुयंद ब्योल तथलंकाय गोलुन
कुंअगुक हुइव रंग सोंपुन गुलिअनारन
वंसिथ पेई तार साजन तथ सितारन
कुकिलिअ गू गू करान चजि बागअ निश दूर
सती हुंअद मोअख वुछिथ पानस मोलुख नूर
हरिथ पेई गुल त फुल सअरि बराबर
रटिख जरदि हुरूद यलि गव तथ अन्दर
दरख्तो वोल तुयथुइ वैरक्त रक्तिइ
फना सोंपुन वहारुक ताज तखतिइ

१. विष्णु प्रताप रामायण श्री० ह०, पृ० १७६ ।
२. विष्णु प्रताप रामायण, वन० २८ ।

सिरिय छेफ दिथ मेघस अन्दर ब्यूठ
पनिम चंद्रमसिइ उपवास तत्रिमि ड्यूठ[१]

"सीताजी को विरहाग्नि में तप्त देख हरियाली से आपूरित अशोक-वाटिका पर ओलों की वृष्टि होने लगी। लंका में छाई प्रसन्नता समूल उखड़ गई। अरुण गुल-अनारों का रंग पीला पड़ने लगा, साजों और सितारों के तार टूटने लगे। कोयलों का समूह बैरागी बन, दुःख की ध्वनि करता उस उपवन से भाग गया। सारे फल-फूल झड़ गये और जो भी कुछ बचे फल-फूल थे उनमें पतझड़ का पीलापन छा गया, वे कुम्हलाने लगे। दरख्तों ने वैराग्य धारण कर लिया अर्थात् उनकी आभा धूमिल हो गई। वसन्त की सारी आभा, सारा सौन्दर्य क्षण में नष्ट-भ्रष्ट हो गया। सूर्य घने काले मेघों में छुप गया, पूर्णिमा के चन्द्रमा ने उपवास धारण कर लिया, उसकी कान्ति मलिन पड़ गई।"

प्रकृति का जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने में कवि के अपार कौशल के दर्शन सर्वत्र होते हैं। मानव-जीवन और प्रकृति के घनिष्ठतर एवं शाश्वत सम्बन्धों का चित्रांकन उक्त कृति में अत्यन्त विशदता के साथ हुआ है। कश्मीरी फूलों, फलों, लताओं वृक्षों आदि का स्वतन्त्र तथा प्रतीकात्मक रूप-चित्रण अत्यन्त मोहक एवं सजीव बन पड़ा है। कुल मिलाकर प्रस्तुत रामायण में प्रकृति का प्रवाह सरल, स्वाभाविक और मधुर गति से चलता है। अन्त में डा० ओंकारनाथ कौल के शब्दों में—"प्रकाश रामायण के बाद विष्णु प्रताप रामायण में ही वस्तु विन्यास एवं काव्य शैली में क्षेत्रीयता, साहित्यिक, सामाजिक और प्राकृतिक विशेषताओं का अधिक समावेश हुआ है। जन जीवन और समाज का जितना स्वच्छ, सजीव और जीवन्त चित्रण दोनों कृतियों द्वारा सम्भव हो सका है, अन्य काव्यों के माध्यम से नहीं। इस दृष्टि से इन दोनों रामायणों का अपना विशिष्ट महत्व है।"[२]

---

१. विष्णु प्रताप रामायण बन० पृ० ३५।
२. 'कश्मीरी राम-कथा काव्य' प्रबन्ध से उद्धृत।

कश्मीर के तीर्थस्थान

क्षमा कौल एम० ए० (अनुसंधित्सु)

नीलमत पुराण की दृष्टि से कश्मीर प्रागैतिहासिक काल में सतीसर नाम से जाना जाता था जो बाद में कश्यप मुनि के प्रयत्नों से एक मनोरम उपत्यका में परिणत हुआ। नीलमत पुराण में ही एक स्थान पर कश्मीर को कोटितीर्थ की संज्ञा दी गई है। तात्पर्य यह कि कश्मीर प्रदेश में करोड़ों तीर्थ हैं। कश्मीर में लद्दाख का भूखण्ड भी सम्मिलित है। चूंकि कश्मीर में लगभग ८०० वर्षों से मुसलमानों का खासा प्रभुत्व रहा, इस कारण यहाँ की हिन्दू संस्कृति जितनी पुरातन एवं सुदृढ़ है उतनी ही मुसलमान संस्कृति भी यहाँ बद्धमूल है। लद्दाख में पहले से ही बौद्ध-धर्म की प्रमुखता रही है अतः वहाँ के मूल निवासी बौद्ध-धर्म के अनुयायी हैं। कश्मीर में सिक्खों का भी राज्य रहा है। परिणामस्वरूप कश्मीर में सम्प्रति चार धर्मों के अनुयायी पाये जाते हैं—मुसलमान, हिन्दू, सिक्ख एवं बौद्ध।

कश्मीर में मुसलमानों का आज बहुमत है, हिन्दू तथा सिक्ख केवल दो-तीन प्रतिशत ही हैं। यहाँ अधिकांश पवित्र तीर्थ हिन्दुओं के हैं, जो कि अत्यन्त प्राचीन हैं, एवं ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। इन सभी स्थानों का जिक्र किया जाए ऐसा यहाँ संभव नहीं हैं, क्योंकि यह विषय ही स्वयं में व्यापक है। कुछ प्रमुख स्थानों का ज़िक्र करना ही यहाँ समीचीन है। हिन्दू तीर्थ स्थलों में सर्वप्रधान हैं 'अमरनाथजी', 'क्षीर-भवानी', 'कश्मीर-गंगा', 'गणेशबल', 'मार्तण्ड', तथा 'सारिका' (हारी पर्वत)।

अमरनाथ (अमरेश्वर)—एक पर्वतीय झील जिसकी पृष्ठभूमि में यह अवधारणा है कि शिश्रमनाग ने अपना स्थानांतरण यहाँ किया था। यह लिद्दर नदी के स्रोतों में से एक है तथा ७५°३४' अक्षांश एवं ३४°५' रेखांश पर अवस्थित है। उत्तरी छोर से यह भीमकाय हिमाच्छादित पर्वत से जुड़ा हुआ है जिसे कश्मीरी लोग अपनी भाषा में 'अम्बरनाथ' कहते हैं। श्रावण की पूर्णिमा पर यहाँ एक भव्य यात्रा जाती है। भारत के दूर-दूर के प्रदेशों से तथा विदेशों से भी यात्री आते हैं। इस यात्रा का वास्तविक लक्ष्य एक गुफा है जो बहुत दक्षिण के हिमशिखर (१७५०० फीट) की बहुत बड़ी दरार से निर्मित है। इस गुफा के भीतर एक बहुत बड़ी पारदर्शी हिमराशि है जो कि पानी के जम जाने से बन जाती है। यह जल इस गुफा में से ही रिसता है। इस हिममूर्ति को स्वनिर्मित स्वयम्भू लिंग के रूप में बड़ी श्रद्धा से पूजा जाता है। राज-

तरंगिणी तथा नीलमत पुराण के संकेतों के आधार पर यह बात सिद्ध हो गई है कि इस स्थान को इतनी प्रसिद्धि बहुत प्राचीन समय से ही प्राप्त थी। जोनराज ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि सुल्तान जैन-उल-आबिदीन बड़शाह अमरनाथजी की यात्रा पर स्वयं यात्रियों के साथ गये थे। महात्म्य साहित्य भी यही कहता है कि अमरनाथ अत्यन्त प्राचीन समय से लोगों की श्रद्धा का ठीक इसी अनुपात से अपना भाग प्राप्त करता रहा है। अमरेश्वर महात्म्य में इसके विभिन्न मार्गों एवं पड़ावों का विस्तृत उल्लेख दिया गया है, जो कि पूर्व से लिद्दर अथवा लद्दरी (लम्बोदरी) नदी से शुरू होता है।

इस पूरी यात्रा में जो अत्यधिक महत्वपूर्ण पड़ाव है, वह शेषनाग झील है। इसको शिश्रमनाग अथवा शेषरमनाग भी कहते हैं, किंतु वर्तमान में इसका नाम शेष-नाग ही प्रचलित है। यह इस यात्रा का द्वितीय पड़ाव तथा विश्राम-स्थल भी है। यहाँ पहुंचकर हर व्यक्ति की दृष्टि अनायास चमत्कृत हो जाती है। इस झील का रंग गहरा नीला है। झील स्वयं में सागर की भांति मर्यादास्थित एवं शान्त है। जबकि आस-पास के अनगिन झरने इसमें समाहित होते हुए आगे लिद्दर नदी में जा मिलते हैं। इसका स्रोत कोहिनार में एक विशाल ग्लेशियर का उत्तरी चरण है। कल्हण ने इसमें समाहित होने वाली एक अन्य झील का भी उल्लेख किया है, जिसे 'जमात्रा नाग' (कश्मीरी में ज़ामतुर नाग) कहते हैं।[1] इसके बाद इस तीर्थ का मुख्य स्थल आता है जिसका मार्ग एक ऊँचे दर्रे से होकर जाता है। इस स्थान का नाम है पंच-तरंगिनी। यहाँ पांच नदियों का मेल होता है। इसके पश्चात् अमरनाथ की गुफा का मार्ग आता है। यहाँ अमरावती नदी बहती है, जिसका स्रोत पूर्वी ग्लेशियर है। आगे चलकर यह नदी पंचतरणी से मिलते हुए बालटल के मार्ग से आगे बहती है।

अमरेश्वर गुफा एक चमत्कारपूर्ण स्थान है। गुफा इतनी चौड़ी एवं लम्बी है कि एक समय में एक सौ व्यक्ति इसमें समा सकते हैं। गुफा के सामने एक फैला हुआ सा प्रांगण है जो श्वेत रेत से बना है। इस श्वेत रेत को यात्री बड़ी श्रद्धा से प्रसाद के तौर पर 'अमरविभूति' की संज्ञा देकर यहाँ से ले जाते हैं तथा अपने उत्तमांगों पर मलकर स्वयं को धन्य मानते हैं।

अमरनाथजी का ही स्वरूप कश्मीर घाटी के अन्य स्थानों पर भी विद्यमान माना जाता है। जैसे—श्रीनगर के पूर्व में 'थजीवारा' में, 'सिद्ध महादेव' पर्वत की गुफा में, बांडीपुर में स्थित 'दीनेश्वर', श्रीनगर स्थित 'शंकराचार्य' तथा 'हरेश्वर' के अस्थापनों में।

प्रसिद्ध भक्त-कवि श्री परमानन्द ने अपने गीतिकाव्य में अमरेश्वर यात्रा के विभिन्न पड़ावों आदि का विशद वर्णन किया है। कवि ने वास्तव में इन पड़ावों को योग-साधना की विभिन्न अवस्थाओं का प्रतीक माना है।

---

१. राजतरंगिणी, तरंग १, श्लोक २६७।

क्षीर-भवानी (तुलामुला)—यह वर्तमान तुलमुला ग्राम है जो कि ७४°४८' अक्षांश तथा ३४°१५' रेखांश पर उन दलदलों के बीच स्थित है जहाँ से होकर सिंधु नदी वितस्ता में मिलने से पूर्व गुजरती है। तुलमुला के पवित्र कुण्ड में देवी महाराज्ञी (दुर्गा का एक रूप) का निवास है। महाराज्ञी देवी की कश्मीरी जनता व्यापक रूप से पूजा करती है। यह तीर्थ ऐसा लोकप्रिय तीर्थ है जहाँ प्रतिदिन बहुत बड़ी संख्या में दर्शनार्थी आते हैं। इस ग्राम का नाम चतुर्थ चरण[1] तथा राज्ञी प्रादुर्भावः में तुल-मुलक के रूप में दिया गया है। शब्द-व्युत्पति शास्त्र के अनुसार 'तुलमुलक' रूप ही संगत है। यह तीर्थ वर्तमान में क्षीर-भवानी नाम से जाना जाता है। सम्पूर्ण उत्तरी-भारत की हिंदू जनता इस तीर्थ को अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। इस देवी अस्थापन का, जो कि माता दुर्गा का वैष्णव-स्वरूप है, जीर्णोद्वार महाराजा प्रतापसिंह द्वारा कराया गया था। सम्प्रति यह तीर्थ धर्मार्थ ट्रस्ट के अधीन है। इसके समन्तात का प्रांगण संगमरमर से सज्जित है। इस तीर्थ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दृश्य देवी की मूर्ति है। यह देवी-मूर्ति प्राचीन मूर्ति-कला का अपूर्व नमूना है। इसको देखकर स्पष्ट होता है कि कश्मीर की प्राचीन मूर्तिकला कभी उच्चशिखर पर थी। राजा जयापीड़ (सन् १३००-१४००) के समय से ही इस तीर्थ को प्राधान्य प्राप्त हुआ है क्योंकि इतिहास के अनुसार राजा जयापीड़ ने यहाँ 'तुलमुल ब्राह्मण संगठन' का आयोजन किया था, जिसका ध्येय तीर्थ को अधिक से अधिक आकर्षक एवं यात्रियों के लिए सुविधापूर्ण रखना था। यहाँ पर हर शुक्लाष्टमी को कश्मीरी ब्राह्मणों की व्यापक संख्या पधारती है तथा श्रद्धा पुष्पों का अर्पण करती है, किंतु वास्तविक महोत्सव यहाँ ज्येष्ठ शुक्लाष्टमी को होता है। यह दिवस महाराज्ञी के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है, तथा सहस्रों की संख्या में लोग इस तीर्थ में आते हैं। कश्मीर घाटी में अहरबल के निकट 'मंजगाम' ग्राम में, बारामूला में 'शैलजादेवी' अस्थापन तथा कुपवाड़ा से ३ मील की दूरी पर स्थित 'टिकर' ग्राम में भी महाराज्ञी का ही स्वरूप विद्यमान है। इन स्थानों पर भी शुक्लाष्टमी को ही महोत्सव होते रहते हैं।

कश्मीर गंगा—दूधखुड़ के पूर्वी तरफ से चोटियां धीरे-धीरे वहाँ तक चली जाती हैं, जहाँ से हरमुकुट शिखर पर पहुंचा जाता है। इसी तीर्थ को कश्मीर गंगा की संज्ञा दी गई है। सत्रह हजार फीट की ऊंचाई पर और समन्तात विशाल ग्लेशियरों से घिरी हुई ये पहाड़ियां समूची कश्मीर-घाटी का सिंहावलोकन करती हैं। बहुत प्राचीन काल से इस तीर्थ स्थान के चारों ओर अनगिनत पावन कथायें गूंथी गई हैं। इस दुर्गम तीर्थ के नीचे की झील महत्त्वपूर्ण तीर्थ झील मानी जाती है। हरचरित-चिंतामणि से जुड़ी हुई एक कथा में यह उल्लेख मिलता है कि इस चोटी को हर अर्थात् शिव का मुकुट कहा जाता है। इन शिखरों की ऊंचाई शिव की मनपसन्द भूमि मानी जाती है। इस कारण कश्मीरी रिवाज के अनुसार मनुष्य के पांव इन ऊंचाइयों

---

१. राजतरंगिणी, श्लोक ५१७–५३।

पर नहीं पहुंच सकते। इस तीर्थ से जुड़ी एक झील है जो कि १३००० फीट की ऊंचाई पर उत्तर-पूर्वी ग्लेशियर के किनारे से लगी है जिसे वास्तव में कश्मीर-गंगा अथवा सिंधु नदी का असली स्रोत माना जाता है। इस तीर्थ का मेला प्रतिवर्ष भाद्रपद के मास में शुक्लाष्टमी के दिन होता है जिसे गंगाष्टमी नाम से भी अभिहित किया जाता है। लोग सहस्रों की संख्या में यहाँ आते हैं। उन मृतकों की अस्थियां जिनकी मृत्यु तत्वर्ष में हुई हो, भी इसी गंगा में श्रद्धासहित समर्पित की जाती हैं। इस झील की कुछ ही दूरी पर एक अन्य ग्लेशियर भी है जो नन्द कोल नाम से पुकारा जाता है। इसका पुराना नाम कलोदका अथवा नन्दिसर भी एक प्राचीन कथा के अनुसार है जिसका सम्बन्ध भगवान शंकर के सेवक नन्दि से है। यहाँ नन्दिसर को नन्दिकेश्वर अस्थापन के नाम से भी अभिहित किया जाता है। नन्दिकेश्वर नाम कल्हण ने ही दिया है। नन्दिकेश्वर का पूरा-पूरा सम्बन्ध हरमुकुट गंगा से है जिसका वर्णन राज-तरंगिणी में विस्तार से हुआ है। इस यात्रा की वापसी पर भूतेश्वर तीर्थ पड़ता है, यहाँ से भारत गिरि से होते हुए ब्रह्मसर की झीलें भी देखी जाती हैं, जिनका कि पवित्र एवं धार्मिक महत्त्व है। गंगा झील से होते हुए टट्टुओं का मार्ग है जिससे सतसर की चोटी से गुज़रकर तिलेल (कृष्ण गंगा[1] के तट पर एक दरद ज़िला) को पहुंचा आ सकता है। इसी मार्ग से राजा हर्ष का विद्रोही भाई लाहरा (वर्तमान 'लार') से भाग गया था।

गणेशबल—हारी पर्वत के दक्षिणी चरमशिखर के साथ ही एक शिला है जिसको कि प्राचीन काल से ही गणेशजी की मूर्ति के रूप में अर्चा गया है। प्राचीन काल में इसे 'भीमस्वामिन' नाम से अभिहित किया जाता था। कल्हण ने इसका संबंध प्रवरसेन द्वारा निर्मित प्रवरपुर[2] में स्थापित स्वयम्भू मूर्ति से दिखाया है। राजा के प्रति आदर दिखाने हेतु, यह कहा जाता है कि ईश्वर ने पश्चिम से पूर्व की ओर मुँह किया था ताकि नवीन नगर पर उनकी पूरी-पूरी दृष्टि रहे। इस शिला को भक्तों ने लाल सिदूर (जिसे भगवान गणेश का रुचिर वस्त्र माना जाता है) से इतना पोता है कि इस पर मोटी-मोटी तहें जम गई हैं और इसके मुख का साम्य हाथी (गणेश) के मुख के साथ कर पाना कठिन है।

भगवान गणपति का यही स्वरूप पहलगाम से तीन मील पहले गणेशबल में भी स्थापित है। श्रीनगर स्थित 'गणपतियार', गुलमर्ग के निकट 'कछुव' ग्राम तथा हंदवाड़ा ग्राम में स्थित अस्थापन को भी इसी गणेश श्रृंखला की कड़ियां माना जाता है। इन तीर्थों में भी वैशाख मास की शुक्लाचतुर्दशी को भव्य उत्सव मनाया जाता है तथा यज्ञ रचाये जाते हैं।

---

१. इसकी उपत्यका पर कल्हण कृत राजतरंगिणी तरंग ४ श्लोक ३२५ में शारदा मन्दिर का उल्लेख मिलता है जो प्राचीन एवं सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध था। वर्तमान में यह पाकिस्तान भूखण्ड में चला गया है।
२. वर्तमान श्रीनगर। कल्हण कृत राजतरंगिणी तरंग ३, श्लोक ३३०–३४९।

हारी पर्वत—भगवती शारिका का अस्थापन श्रीनगर में ही स्थित है। यह एक छोटी-सी पहाड़ी है जिसके चरम शिखर पर सम्राट अकबर ने दुर्ग भी बनवाया था, जो कि पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। आषाढ शुक्लनवमी को यहाँ मेला लगता है तथा समूची कश्मीर घाटी के ब्राह्मण यहाँ अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। यह पर्वत-शिखर कश्मीरी ब्राह्मणों, मुसलमानों तथा सिक्खों के बीच समन्वय का जीता जागता प्रतीक है। इस अस्थापन के साथ यह अवधारणा जुड़ी है कि कश्यप की तपस्या जब चरमसीमा पर पहुंची तो भगवती दुर्गा सारिका (मैना) का रूप धारण करके उड़ती हुई चोंच में कंकड ले आई तथा यह कंकड़ सतीसर में फैंका जो कि पहाड़ी में परिणत हो गया तथा इसी के नीचे, सतीसर में रहने वाले जलोद्भव राक्षस का, दबकर अन्त हुआ। तभी से सारिका देवी का भव्य तीर्थ भी इस पर्वत पर है।

मार्तण्ड (मटन)—इस ग्राम तथा तीर्थ को भवन भी कहते हैं। अनन्तनाग से यह तीर्थ साढ़े चार मील दूर है तथा श्रीनगर से साढ़े अड़तीस मील दूर है। इसमें एक सुन्दर प्रांगण है तथा भीतर 'कमला' एवं 'विमला' नामक दो पवित्र कुण्ड हैं। ये उभय कुण्ड प्रभु विष्णु को समर्पित हैं। यह तीर्थ भारत भर में प्रसिद्ध है तथा इसका महत्त्व भी प्रयाग, हरद्वार की भाँति ही है। कुम्भ के मासों में यहाँ प्रत्येक स्थान से लोग आते हैं तथा इन पवित्र कुण्डों में अपने पूर्वजों का श्राद्ध करके पिण्ड दान देते हैं। इस मन्दिर का निर्माण महाराजा ललितादित्य[1] ने कराया था तथा इसके भीतर प्राचीन स्थापत्य कला एवं मूर्ति कला के उच्चकोटि के नमूने उपलब्ध हैं।

इनके अतिरिक्त भी यहाँ अनेक और तीर्थ-स्थल हैं। जैसे—'गगंबल', गुफबल,' 'सुम्बल', सीर स्थित 'नन्दिकेश्वर' एवं वड़ीपुरा से कुछ दूर 'भद्रकाली' अस्थापन। इनका भी अपना इतिहास एवं तीर्थ सम्बन्धी महत्त्व है।

मुसलमानों के पवित्र स्थान भी कश्मीर में हैं। इनमें से कुछ प्राचीन एवं ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाले अस्थापनों का उल्लेख यहाँ किया जायगा।

खानक़ाह शाह हमदान—वितस्ता के दाहिने तट पर तृतीय तथा चतुर्थ पुल के मध्य में लकड़ी का एक भवन स्थित है। यह खानक़ाह के रूप में सय्यद अली हमदानी, (फारस में हमदानवासी मुस्लिम सन्त) को समर्पित है। इस मस्जिद का निर्माण कब हुआ था यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया। अबुल-फजल की आईने-अकबरी के अनुसार सय्यद अली हमदानी श्रीनगर में रहते थे तथा अपने जीवनकाल में ही उन्होंने इस स्थान को मठ के रूप में बनवाया था, जो कि बाद में उनके नाम से मस्जिद बन गया। इसका भव्य-रूप चौकोर लकड़ियों के टुकड़ों से निर्मित है जो कि भीतर ही भीतर अत्यन्त सुन्दर छोटी-छोटी फट्टियों से बन्द है। कुछ द्वार एवं खिड़कियां उच्च प्रकार की काष्ठ-कला के नमूने प्रस्तुत करते हैं। शाह-हमदान का खानक़ाह एक चौकोर मस्जिद है और इसकी छत गुम्बदनुमा है। भीतर एक विशाल कमरा ६३×४३

1. कल्हण कृत राजतरंगिणी, तरंग ४।

फीट का है तथा इस विशाल कमरे के किनारे-किनारे और भी १४ कमरे हैं। उत्तर पश्चिम कोने पर सन्त श्री सय्यद अली हमदानी का एक स्मारक है। इस मस्जिद के मुख्यद्वार पर ७८० हिजरा अंकित है जो कि सन्त श्री सय्यद अली की मरण तिथि है। इसका मुकुट आभूषण यह स्पष्ट कर देता है कि इसका कितना साम्य बौद्ध विहारों से है। यह छत्राकार है। नेपाल स्थित 'स्वयम्भूनाथ' में तथा अन्यत्र भी ऐसे ही छत्राकार मुकुट पाये जाते हैं। इस मस्जिद के अन्दर की आभरण-सज्जा उड़ीसा के अधिकांश मन्दिरों की आभरण सज्जा से अत्यधिक मेल खाती है। अनुमान यह है कि अपने मूलरूप में यह एक बौद्ध विहार ही था जिस पर हिन्दू स्थापत्य-कला की छाप है।

त्रार शरीफ—शेख नूरुद्दीनवली अथवा नुन्द ऋषि कश्मीर के महान् सन्त कवि थे। स्नेहवश ये हिन्दू लोगों द्वारा सहजानन्द नाम से तथा मुसलमानों द्वारा नुन्द ऋषि नाम से पुकारे जाते थे। इनको 'अलमदार' भी कहा जाता था। धार्मिक सहिष्णुता का जो उदाहरण कश्मीर में अलमदार ने स्थापित किया उसका कहीं कोई जवाब नहीं। नन्द ऋषि ने संन्यास धारण किया था तथा आजीवन वैष्णव रहे थे। उनके नाम पर कश्मीर में इन स्थानों पर अस्थापन स्थापित हैं, 'कैमूह', 'त्रिमर', 'हूंन्नीपोरा', 'सिताहरण', 'द्रयगाम', 'रूपवन', तथा 'त्रार-शरीफ'। इन सभी अस्थापनों में से त्रार-शरीफ का अस्थापन अधिक प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण है। यहाँ प्रतिवर्ष अक्तूबर के मास में मेला लगता है जो कि लगभग एक मास तक चलता है।

नुन्द ऋषि का जन्म सन् १३७७-७८ ई० में कैमूह में हुआ था। २१ वर्ष की आयु तक वे गृहस्थ रहे एवं विवाह भी किया। उसके पश्चात् गुफबल की गुफा में १२ वर्षों तक आराधना मग्न रहे। ६३ वर्ष की आयु में सन् १४४२ ई० में उनका देहान्त हुआ। उन्हें त्रार शरीफ में दफनाया गया। जोनराज ने इनको 'यवनाः परमम् गुरुम्' अर्थात् मुसलमानों के परम गुरु की उपाधि प्रदान की है। ये ललद्यद के बाद कश्मीरी भक्त-कवि परम्परा के द्वितीय शिरोमणि कवि हैं। इनकी कविताओं को कश्मीरी में श्रुख (श्लोक) कहा जाता है।

हज़रतबल—यह अस्थापन श्रीनगर से ६ मील की दूरी पर स्थित है। नसीम बाग पुल से इसका फासला ४ मील है। यह कश्मीर में तथा भारत में भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ज़िआरत है। यहाँ भीतरी भाग में एक मस्जिद है जहाँ अत्यन्त सुरक्षित रूप से पैगम्बर मुहम्मद साहब का एक पवित्र केश एक कांच के बोतलनुमा बर्तन में रखा गया है। कहा जाता है कि यह केश यहाँ ख्वाजा नूरुद्दीन बीजापुर से सन् १७०० ई० में लाये थे। तभी से इस केश को बड़ी श्रद्धा से रखा गया है। हज़रतबल दरगाह की ज़िआरत के इर्द-गिर्द अत्यन्त प्राचीन कथायें भी गुंथी हुई हैं। इसका प्राचीन नाम विष्णुपाद है और यहाँ विष्णु का पवित्र मन्दिर था। इस ज़िआरत में हर शुक्रवार को मुसलमान लोग सामूहिक रूप से 'नमाज़े जुमा' अदा करते हैं। इस कारण इस अस्थापन में हर शुक्रवार को एक मेला-सा लगता है। वर्तमान मुख्यमंत्री शेख

मुहम्मद अब्दुल्ला ने इसके गुम्बद एवं कलश का निर्माण कराया है, तथा इसका सौन्दर्यीकरण कराया है। इसके पुर्निमार्ण के समय इसकी खुदाई में अनेक मूर्तियां निकली हैं।

मखदूम साहब—यह अस्थापन हारी पर्वत किले के दक्षिण में स्थित है। लोग यहाँ अक्सर भौतिक विपत्तियों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए शरणागत होते हैं। यह अस्थापन भी सारिका मन्दिर की भांति ही शहर के किसी भी स्थान से दृष्टिगोचर होता है।

ऐशमुकाम—मटन अस्थापन से लगभग ५ मील की दूरी पर यह ज़िआरत है। इस अस्थापन का एक मनोरम प्रांगण है। इसको कश्मीरी में ज़ैनशाह साहब का अस्थापन भी कहते हैं। यहाँ प्रसिद्ध ऋषि ज़ैनुद्दीन अपने समय में निवास करते थे तथा बाद में दफनाये भी यहाँ ही गये थे। एक कथा के अनुसार ये ऋषि वास्तव में जनक ऋषि के नाम के हिन्दू ऋषि थे, बाद में इन्होंने धर्म परिवर्तन करके ज़ैनुद्दीन नाम धारण किया।[1] यहाँ प्रत्येक दर्शनार्थी को इस ऋषि की तलवार एवं पादुकाओं के दर्शन कराये जाते हैं। श्रीनगर से इस अस्थापन का फासला ४८ मील है।

बाबा ऋषि—टंगमर्ग से तीन चार मील का पर्वतीय रास्ता तय करने के बाद यह अस्थापन आता है। यहाँ गुलमर्ग से खच्चरों तथा घोड़ों पर भी आ सकते हैं। यहाँ लोग आकर रात-रात भर ठहरते हैं तथा श्रद्धा के पुष्प भी समर्पित करते हैं। यहाँ एक ऋषि का मकबरा है, जिसका कि एक कथा के अनुसार ऐशमुकाम स्थित ज़ैनुद्दीन के साथ गुरु-शिष्य सम्बन्ध था।

कश्मीर में सिक्खों के भी अनेक धार्मिक स्थान हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक महत्त्व का है 'गुरुद्वारा छटी पादशाही।' यह गुरुद्वारा श्रीनगर से ५ कि० मी० की दूरी है, तथा ऐतिहासिक दुर्ग हारी पर्वत के अंचल में स्थित है। कथा है कि इस स्थान पर माई भागभरी नामक एक स्त्री रहती थी, उसे छटे गुरु श्री हरगोविन्द सिंहजी के दर्शन की बड़ी कामना थी। गुरुजी को उपहार में देने के निमित्त उसने अपने हाथों से एक कुर्ता बनाया जिसमें उसकी आंखों की ज्योति चुक गई। गुरुजी यात्रा के दौरान जब यहाँ से गुज़रे तो भागभरी के पास आये। तब माई भागभरी ने अन्धी होने के कारण अपने भाग्य को कोसा। गुरुजी ने पास की झील से जल उठा कर उसके नेत्रों पर लगाया और उसकी आंखों की ज्योति लौट आई। आज भी यहाँ एक तालाब है, जिसका ज़ल अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इस गुरुद्वारे का गुरु महाराज के यहाँ ठहरने के कारण बहुत महत्त्व है।

ऐसे ही अन्य दो गुरुद्वारे भी हैं, बारामूला[2] तथा उड़ी में। एक अन्य गुरुद्वारा भी है। जिसकी ऐतिहासिकता की खोज जारी है।[3] इस गुरुद्वारे में वर्ष में एक बार

---

१. टू कश्मीर, डी० पी० काचरू, पृ० ५१।

२. बारामुला से ५ कि० मी० दूर गुरुद्वारा कलमपुरा है। यहाँ गुरु श्री हरगोविन्द साहब यात्रा के दौरान रुके थे।

३. इस स्थान पर श्री गुरुनानक देवजी तथा गुरु हरगोविन्द साहब दर्शन हेतु आये थे।

गुरु श्री हरगोविन्द साहब के जन्म दिवस पर मेला लगता है।

लालचौक श्रीनगर से २ कि० मी० की दूरी पर गुरुद्वारा शहीद बुंगा साहब स्थित है।[1] इस गुरुद्वारे में श्री अर्जुन देवजी सिक्खों के पांचवे गुरु का शहीद दिवस मनाया जाता है। घाटी के अन्य जिलों में भी गुरुद्वारे हैं। जैसे—गुलमर्ग, पहलगाम, अनन्तनाग आदि। श्रीनगर में श्री गुरुनानक देव के पुत्र के नाम पर श्रीचन्द्र चिनार नामक पवित्र स्थल भी है।

लद्दाख के असंख्य बौद्ध तीर्थों में प्रमुख हैं—'हिमिस गोम्पा' (मठ)—इसकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण बौद्ध साहित्य भण्डार की समृद्धि की दृष्टि से है। इस गोम्पा में महात्मा बुद्ध तथा उनके धर्मानुयायी शिष्यों के धर्म-सम्बन्धी समस्त ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इस गोम्पा में हर वर्ष एक धार्मिक त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार प्राचीन काल से ही देश विदेश के यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

इसके विषय में एक प्राचीन कहावत है कि यदि सरकार की आर्थिक दशा ठीक न रहे तो हिमिस गोम्पा सरकार की सहायता कर सकता है। यदि हिमिस गोम्पा की आर्थिक स्थिति ठीक न रहे तो सरकार इसकी सहायता कर सकती है। इस कहावत से सिद्ध होता है कि हिमिस गोम्पा आर्थिक दृष्टि से भी लद्दाख के अन्य सभी गोम्पाओं से अधिक समृद्ध है, क्योंकि यहाँ प्रचुर मात्रा में स्वर्ण है।

'अलची गोम्पा'—लद्दाख में सबसे प्राचीन है। चित्रकला (भित्ति चित्र) की दृष्टि से भी यह गोम्पा महत्त्वपूर्ण है। लद्दाख तथा कश्मीर की प्राचीन वेशभूषा के विषय में यदि कोई जानना चाहे तो इस गोम्पा की दीवारों पर निर्मित चित्रकलाओं द्वारा जानकारी प्राप्त कर सकता है।

'रिज़ोंग गोम्पा'—'सेर्पोगोन' सम्प्रदाय का गोम्पा है। यहाँ रामराज्य का सा वातावरण है। इस सम्प्रदाय के लामा मांस तथा छंग (लद्दाखी मदिरा) का सेवन नहीं करते। उनको अलग से अपनी सम्पत्ति बनाने का भी अधिकार नहीं। इस गोम्पा के आस-पास जितने भी वन पशु हैं उनके आखेट की भी आज्ञा किसी को नहीं है।

'लामायुरू गोम्पा'—ड़िगुंग सम्प्रदाय का गोम्पा है। यह भी अति प्राचीन है। ड़िगुंग सम्प्रदाय के अध्यक्ष कुशक तोकदन हैं। यहाँ भी प्रतिवर्ष एक धार्मिक त्यौहार होता है। इस त्यौहार में ड़िगुंग सम्प्रदाय के लामा मुखौटे आदि पहनकर नृत्य करते हैं। दूर-दूर से लोग इस त्यौहार को देखने तथा गोम्पा का दर्शन करने आते हैं।

'बसगो सेरज़ांग'—भी अति प्राचीन गोम्पा है। यह बसगो नामक ग्राम में स्थित है। इस मठ की मूर्तियां सोना तथा तांबे की बनी हैं। इसी कारण इस गोम्पा का नाम भी 'बसगो सेरज़ांग' रखा है। लद्दाखी में स्वर्ण को 'सेर' तथा तांबे को 'ज़ांगस' कहते हैं।

---

१. महाराजा रणजीत सिंह की सेना का यहीं पठान शासकों से युद्ध हुआ था तथा उस युद्ध के शहीदों की स्मृति में यह गुरुद्वारा बनाया गया था। यहाँ शहीद दिवस भी मनाया जाता है।

'संकर गोम्पा'—भी 'सेर्पोगोन' सम्प्रदाय का ही है। इस गोम्पा के प्रधान लामा श्रीमान कुशक बाकूला हैं। यह गोम्पा लेह में स्थित है।

'फोकर ज़ोंग' एक प्राचीन गोम्पा है। कहा जाता कि यहाँ भगवान बुद्ध की कुछ स्वनिर्मित मूर्तियां हैं। इनका दर्शन करने लद्दाख के दूर-दूर के स्थानों से लोग आते हैं।

'फेआंग गोम्पा'—भी 'डिगुंग' सम्प्रदाय का है। यहाँ प्रतिवर्ष एक मेला लगता है। इस मेले का नाम 'गांगस्नोन छेरूक' है। इस मेले में भी लामा लोग मुखौटे पहन-कर धार्मिक नृत्य का प्रदर्शन करते हैं।

'ठिकसे गोम्पा'—का भी धार्मिक मेले की दृष्टि से ही महत्त्व है। यहाँ प्रति-वर्ष एक मेला लगता है जिसे 'ठिकसे गुस्तोर' कहते हैं।

'माठो गोम्पा'—में भी एक वर्ष में एक भव्य मेला लगता है, जिसका नाम 'माठो नगरंग' है।

'अर्चेमो गोम्पा'—लद्दाख के नम्ग्याल नरेशों द्वारा बनाया गया था, यह भी प्राचीन है।

इस सन्दर्भ में कश्मीर के चिरन्तन इतिहास का साक्ष्य कल्हण की राजतरंगिणी में मिलता है—'तिलांशेऽपि यत्रास्ति पृथिव्यातीर्थैः बहिष्कृतः',[1] अर्थात् कश्मीर में तिल भर भी ऐसी धरती नहीं है जहाँ तीर्थ नहीं है।

---

१. तरंग १।